विश्व भारत का चिर ऋणी है

डॉ. हरवंशलाल ओबराय

सम्पादक एवं संकलनकर्ता

स्वामी संवित् सुबोधगिरि

डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र

खण्ड 1 : राष्ट्रीय समस्याएं और इतिहास

खण्ड 2 : महापुरुष : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

खण्ड 3 : धर्म-दर्शन-संस्कृति-उत्सव-विज्ञान एवं मनोविज्ञान

खण्ड 4 : वेदान्त दर्शन की वैज्ञानिकता

खण्ड 5 : गीता दर्शन की सार्वभौमिकता

प्रकाशक एवं वितरक :
स्वामी संवित् सुबोधगिरि
श्री नृसिंह भवन
संन्यास आश्रम, शिव मन्दिर
भीनासर 334403
बीकानेर (राजस्थान)
मो. : 09413769139

अन्य पुस्तक प्राप्ति स्थान :

- श्री सुशील कुमार ताम्बी
  प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र
  A/3 आर्य नगर
  एन.के. पब्लिक स्कूल के पास
  मुरलीपुरा, जयपुर 302039
  फोन : 0141-2233765 मो. : 09829547773
- **ज्ञान गंगा प्रकाशन**
  पाथेय भवन,
  बी-19, न्यू कॉलोनी, जयपुर
  दूरभाष : 0141-2371563
- **अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना**
  आप्टे भवन, केशव कुंज, झण्डेवाला
  नई दिल्ली 110055
  फोन : 011-23675667
- **हिन्दू राइटर्स फोरम**
  129-बी, डी.डी.ए. फ्लैट्स (एम.आई.जी.)
  राजौरी गार्डन, नई दिल्ली 110027
- **जागृति प्रकाशन**
  श्री कृष्णानन्द सागर
  एफ-109, सेक्टर-27, नोएडा 201301
  फोन : 0120-2538101 मो. : 09871143768

ISBN 978-81-929055-6-3

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2014 ई.

प्रतियां : 1100

मूल्य : तीन सौ पचास रुपये मात्र

आवरण : गौरीशंकर आचार्य

मुद्रक :
सांखला प्रिंटर्स, विनायक शिखर
शिवबाड़ी रोड, बीकानेर 334003

VISHV BHARAT KA CHIR RANEE HAI : Dr. Harbans Lal Oberai (Hindi)
Edited by Swami Samvit Subodhgiri ₹ 300

आशीर्वचन

भारतीय संस्कृति का आधार सनातन धर्म है। सनातन का अर्थ है जो आदि और अन्त रहित है। अतः यह धर्म अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक रहेगा। इस धर्म को अपनाने वाले को भी यह धर्म 'सनातन' की प्राप्ति करा देता है। ब्रह्म को ही वेदों में सत्य या सनातन कहा है। सनातन धर्म पर आधारित होने के कारण भारतीय संस्कृति भी सनातन संस्कृति है। भारतीय संस्कृति ओंकार-मूलक है। ओंकार ही ब्रह्म है, ओंकार ही आत्मा है, ओंकार ही जगत् है, ओंकार से भिन्न और परे किसी अन्य की सत्ता ही नहीं है। ओंकार से ही सारे वेद प्रकट हुए हैं। वेद अपौरुषेय हैं, अनन्त हैं, सनातन हैं। संस्कृति का विस्तार वेदों में प्रतिपादित कर्मकाण्ड, उपासना-काण्ड और ज्ञानकाण्ड के अनुसार हुआ। संस्कृति के संवाहक ऋषियों ने मानव मात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस को प्रदान करने वाले जीवन-दर्शन और जीवन-विज्ञान को सारे विश्व में फैलाया। भारत-भूमि को इस संस्कृति-प्राकट्य और प्रसार के मूल-स्थान होने का गौरव प्राप्त है। इस संस्कृति-वीणा की दिव्य झंकार तो 14 भुवनों के आरपार होकर वैकुण्ठ, कैलास और मणिपूर व्यापिनी है।

अवतारों की लीलास्थली एवं ऋषियों की तपोभूमि भारत में संस्कृति का प्रवाह कभी अवरुद्ध नहीं हुआ। संकट के समय में जब इसका बाह्य रूप प्रक्षीण हुआ तब भी यह अन्तःपयस्विनी होकर सतत प्रवाहित होती रही।

प्रस्तुत ग्रंथ में संस्कृति की इस अमरता और इसके वैश्विक रूप का सम्यक् दर्शन होता है। प्रखर मनीषी और उद्भट विद्वान् प्रो. हरवंशलाल ओबराय एक चल-विश्वविद्यालय व चल-पुस्तकालय होने के साथ-साथ ब्रह्मविद्या के श्रेष्ठ विद्यार्थी भी थे। एक स्थान पर स्थिर होकर लेखन कार्य में संलग्न रहना उनके स्वभाव में नहीं था। उन्होंने स्वयं लिखने से अधिक लिखवाया और उससे भी अधिक प्रवचनों में अभिव्यक्त किया। उनके द्वारा अभिव्यक्त बहुमूल्य सामग्री को स्वामी श्री सुबोधगिरिजी ने वर्षों तक संभाल कर रखा। संन्यास के पूर्व वे अनेक वर्षों तक प्रो. ओबराय के शिष्य बन कर रहे। उन्होंने सत्-शिष्य बन कर प्रो. ओबराय की सेवा की, उपासना की और उनसे अध्यात्म, धर्म, संस्कृति, इतिहास आदि अनेक विषयों का प्रामाणिक एवं दुर्लभ ज्ञान प्राप्त किया। प्रो. ओबराय ने अपनी प्रखर प्रतिभा, अनुसंधानात्मक वृत्ति तथा संश्लेषक व विश्लेषक प्रज्ञा द्वारा भारतीय संस्कृति के अनेक अज्ञात पक्षों का पता लगाया था। उनकी बहुत कुछ सामग्री तो उनके पश्चात् बचाई नहीं जा सकी। किन्तु सुबोधगिरिजी ने अपने पास की सामग्री को तथा कई अन्य स्रोतों से भी उनकी रचनाओं को एकत्र करके उन्हें लोक कल्याण के लिये प्रकाशित करने के संकल्प को जीवित रखा। प्रभुकृपा से अब उनका संकल्प पूर्ण होने जा रहा है। यह प्रकाशन प्रो. ओबराय के प्रति उनकी सच्ची श्रद्धांजलि है। प्रभु से प्रार्थना है कि वे निरन्तर ज्ञानार्जन करते हुए ब्रह्मविद्या के आलोक को प्राप्त करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरि

सौजन्यता का हेतु

हिन्दू संस्कृति के पुजारी डॉ. हरवंशलाल का सम्पूर्ण जीवन भारत माता व हिन्दू धर्म को समर्पित रहा। वे दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर थे। अपने शोध परिणामों से उन्होंने भारत के महत्त्व को जाना एवं 106 देशों में उनके व्याख्यान हुए। लोगों को हिन्दू धर्म का महत्त्व समझाया। स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी विद्यार्थी जीवन से ही डॉ. हरवंशलाल के सम्पर्क में आए व उन्होंने जाना कि किस प्रकार विदेशी पादरी शिक्षा व सेवा की आड़ में धर्म परिवर्तन का बीभत्स खेल खेल रहे हैं। स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी ने अपना सम्पूर्ण जीवन गौरवशाली सनातन हिन्दू धर्म व भारत माता पर न्योछावर कर दिया। गुरु स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के पावन चरणों के अनुग्रह से डॉ. हरवंशलाल व स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी के विचार पुस्तकों के माध्यम से जन-जन तक पहुँच रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक 'विश्व भारत का चिर ऋणी है' में किन-किन क्षेत्रों में भारत ने विश्व को क्या-क्या योगदान दिया है को विस्तार से समझाया है। हिन्दू धर्म में स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज व उनके शिष्य स्वामी संवित् सुबोधगिरिजी महाराज जैसे पुष्पों से, पल्लवित-पुष्पवित होता रहे। हिन्दू धर्म की सुगन्ध चहुंओर फैलती रहे। नई पीढ़ी अपने धर्म को समझे व गर्व से कह सके कि मैं हिन्दू हूँ। यही कामना है।

उच्च विचारों से ओत-प्रोत हिन्दू धर्म व भारत माता के गौरव को प्रदर्शित करने वाली उक्त पुस्तक के प्रकाशन का कार्य माँ जगदम्बा श्री करणी माता की कृपा से मुझे प्राप्त हुआ है। इस हेतु मैं सन्तों की भी सदैव ऋणी रहूँगी। 'माँ' फाउण्डेशन भविष्य में भी हिन्दू धर्म व भारत के गौरव को प्रदर्शित करने वाली पुस्तकों के प्रकाशन में सहयोग करता रहेगा यही भगवान नर्मदेश्वर महादेव से प्रार्थना है।

विनीत

प्रतिभा सारथी

अध्यक्ष, माँ फाउण्डेशन

एच-65 करणी औद्योगिक क्षेत्र, बीकानेर

आओ! शिष्य बनें

भारत विश्वगुरु था। इसकी परा-अपरा विद्या को प्राप्त करने धरती के कोने-कोने से जिज्ञासु-मुमुक्षु इस पुण्य-भूमि में शिष्य-भाव से आते थे। इसी भूमि से ज्ञान-दीप ले त्यागी-तपस्वी-विद्वान् साधक, आचार्य विदेशों में जाते और ज्ञान-प्रकाश से वहाँ की संस्कृति के अँधियारे को दूर करते थे। इन ज्ञान-वितरकों के प्रेरक ऋषि थे, आत्मज्ञान ही इनका बल था, प्रभुप्रेम ही इनकी गति थी।

कालान्तर में भीषण युद्ध हुए—गृहयुद्ध भी व बाह्य आक्रमण भी। फलतः भारत की क्षात्र-शक्ति निर्बल हुई, बुद्धि-शक्ति अरक्षित हुई, अर्थ-तन्त्र ध्वस्त हुआ, लोक-जीवन दमित व अस्त-व्यस्त हुआ। ऐसे जर्जरित राष्ट्र का परतन्त्र होना स्वाभाविक था। भारत का स्थूल कलेवर पराजित हुआ था, मन व आत्मा नहीं। इसके स्थूल कलेवर में भी स्वातन्त्र्य-रक्त अल्पांश में प्रवाहित होता रहा था। सत्संग-स्वाध्याय, पर्व-परिवार, तीर्थ-तीर्थाटन आदि सांस्कृतिक संस्थानों द्वारा यह भारतीय संस्कृति प्राणन करती रही, मरी नहीं। किन्तु भीषण अत्याचारों के कारण इसका आत्मगीत दिशा-दिशा में मुखरित नहीं हुआ। कुछेक विभूतियों ने आविर्भूत होकर इसके आत्म-दर्शन का उद्घोष किया, किन्तु उसका संचार इसके सर्वांग में न हो सका। दीर्घ परतन्त्रता के पश्चात् प्राप्त तथाकथित स्वतन्त्रता भी दिखावे की सिद्ध हुई। इसकी आत्मा अभी भी मुक्त साँसों के लिये छटपटाती है। इसके पूत अभी भी याचक हैं, उच्छिष्टभोजी हैं, अन्धानुकरण में रत हैं। इस आन्तरिक परतन्त्रता से मुक्त होना ही होगा, क्योंकि इस संस्कृति का स्वधर्म ही आत्मोन्मुखी है, ईश्वरोन्मुखी है। इसके स्वभाव में चारों वर्णों का सामरस्य है। अपने स्वभाव की विरुद्ध दिशा में बहना इसके लिये भयावह है। किन्तु यह अपनी स्वदिशा में गतिमान कैसे हो? कैसे यह अपने विश्वगुरु पद को प्राप्त करे?

यह संस्कृति अपने गौरवपूर्ण पद को प्राप्त कर सके—इसके लिये प्रत्येक भारतीय को अपने स्वधर्म को पहचानना होगा। उसको लेकर उसे अपनी संस्कृति से एक लय में रहते हुए स्वकर्म करना होगा। उस स्वकर्म से उसे जगद्गुरु की शिष्यभाव से अर्चना करनी होगी। यों शिष्यभाव की अनगिन धाराएँ मिल कर एक प्रबल पवित्र प्रवाह बनेगा और तब फिर यह संस्कृति विश्वगुरु रूपिणी गंगा होगी, सृष्टि-मूल के गोमुख को पूर्णानन्द उदधि से जोड़ने वाली, मानव मात्र को तारने वाली भागीरथी होगी।

आओ! शिष्य बनें।

स्वात्म-संस्कृति के उन्नयन के लिये भगीरथ-प्रयास करें।

—परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज

सम्पादकीय

भारत के प्राचीनकाल से आधुनिक युग के पूर्व तक का विधिवत् इतिहास नहीं मिलता। इसके दो अर्थ निकलते हैं भारतीयों का इतिहास लिखना ज्ञात नहीं था या फिर भारतीयों का जीवन के प्रति ऐसा दृष्टिकोण था जिसने उन्हें इतिहास लिखने को प्रेरित नहीं किया।

पहले दृष्टिकोण पर विचार करने से स्पष्ट होता है भारत में इतने श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान की पुस्तकें, धर्मग्रंथ नीतिग्रंथ स्मृतियां व पुराण लिखे गये। अतः इतिहास लिखना नहीं आता यह बात जचंती नहीं। दूसरे दृष्टिकोण पर विचार करने पर स्पष्ट पता लगता है हमारा जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही ऐसा था जिसने इतिहास एवं जीवन चरित्र लिखने को प्रेरित नहीं किया। उसने व्यक्तित्व को महत्त्व न देकर कर्तृत्व को महत्त्व दिया। इसलिये कृतियाँ (वेद उपनिषद, धर्मग्रंथ स्मृतियां आदि मिलते हैं। पर जिन्होंने इन कृतियों की रचना की, उन्होंने स्वयं अपने व्यक्तिगत जीवन-चरित्र के विषय में एवं जिस ऐतिहासिक युग में, जिनके राज्य काल में कृतियों का निर्माण हुआ, उन ऐतिहासिक युग एवं राज्य के विषय में ग्रंथों में चित्रण नहीं किया। वे कर्तृत्व को अमर समझते थे। व्यक्तित्व को नश्वर। इसलिये व्यक्तित्व का इतिहास लिखने की प्रेरणा उनमें नहीं थी।

एक बार घनश्यामदास बिड़ला ने महामना पंडित मदन मोहन मालवीयजी से निवेदन किया कि आप अपना जीवन चरित्र लिखिये। इस पर उन्होंने कहा 'जीवन चरित्र पढ़ना हो तो श्रीमद्भागवद् पढ़ें। मेरे जीवन में क्या रखा है? इससे भारत की इतिहास के प्रति दृष्टि प्राप्त होती है। व्यासजी ने वेदों का सम्पादन किया। महाभारत, भागवत, अनेक महापुरुषों के जीवन चरित्र एवं वेदान्त सूत्र की रचना की पर स्वयं के विषय में कोई विवरण नहीं दिया। इसी परम्परा का निर्वहन हम बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, रामानुज, मधवाचार्य, तुलसी, कबीर, मीरा आदि में पाते हैं। यही परम्परा हम शिल्पियों में पाते हैं, अजन्ता एलोरा में एक पहाड़ को भोम की तरह चीरकर विश्व प्रसिद्ध मूर्तियां उकेर दी पर किसी ने अपना नाम अंकित नहीं किया। पर यह परिपाटी 100-150 साल में बदल गयी है।

अतः पश्चिमी देशों का कहना है भारत के लोग को इतिहास का बोध नहीं। उन्हें इतिहास लिखना नहीं आता था। वस्तुतः ये भारतीय दृष्टि से परिचित नहीं है। पश्चिम के इतिहास में किसी शासक की कितनी शादियां हुई, किनके-किनके साथ

अवैध सम्बन्ध थे किस देश को अपनी ताकत के बल पर हथियाया आदि वर्णन मिलता है। ऐसे इतिहास का संग्रहालय हमने कभी नहीं बनाया।

फिर हमारा इतिहास लाखों-करोड़ों वर्ष का है। सौ वर्षों के इतिहास पर एक पृष्ठ भी लिखा जाय तो कल्पना करें कितने पृष्ठ हो जायेंगे। हमारा इतिहास पश्चिम की तरह मात्र 6 हजार वर्षों का नहीं है। आज रामसेतु की आयु 17 लाख से 23 लाख वर्ष आंक रहे हैं। हमारा इतिहास राम से कितना प्राचीन जाता है। इतने वर्षों का पूर्ण इतिहास तिथिक्रम से लिखने का कोई प्रयोजन नहीं माना गया। केवल युग-प्रवर्तक घटनाओं एवं संस्कारक्षम समाजोपयोगी इतिहास का ही संकलन-सम्पादन एवं संग्रह किया गया।

इतिहास की परिभाषा रामायण में इस प्रकार दी गयी है—

धर्मार्थ काममोक्षाणाम् उपदेशसमन्वितम।
पूर्ववत्तं कथायुक्तमितिहासं प्रचक्षते।।

इतिहास केवल पूर्वघटनाओं की सूचीबद्ध तालिका मात्र नहीं है। इसमें केवल उन्हीं घटनाओं (पूर्ववृत्तों) को सम्मिलित किया जाता है, जो समाज के लोगों को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की ओर ले जाने में समर्थ हो।

इतिहास को केवल विद्वानों का विषय न रखकर जन-साधारण के उपयोग की वस्तु बनाने के लिये महाकाव्यों एवं पुराणों का रूप दिया गया। इस दृष्टि से रामायण, महाभारत, पुराण आर्य प्रणीत हमारे इतिहास ग्रंथ है।

भारत एक सनातन राष्ट्र है। इसकी सीमायें भी प्राकृतिक है। इसकी संस्कृति भी सनातन है। संस्कृति के मूल में वेद है। वेद सनातन, अपौरुषेय और अनन्त है अतः पश्चिम द्वारा वेद के काल मीमांसा के जितने प्रयास हुए हैं सब व्यर्थ सिद्ध हुए हैं। क्योंकि वेद सनातन और अपौरुषेय हैं। अब जब रामसेतु की आयु 17 से 23 लाख वर्ष मानी जा रही है और रामायण काल में वेद प्रतिष्ठित है। अतः रामसेतु के प्रकटन ने भी वेद की सनातनता पर अपनी मुहर लगा दी है।

स्पष्ट है भारत एक सनातन राष्ट्र है। और जब से इसने अपनी आंखें खोली अपने को विकसित राष्ट्र के रूप में ही पाया। क्योंकि ब्रह्माजी ने पहले मानसिक सृष्टि की। सनक, सनंदन, सनतकुमार को, फिर ऋषियों को प्रकट किया। फिर मैथुनिक सृष्टि प्रारम्भ हुई। तो भारत अग्रजन्मा एवं 'सा प्रथमा संस्कृति विश्ववारा' होने से वेद भगवान का आदेश है—'कृण्वन्तोविश्वमार्यम्' भारत अग्रजन्मा होने से बड़ा भ्राता है। बड़े भाई का दायित्व है कि छोटे भाई को शिक्षित कर, संस्कारित कर उसे श्रेष्ठ, सज्जन बनावें। केवल स्वयं के श्रेष्ठ और सज्जन बनने से काम नहीं चलता साथ-साथ में परिवार, आस-पास का परिवेश, पास-पड़ोस, पूरा गांव,

पूरा समाज, पूरा देश, पड़ोसी देश, साथ ही सारा विश्व श्रेष्ठ सज्जन बनने पर ही आपके स्वयं की श्रेष्ठता और सज्जनता की रक्षा हो पायेगी अन्यथा उसमें बाधा उपस्थित होगी। फिर हम सब एक ही ईश्वर की सन्तान होने से परस्पर भाई-बहिन है। और जब परिवार बड़ा हो जाने से आर्थिक एवं अन्यकारणों से दूर देश-विदेश में बसना पड़ता है अतः शरीर से भले दूर हो मन व हृदय से जुड़े रहते हैं। और मनु ने विश्ववासियों को आदेश दिया कि अपने-अपने कर्तव्य की, चरित्र की शिक्षा भारत से ग्रहण करें। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि प्रारम्भ से लेकर आज तक विश्व मनीषा के लिये भारत आकर्षण का केन्द्र रहा है। भारत की शिक्षा से अपने को धन्य-धन्यता की कृतार्थता का, पूर्णता की अनुभूति की है। चाहे मिश्र की सभ्यता को लेवे, चाहे यूनान के पाइथोगोरस, सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, सिकन्दर को लेवें, चाहे स्वयं ईसा मसीह को लेवें। चाहे स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहब व उनके चाचा अब्दुल हिक्म को, फैजी को, दाराशिकोह, अन्तिम मुगल बादशाह बहादुरशाह जफर, चाहे मैक्समूलर, कांट, शोपेनहावर को लेवें या स्पेन्सर बर्गसां एडिंगटन, श्रोडिंजर, आइंस्टीन, एक्सिस केरल, फ्रिट्जोफ केपरा, चाहे थोरो, इमर्सन, क्रिस्टोफर इशरहुड, विलडूरेन्ट, अर्नाल्ड टायनबी, मार्क टूली आदि हो।

भारत ने धर्म-दर्शन, सभ्यता-संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल का दान, अपनी श्रेष्ठताओं का दान बिना किसी देश की स्वाधीनता छीने, बिना किसी देश के अर्थ पर डाका डाले, बिना किसी देश की मां-बहन के शील पर आघात किये, बिना किसी देश के सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों को तहस-नहस किये अपने निष्कलंक चरित्र, निर्मल ज्ञान के द्वारा, निःस्वार्थ भाव से, विश्वमंगल की भावना से बिना अपना अहित किये हुए दिया है।

जिसे विश्ववासियों ने मुक्तकंठ से सहारा है—क्रूजर (Creuzer) कहते हैं—यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' होने की घोषणा करने का अधिकारी है अथवा प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा प्राकृत से संस्कृत किया है, तो वह देश भारतवर्ष है।

अमरीकी इतिहासज्ञ विल डूरेन्ट कहता है—भारत ही हमारी जाति की जन्मस्थली था और संस्कृत ही हमारी यूरोप की सभी भाषाओं की जननी है। भारत हमारे दर्शन की जननी था, हमें अरब के माध्यम से प्राप्त गणित-ज्ञान की जननी था, बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी और ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा आत्मानुशासन और लोकतंत्र का जननी था। भारत अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की माता है।

भारत ने विश्व को धर्म और संस्कृति का दान दिया है। राजनीतिक या कूटनीतिक हस्तमिलाप तो थोड़ा स्वार्थ बदलते ही राजनीतिक या कूटनीतिक घूंसे में बदल जाता है, पर सांस्कृतिक सम्बन्ध दो हृदयों का बंधन है जिसे काल के थपेड़ भी तोड़े नहीं सकते। यही कारण है कि जापान का प्रधानमंत्री भारत की धूलि को अपने मस्तक पर चढ़ाता है। यदि इंडोनेशिया का राष्ट्रपति अपने देश में सर्वप्रथम 'अन्तर्राष्ट्रीय रामायण सम्मेलन करता है, यदि तिब्बत के दलाईलामा अपना राज्य व धन खोकर भी बौद्ध तीर्थों में शान्ति पाते हैं, यदि मारीशस का प्रधानमंत्री सर्वप्रथम 'हिन्दी भाषा सम्मेलन' अपने देश में आयोजित करता है, यदि 7 हजार मील दूर पर्व का फिजी और 12 हजार मील दूर पश्चिम का सूरीनाम रामचरितमान, गीता को धर्मशास्त्र तथा हिन्दी को राजभाषा का सम्मान देता है और संसार के 85 देशों के हिन्दू आज भी कुम्भ मेले पर गंगा स्नान को तरसते हैं तो यह सांस्कृतिक सम्बन्धों का ही चमत्कार हैं।

विकास सीधी रेखा में नहीं चलता। इसमें उत्थान-पतन के दौर आते हैं। यह व्यक्ति जीवन, समाज जीवन एवं राष्ट्र जीवन में एक साथ लागू होता है। विगत 1000-1200 वर्षों से हमारा राष्ट्रीय चरित्र दुर्बल हुआ, क्षात्रतेज की उपेक्षा हुई, धर्माभास, सद्‌गुण विकृति और यथार्थ व्यवहारिकता के अभाव के कारण मुगल, तुर्क, पठानों यानी इस्लाम की आंशिक अधीनता हमें स्वीकारनी पड़ी। इसी क्रम में अंग्रेज आये। अंग्रेजों के पूर्व जितने आक्रांत आये वे हमारे घर में, मन-मन्दिर में प्रवेश नहीं कर पाये उन्हें हमने हर दृष्टि से यथा आचार-विचार-व्यवहार वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, धर्म-पंथ, भाषा-साहित्य त्योहार आदि की दृष्टियों से मलेच्छ ही माना। वे हमारे कभी भी आदर के पात्र, आदर्श पुरुष नहीं बन सकें। पर अंग्रेज अपनी धूर्तता से हमारी शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन कर हमारी रुचि और मानस को परिवर्तित कर हमारे मन-मन्दिर और घरों में प्रवेश कर हमारे आदर्श पुरुष बन गये। और उसी समय से हमारी शिक्षा व्यवस्था, हमारे इतिहास, साहित्य में जो ग्रहण लगा, उसमें विकृति प्रवेश करायी गयी वह आज तक अक्षुण्ण है। स्वाधीन भारत इससे मुक्त होकर पुनः तेजस्वी भारत के निर्माण हो इस दृष्टि से संशोधन होना चाहिये था पर पंडित नेहरू के कारण जो अंग्रेजों से भी ज्यादा अंग्रेज थे। उनका कहना था I am english by education, I am muslim by religion, I am hindu by accident of work. अर्थात् मैं शिक्षा की दृष्टि से अंग्रेज, धर्म की दृष्टि से मुसलमान और हिन्दूमाता के गर्भ से जन्म लिया मात्र इसलिये हिन्दू हूं। अन्यथा हिन्दू, हिन्दुत्व, हिन्दू धर्म, संस्कृति, हिन्दी भाषा गो आदि सबके प्रति उन्हें घृणा थी। उन्हें जो इस देश के शत्रु थे जो इस देश को विश्व के मानचित्र से मिटाकर इस्लाम और ईसा या मार्क्स की झोली में डालना चाहते थे वे उनके अपने थे, उन पर गर्व था,

वे उनके आदर्श थे और इस देश का मूल हिन्दू ही उनके लिए पराया, हीन और घृणा का पात्र था। नेहरूजी के लिए देश की स्वाधीनता की रक्षा करने वाले राणा प्रताप, शिवाजी गुरु गोविन्दसिंहजी जिन्होंने इस्लाम को चुनौती दी वे भ्रमित हिन्दू देश भक्त थे। शिवाजी तो पहाड़ी चूहा था आदि-आदि। इसलिए शिक्षा मंत्री मौलाना अब्दुल कलाम आजाद, बाद में हिमायू कबीर बनते है जिन्हें भारत-भारतीयता से कोई लेना-देना नहीं था। और आज भी हमारे शिक्षा विभागों में कम्युनिस्टों और मुसलमानों का कब्जा है जो भारत-भारतीयता के कट्टर शत्रु है। इसलिए हमारा इतिहास, हमारा शिक्षा विभाग विकृत से और अधिक विकृत होता गया।

हमारा तेजो भंग करने और उन्हें राष्ट्रीयता के आधार पर कभी चुनौती न मिल सके इसलिए अंग्रेजों ने यह पढ़ाना प्रारम्भ किया भारत कभी एक राष्ट्र नहीं था। वह तो अब उनके नेतृत्व में एक मिला-जुला राष्ट्र बन रहा है। आर्य इस देश के मूलवासी नहीं वरन् प्रथम आक्रांता था। जो भी आक्रांता इस देश में आये चाहे वह ग्रीक, शक, हूण, कुषाण हो, चाहे वह मुगल, तुर्क, पठान हो, चाहे अन्तिम आक्रांता अंग्रेज हो, उन्होंने ही इस देश पर शासन किया है। भारतीयों की जो भी श्रेष्ठ ग्रंथ, श्रेष्ठ बातें थी वह विदेशियों से चुरायी गयी, ग्रहण की गयी थी। और उनमें जो दुर्गुण है असभ्यता है वह उनके अपने है। यह असभ्यों का देश है। बन्दर नचाने वाले मदारियों का और सांपों को पालने वाले सपेरों का देश है। यह तो White man burden है। असभ्यों को सभ्य बनाने का नैसर्गिक दायित्व आने से वे भारतीयों को शिक्षित, सभ्य बनाने के लिए ही उन पर शासन कर रहे हैं। वे तो वरदान स्वरूप है। वेद पुरानी बाइबिल से, गीता नयी बाइबिल से उधार ली गयी। रामायण, महाभारत, पुराण आदि ये सब Mythology (गपोड़ शास्त्र) है। संस्कृत मृत भाषा है। भारत के इतिहास को तीन भागों में बांटा गया—हिन्दू काल, मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल। हिन्दू काल को कुछ ही पृष्ठों में समेट दिया जाता है। हिन्दू काल में बुद्ध को ऐतिहासिक पुरुष मानकर बुद्ध के पूर्व के इतिहास को नहीं स्वीकारते। काल्पनिक मानते हैं। बुद्ध के पश्चात् से लेकर मुस्लिम के पूर्व तक काल को हिन्दू काल कहा गया। इस काल खण्ड के विषय में कहा जाता है बहुत कम प्रमाणिक विवरण मिलता है अतः उसकी भी उपेक्षा कर कुछ पृष्ठों में समेट दिया जाता है। फिर मुस्लिम काल और ब्रिटिश काल के इतिहास को विस्तार से पढ़ाया जाता है। इसे पराभव का काल बताया जाता है जबकि यह सतत संघर्ष का काल है। इस्लाम और ईसाइयत को किसी ने पीटा है, रोका है चुनौती दी है तो वह भारत ने ही। अन्यत्र तो ये जहां भी गए उस देश की सभ्यता-संस्कृति धर्म को समूल नष्ट कर अपनी बर्बर, पैशाचिक सभ्यता-संस्कृति धर्म को थोप दिया। मुगल काल को ये स्वर्ण युग बताते हैं—उसे भारत के वितरागी संत जो राग-द्वेष से मुक्त गुरुनानक, तुलसी दास, सूरदास, ज्ञानेश्वर महाराज, समर्थ स्वामी रामदास

आदि ने मुगल शासकों चोर, लूटेरे बताया है। हिन्दुओं के तेजस्वी इतिहास को बाद देकर बहुत विस्तार से मुस्लिम काल ब्रिटिश का अतिरंजित झूठा इतिहास पढ़ाने से इतिहास निर्माण की प्रेरणा नहीं मिलती वरन् मन हीन भाव से, आत्म ग्लानि से, लज्जा बोध से भर जाता है और इससे तो ऐसा ही लगता है इस देश का कोई इतिहास नहीं, चरित्र नहीं, यह तो गुलाम रहने योग्य, शासित होने योग्य, शासक बनने योग्य नहीं है? और यह हीन भावना स्वयं पंडित नेहरू में दिखती है, वे स्वयं मैकाले की शिक्षा के शिकार थे जो भारत का संविधान एक अंग्रेज से बनवाना चाहते थे, जो स्वतंत्र भारत में भी अंग्रेज सेनाध्यक्षों को रखना चाहते थे और स्वतंत्र भारत में श्री वायसराय लार्ड माउंट बेटन को रखते हैं, डेढ़ साल बाद इंग्लैण्ड जाने के बाद भी उनसे फोन पर परामर्श लेते रहे और उनके परामर्श से प्रभावित होकर पंडित नेहरू जीवन भर देश को एक से दूसरे गढ़े में डालते रहे। नेहरूजी को न स्वयं पर भरोसा था और न भारतीयों पर। और इसे सिद्ध करते रहे कि हम शासक बनने योग्य नहीं शासित होने योग्य ही है। और कांग्रेस में यह हीन भावना अभी भी भरी हुई है तभी कांग्रेस और देश की कमान एक विदेशी महिला सोनियाजी को सौंप रखी है जो देश को निरन्तर सब दृष्टियों से खोखला करने में लगी है। देश की मूल राष्ट्रीय शक्तियों को कुचलने और अराष्ट्रीय शक्तियों को सब प्रकार से बढ़ावा देने में, देश को लुटाने सब प्रकार से भ्रष्ट करने, बर्बाद करने, इस देश के मूल स्वरूप को ही बदल देने में, सब प्रकार के घोटालों से देश को जर्जर करने तथा देश के पशुधन को समाप्त करवाने में लगी हुई है उसके बाद भी उसके प्रति मोह-भंग नहीं हो रहा है। ऐसी हीन भावना से सारा देश भर गया। इसलिए उससे मुक्त होने के लिए कहीं से थोड़ी भी आवाज उठती है तो उसे दबा दिया जाता है, और आवाज उठाने वाले संत रामदेव हों या अण्णा हजारे हों। उन्हें ही अपराधी सिद्ध करने की कोशिश की जाती है।

जब हम कटे-पिटे वर्तमान भारत को जानेंगे तो अखण्ड भारत की, वृहत्तर भारत की, सारी दुनिया छाये सांस्कृतिक साम्राज्य को पुनः पाने की तड़पन, प्रेरणा कहां से होगी।

नेहरूजी रूस को आदर्श मानकर उसकी नकल पर चलते रहे। और जब रूस अपने ही घर में ढह गया तो हम अमेरीका की नकल पर चल रहे अब अमेरीका भी लड़खड़ा रहा तो हम किसकी नकल करेंगे मानों हमारे लाखों वर्ष प्राचीन वैभवशाली राष्ट्र में अपना कोई तंत्र ही नहीं है। अतः इन हीन भावनाओं से उबरने के लिए हमें अपने वास्तविक इतिहास को, वैभवशाली, तेजस्वी, ओजस्वी इतिहास को पुनः सामने लाना होगा। भारत को जितना तेजस्वी, ओजस्वी, शुद्ध, सात्विक, निर्मल इतिहास की परम्परा मिली है उतना और किसी देश को नहीं, पर दुर्भाग्य से हम उससे काट दिये गए। इसलिए हमारा तेज, ओज, राष्ट्रीय भाव आदि दब गये है। अतः इस वीरतापूर्ण इतिहास की पुनः प्रकाश में लाकर उससे जुड़ने की आवश्यकता है।

हमारा इतिहास बुद्ध से नहीं सृष्टि के प्रारम्भ से शुरू होता है। डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी का कहना है आर्य कहीं बाहर से नहीं भारत के मूलवासी है और यहां से मनु के जलप्लावन के समय सारे यूरोप के देशों में फैल गए और यहां से भारतीय संस्कृति का विस्तार प्रारम्भ हो जाता है। भारत के आर्यों की ही एक शाखा ईरान में बस गयी जो पारसी कहलाये उसके द्वारा भी भारतीय संस्कृति का विशेषकर सूर्य पूजा का प्रसार विश्व के देशों में हुआ। जो भारत का इतिहास बुद्ध से मानते है उनसे डॉ. ओबरायजी का प्रश्न है बुद्ध के पूर्व भारत कैसा था, उस समय कौन-सा धर्म-दर्शन प्रचलित था। भगवान् बुद्ध पर किस विचार परम्परा की छाप है, किस विचार की देन भगवान् बुद्ध है, किस विचार परम्परा में वे शिक्षित, दीक्षित एवं संस्कारित हुए। तो देखेंगे बुद्ध के पूर्व हिन्दू विचार परम्परा ही वहां प्रचलित थे। हिन्दू परम्परा से किंचित भिन्न, संशोधित विचार रखे और उसे चार आर्य सत्य ही कहा। अधिकांश आचार-विचार हिन्दू धर्म से ही ग्रहण किए। श्रीलंका को आज बोद्ध देश माना जाता है। डॉ. ओबराय प्रश्न उठाते है बोद्ध धर्म के पूर्व वहां कौन-सा धर्म प्रचलित था। लंका के प्रायः सभी बोद्ध मन्दिरों में भगवान् बुद्ध के साथ-साथ हिन्दू देवी-देवता भी प्रतिष्ठित है। राम प्रतिष्ठित है स्पष्ट है भगवान् बुद्ध के पूर्व भारत में और श्रीलंका में हिन्दू धर्म ही प्रतिष्ठित था। डॉ. हरवंशलाल ओबरायजी का कहना था विश्व के इतिहास से चार पर्दे हटा दिए जाए तो देखेंगे सारी दुनिया में हिन्दू संस्कृति ही फैली हुई थी। ईसा से पूर्व यूरोप, इस्लाम से पूर्व अरब, कोलम्बस से पूर्व अमेरीका, फिलिप से पूर्व फिलिपाइन।

जैसे जैसे समय और विज्ञान आगे बढ़ रहा है भारत की सत्यता और प्राचीनता स्वतः प्रकट होती जा रही है। पहले वे भारत की प्राचीनता को स्वीकारने को तैयार नहीं थे, परन्तु मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की खुदाई ने और सरस्वती नदी के अन्वेषण ने भारत की प्राचीनता और विस्तार को मानने के लिए बाध्य कर दिया।

पुराणों को Mythology के रूप में स्थापित करने का प्रयास हुआ। पर पुराणों के आधार पर नील नदी के स्रोत का पता लगने पर पुराणों की सत्यता मानने के लिए बाध्य हुए।

राम और कृष्ण की ऐतिहासिकता और प्राचीनता को मानने के लिए भी तैयार नहीं थे। राम सेतु के प्रकटन से राम की ऐतिहासिकता और प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो गई। समुद्र के गर्भ से द्वारिका के प्रकटन से कृष्ण की ऐतिहासिकता और प्राचीनता सिद्ध हो गई। जिस भारतीय काल गणना की पहले हंसी उड़ाई जाती थी वह सत्य सिद्ध हो गई और उनकी काल गणना Mythology सिद्ध हो रही है।

एक समय कहा जाता था—सब सड़कें रोम की ओर जाती है। वह समय था पूरे यूरोप पर रोम का एक छत्र राज्य था। उसकी राजधानी रोम—सभ्यता, साहित्य,

कला, संस्कृति एवं सैन्य शक्ति का केन्द्र थी। इसलिए पूरा यूरोप रोम की ओर देखता था और सभी सड़के रोम की ओर जाती है, ऐसा कहा जाता था, फिर कालान्तर में औपनिवेशिक काल में इंग्लैण्ड दुनिया के मानचित्र पर छा गया और कहा जाने लगा कि अंग्रेजी राज्य में सूर्यास्त नहीं होता, पर द्वितीय विश्व युद्ध में उसकी भी कमर टूट गयी और फिर रूस के विघटन के बाद अब अमेरीका ने वही स्थान प्राप्त कर लिया है जो कभी रोम और लंदन का होता था। आज अमेरीका विश्व का सर्वाधिक शक्तिशाली देश हैं। अब अमेरीका भी लड़खड़ा रहा है अब वही स्थान सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से भारत लेता जा रहा है तभी तो आज अमेरीका के एक-तिहाई लोगों की आस्था हिन्दू धर्म में है, वे कर्म, सिद्धान्त एवं पुनर्जन्म में विश्वास करने लगे है, मृतक का दाह संस्कार करने लगे है। अब वे केवल ईसाई मत ही सच्चा है और अन्य मत झूठे हैं यह स्वीकार नहीं करते। वरन् यह मानने लगे हैं। सत्य तो एक है जिसे विद्वान लोग विभिन्न नामों से पुकारते हैं। उसे पाने के अनेक मार्ग हैं। आज वे संस्कृत भाषा को अपना रहे हैं, गीता को अपना रहे हैं। आयुर्वेद और योग को अपना रहे हैं, शाकाहार को अपना रहे है। अमेरीकी मतान्तरण करके हिन्दू नहीं बन गए हैं, किन्तु अपनी आस्थाओं, विचारों और व्यवहार में हिन्दुओं जैसे हो गए हैं।

प्रथम में भारत ने ही सारे विश्न में प्रकाश फैलाया था। जयशंकर प्रसाद कहते हैं—

जगे हम लगे जगाने विश्व को फिर फैला विश्व में आलोक।

अब वह पुनः समय आ रहा है भारत ही पूरे विश्व को पुनः राह दिखायेगा इन सब दृष्टि से विश्व भारत का चिर ऋणी है।

भारत को व्यापक स्तर पर धर्म-दर्शन-संस्कृति का घर माना जाता है। विज्ञान के क्षेत्र में भारत का योगदान तुलनात्मक रूप से कम माना जाता है, और विज्ञान मुख्यतः पश्चिम की देन माना जाता है, जबकि यह भूल है, भ्रम है। भारत विज्ञान का भी जनक ही नहीं, 18वीं शताब्दी तक विश्व में अग्रगण्य था। धर्मपाल के शोध ग्रंथ Indian science and Technology in the Eighteenth Century से भी स्पष्ट है। पश्चिम में विज्ञान की जय यात्रा भारतीय विज्ञान के बल पर ही सम्भव हुई है।

जिस प्रकार सूर्य की उपस्थिति का प्रमाण स्वयं सूर्य ही है। किसी के इनकार करने या स्वीकार करने से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वैसे ही भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति का प्रमाण स्वयं भारतीय धर्म-दर्शन, संस्कृति ही है। इसको किसी के स्वीकार-अस्वीकार से सत्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता। पर चूंकि हम दुर्भाग्य से उनसे काट दिए गए हैं, और हीन भावना से भर गये हैं, हमको अपना सब-कुछ हेय नजर आने लगा और पश्चिम का कूड़ा-कचरा भी, उनकी विकृतियां

भी अनुकरणीय लगने लगी और जब तक पश्चिम हमारे सत्यों को स्वीकारते नहीं, प्रशंसा नहीं करते तब तक हम उसको विचार के योग्य, ग्रहण के योग्य मान नहीं पाते। शिकागो धर्म सम्मेलन के पश्चात् ही हमने स्वामी विवेकानन्दजी को पहचाना, विश्व कवि गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर को गीतांजलि पर नोबल पुरस्कार के पश्चात् ही पहचाना और मान दिया। दुर्भाग्य से स्वाधीनता के पश्चात् भी यह स्थिति बनी हुई है। इसलिए पश्चिम के मनीषियों को उद्धृत किया है अन्यथा हिन्दू धर्म-दर्शन, संस्कृति एवं भारत अपना प्रमाण स्वयं ही है। सत्य किसी प्रमाण का मुहताज नहीं होता और सत्य को बहुत समय तक दबाया नहीं जा सकता। कितना ही घनघोर बादल भी सूर्य को सदा के लिए ढक नहीं सकता। जिस पश्चिम ने सत्य पर कुठाराघात किया था वे ही अब उसे प्रकाश में लाने के लिए मुखर हो रहे हैं। गांधीजी का वचन सत्य होता प्रतीत होता है। वे कहते हैं मेरे विचार से हिन्दू धर्म का सौंदर्य समस्त को एक साथ आलिंगन करने में है।....दूसरे धर्म में जो भी सार तत्त्व पाए जाते हैं वे सभी हिन्दू धर्म में एक साथ अनवरत वर्तमान हैं। जो इसमें नहीं पाए जाते हैं, वे असार एवं अनावश्यक हैं। 'हिन्दुत्व सत्य की सतत साधना है और यदि आज यह मृतप्राय-निष्क्रिय, विकास के प्रतिकूल हो गया तो इसका कारण है कि हम थक गए हैं और जैसे ही हमारी यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसी प्रखर दीप्ति के साथ छा जायेगा जो सम्भवतः इससे पहले सभी को अज्ञात होगी।' सारा विश्व निरन्तर इस ओर बढ़ रहा है।

इससे डॉ. हरवंशलाल ओबराय समग्र के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम खण्ड से लेख लिए गए, अध्यात्म क्षेत्र में भारत का विश्व को अवदान में विशेष कर रामायण और गीता के सम्बन्धी लेख को संक्षिप्त किया गया है, सार रूप में दिया है क्योंकि उन पर अलग से पुस्तक रामायण का हार्द और गीता की विश्वव्यापी प्रतिष्ठा निकल चुकी है। जिन्हें विस्तार से देखना हो उसे अलग से वहां देखें। इसमें मैंने अपने दो नये लेख 'पर्यावरण के प्रति भारतीय दृष्टि और पर्यावरण के प्रति पश्चिम की दृष्टि' विषय की स्पष्टता के लिए शामिल किया है। इस पुस्तक के समस्त व्ययभार को सहर्ष श्रीमती प्रतिभा सारथी ने वहन किया है, वे सतत साधना में आगे बढ़ती रहें ऐसी प्रभु से प्रार्थना है। परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज के आशीर्वाद एवं सांखला प्रिंटर्स के सौहार्दपूर्ण प्रिंटिंग कार्य में सहयोग से प्रकाशित हो रही है।

शिवाकांक्षी

—स्वामी संवित् सुबोधगिरि

सम्पादक व संकलनकर्ता

मो. 09413769139

अनुक्रम

1.	इतिहासज्ञ हरवंशलाल ओबराय से भेंटवार्त्ता	17
2.	उत्तरी सीमा पर चीनी आक्रमण—इतिहास की भीषण चेतावनी	21
3.	अखण्ड भारत के त्रिकोण—अफगानिस्तान, बर्मा और श्रीलंका	24
4.	हमारे पड़ोसी शिष्य देश	31
5.	आर्य जाति का यूरोप में विस्तार	33
6.	भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी विस्तार	37
7.	पुराणों में नील नदी का अन्वेषण	39
8.	भारत तथा ईरान—इतिहास के सहोदर भाई	41
9.	विश्व सभ्यता को भारत की देन—उजबेकिस्तान	45
10.	सोवियत रूस देश श्वेत ऋषि देश है तथा रूसी भाषा संस्कृत की पुत्री	49
11.	यूनानी और रोमन जगत् को भारत की देन	55
12.	विश्व सभ्यता को भारत की देन	61
13.	विश्व के वक्षस्थल पर फहराता हुआ भारत का विजय-केतु	68
14.	दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार	73
15.	श्याम देश में रामचरित्र का पवित्र प्रकाश	80
16.	बालि द्वीप	84
17.	क्या प्राचीन इंग्लैण्ड भारत का एक उपनिवेश था? (भाग-एक)	87
18.	क्या प्राचीन इंग्लैण्ड भारत का एक उपनिवेश था? (भाग-दो)	92
19.	सूर्योदय से एवं मध्यरात्रि से दिवसारंभ की प्रथाएँ	94
20.	पश्चिम का धर्मगुरु, प्राच्य का पुत्र तथा भारत का शिष्य : महात्मा ईसा	98
21.	यहूदी एवं ईसाई धर्मग्रन्थों में संस्कृत शब्द-भण्डार	104
22.	अरब पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव	108
23.	अरब देश पर भारतीय प्रभाव	118
24.	विश्व इतिहास के चार पर्दे	120
25.	मेरी अमरीका यात्रा-I	160
26.	मेरी अमरीका यात्रा-II	164

27. भारतीय ज्ञान का प्रशंसक : थोरो 167
28. नेपाल, चीन, जापान एवं रोम पर भारत की छाप 177
29. विज्ञान का जनक पश्चिम नहीं, भारत है 180
30. पश्चिम की कालगणना 181
31. आधुनिक कालगणना में भारत की देन 182
32. भारतीय आयुर्विज्ञान का सार्वभौम महत्त्व 187
33. भारतीय दर्शन की पूर्णता 195
34. कल्याणकारी शिव का विश्वव्यापी रूप 197
35. गणपति गणेश की भू-परिक्रमा 203
36. रामायण का विश्व को अवदान 207
37. भगवान् श्रीकृष्ण का विश्वव्यापी व्यक्तित्व 216
38. विश्व मानस पर गीता दर्शन का प्रभाव 217
39. वैज्ञानिक जगत् और गीता 226
40. कुशल प्रशासक बनने में गीता का अवदान 228
41. उद्योग, व्यवसाय-प्रबंधन जगत् और गीता 229
42. विश्व मानस पर भगवान् बुद्ध का प्रभाव 232
43. वेदान्त की विज्ञान को चुनौती 234
44. पर्यावरण के प्रति भारतीय दृष्टि 239
45. पर्यावरण के प्रति पश्चिम की दृष्टि 243
46. वर्तमान में हिन्दू धर्म के प्रति बढ़ता विश्व का आकर्षण 250

परिशिष्ट

47. विश्वशांति की कहानी 256
48. विश्व में शांति कैसे सम्भव है?-I 265
49. विश्व में शांति कैसे सम्भव है?-II 269
50. भारत की विदेश नीति 275
51. विश्व इतिहास के आलोक में भारत का भवितव्य 278
52. हमारे पतन का कारण अध्यात्म नहीं 280
54. सेवा का पुनीत संकल्प 282
55. चित्रदीर्घा 283

इतिहासज्ञ हरवंशलाल ओबराय से भेंटवार्त्ता

फरवरी, 1980 में पटना में डॉ. शत्रुघ्नप्रसाद द्वारा लिया गया साक्षात्कार

वर्षों से छोटानागपुर के वनवासियों के बीच भारतीय इतिहास, संस्कृति तथा समाज जीवन के संदेशवाहक के रूप में अथक भाव से कार्य करने वाले तथा सम्पूर्ण विश्व में प्रसारित भारतीय संस्कृति पर शोध करने वाले प्रो. हरवंशलाल ओबराय से भेंटवार्त्ता अपने-आप में रस-सृष्टि कर गयी। यह रस आचार्य चतुरसेन शास्त्री का अतीत रस कहलाएगा या अद्‌भुत रस, कहना कठिन है। संस्कृति विहार, रांची के निदेशक प्रो. ओबराय एक साधक हैं। संस्कृति की साधना उनमें मूर्तिमान हो गयी है। पटना आने पर मैंने उनसे भेंट की। इतिहास और संस्कृति के अनेक प्रश्न मन में घुमड़ रहे थे। वे प्रश्न उनके सामने प्रस्तुत हुए और उनके उत्तर मेरे समक्ष।

प्रश्न : इतिहास क्या है?

उत्तर : इतिहास एक राष्ट्र के उत्थान-पतन की तथ्यपूर्ण गाथा है। मैं समझता हूँ कि 'राष्ट्रस्यचक्षु इतिहासमेतत्' अर्थात् 'इतिहास राष्ट्र का चक्षु है' इसके द्वारा राष्ट्र अपने अतीत को पहचानता है। वर्तमान को समझने की चेष्टा करता है। भविष्य के निर्माण की प्रेरणा प्राप्त करता है।

प्रश्न : इतिहास लेखन का मूलाधार संस्कृति हो, राजनीति हो या अर्थ नीति हो?

उत्तर : प्रत्येक राष्ट्र एक सांस्कृतिक इकाई है। जब उसकी गाथा लिखी जाए तो वह उसके जीवन के समग्र पहलुओं को स्पर्श करने वाली हो। संस्कृति की भिन्न-भिन्न विधाएँ हैं—भारतीय राजकारण, भारतीय कला, साहित्य, विज्ञान, धर्म, भाषा और अर्थनीति। केवल राजनीतिक इतिहास राजा-रानियों, शासकों-प्रशासकों, आक्रांताओं और लुटेरों का इतिहास रह जायगा। उसे सच्चे अर्थ में भारत का इतिहास नहीं कहा जाएगा। केवल आर्थिक आधार पर इतिहास का विश्लेषण नितान्त अशुद्ध है, क्योंकि इसमें पैसे का मानव से अधिक महत्त्व मान लिया जाता है। इतिहास का प्रेरक कारण धन नहीं, प्रेरणापूरित जन हैं।

प्रश्न : इतिहास और पुराण में क्या फर्क है?

उत्तर : प्राचीन काल में पुराण और इतिहास—दोनों को एक सारिणी में रखकर चलाया जा रहा था। आगे चलकर हमने इतिहास और पुराण में अन्तर माना कि प्राचीन पुराणकर्ता कवियों द्वारा अतिशयोक्तिपूर्ण अलंकारिक शैली में और कई बार प्रतीकात्मक शैली में जो प्राचीनकाल के राजर्षियों और ब्रह्मर्षियों का वृत्त एवं समाज के अन्यान्य विषयों का परिचय लिखा गया है, वह पुराण है। इसकी तुलना में कालक्रम की सारिणी में सुसंबद्ध और भूगोल के चौखटे में सज्जित बिना अलंकारिक शैली के शुद्ध तथ्यों का निर्दोष विवरण इतिहास है। देश, काल और प्रांत—तीनों का तथ्यपूर्ण परिचय इतिहास में ही मिलता है। पुराण पात्रों का परिचय बताता है, काल की वास्तविक तिथि नहीं बताता। युग का मात्र संकेत दे देता है। प्राचीन भूगोल के जो नाम पुराणों में बताए गए हैं, उन्हें आज के भूगोल में शोधन द्वारा ठीक-ठीक बिठा पाना बहुत बड़ा शोध-कार्य होगा।

प्रश्न : पुराणों के काल विभाजन और इतिहास के मान्य काल विभाजन में बहुत फर्क है....क्यों?

उत्तर : भारत में कालगणना की अपनी विशिष्ट परम्परा है। भगवान् सब जीवों के अन्तर में बैठकर आत्मरूप में शासन करते हैं और बाहर से प्रकृति पर कालरूप में शासन करते हैं। इसलिए काल को 'कालपुरुष' कहा गया है। सभी जड़ वस्तुएँ काल में, अर्थात् काल के मुख में हैं। काल उन्हें खा जाता है। आत्मतत्त्व कालातीत है, कालबाह्य और शाश्वत है। बहिर्मुख संसार काल में घटित है और अंतर्मुख ज्योति शाश्वत और कालातीत है। बाहर की कालबद्ध घटनाओं का अध्ययन इतिहास करता है और अन्तर की शाश्वत ज्योति का दर्शन आत्मतत्त्व दर्शन द्वारा ही सम्भव है। पुराणों में बाहर के घटनाक्रम की कालबद्ध चर्चा कल्पों में, युगों में, संवत्सर में की गयी है। सारे भारत में आज तक चलने वाला संकल्प का मंत्र समान है। भारतभर के हिन्दू तथा विश्वभर में फैले प्रवासी हिन्दू भी हाथ में जल-अक्षत लेकर 'श्री ब्रह्मणः द्वितीय परार्द्धे श्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे बुद्धावतारे विक्रमार्द्ध द्विसहस्त्र षष्टविंशति संवत्सरे' गाते हैं। हमारी यह कालगणना पश्चिम के इतिहासकारों की कालगणना की तुलना में बहुत अधिक प्राचीन है। पुराण प्रायः इसी कालगणना के अन्तर्गत तथ्यों का विवरण देते हैं, जिसे समझने वाले एवं उसका यथोचित आकलन करने वाले लोगों का अभाव है।

भारत में संवत्सर चक्र साठ-साठ वर्ष के माने गए हैं। साठ वर्षों के बाद ग्रह-नक्षत्र प्रायः पहली दशा में आ जाते हैं। वर्तमान काल में कलियुग के सत्ताईस संवत्सर चक्र समाप्त होकर अट्‌ठाईसवाँ चल रहा है। इसकी तुलना में पश्चिम की कालगणना भिन्न एवं अति नवीन-सी है। ईसा के जन्म एवं मृत्यु की वास्तविक तिथि किसी को मालूम नहीं है। 'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के अनुसार भी ईसा के मरने के तीन सौ वर्ष बाद तक क्रिसमस महोत्सव मनाया ही नहीं गया था। फिर किसी ने मार्च में, किसी ने मई में मनाना आरम्भ किया। जब ईसाईयत का प्रवेश यूरोप में हो गया तब तीसरी शताब्दी के बाद 25 दिसम्बर, जो वास्तव में ईसाईयत से पहले रोम एवं सारे यूरोप में सूर्य-पूजा (मकर संक्रांति) का पर्व था, उसे ही क्रिसमस के रूप में प्रचारित किया जाने लगा। ईसाईयत से पूर्व सारे यूरोप में सूर्य-पूजा (मित्र-पूजा) चलती थी, जिसे 'मिथरेज्म' कहा जाता था। रोम में ही यूरोप का सबसे बड़ा सूर्य-मन्दिर था जिसे 'आदित्यालय' कहा जाता था। 'आ' के लोप से 'दितालय' और 'द' के लोप से 'इतालय' हो गया है।

ईसा के जन्म एवं मृत्यु की तिथि अनिश्चित होने से पश्चिम के कई इतिहासकार ईसा के अस्तित्व में ही संदेह करने लग गए हैं। जब इतिहास की घटनाओं को ईसवी सन् में बाँधने की चेष्टा की गयी तो बहुत बड़ी गड़बड़ी फैल गयी। प्रश्न उठा कि ईसा के जन्म से पहले की घटनाओं को काल में किस माप से मापा जाए? तब 'ईसा-पूर्व' की कल्पना की गयी। इन्हीं कल्पनाओं के आधार पर सिकंदर के भारत-आक्रमण की घटना को ईसा पूर्व 326 में निश्चित किया गया। यह विचित्र विडम्बना है कि घटना पहले घटी और उसे मापने के लिए मापकयंत्र बाद में खोजा गया।

प्रश्न : भारत का सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक प्रसार कहाँ तक हुआ था?

उत्तर : भारत के ऋषियों ने शुद्ध सांस्कृतिक प्रेरणा से गाया था—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'। संसार को आर्य बनाने की भावना विश्व के सब लोगों को अपना गुणा हुआ ज्ञान और अपनी सधी हुई शान्ति बाँटने की उदात्त प्रेरणा है। इसमें कोई राजनीतिक स्वार्थ या साम्राज्यवादी लिप्सा नहीं थी। कविगुरु रवीन्द्रनाथ कहते हैं—'भारतीय संस्कृति पूर्ण प्रफुल्लित पुष्प के समान है जिसके पराग के बीज अनुकूल पवनों द्वारा संसार के विभिन्न देशों में ले जाए गए तथा कालांतर में वहाँ भी भारतीय संस्कृति के पादप लहराने लगे और सारा विश्व भारतीय संस्कृति की सुवास से सुवासित

हो उठा'। अतः विदेशों में भारतीय सांस्कृतिक साम्राज्य पहले फैला और कहीं-कहीं आर्थिक, व्यापारिक एवं राजनीतिक विस्तार भी हुआ। पूर्व में फिजी द्वीपसमूह, उत्तर में साइबेरिया, पश्चिम में मैक्सिको, बोलेविया, पेरू एवं ग्वाटेमाला तक तथा दक्षिण में ऑस्ट्रिक द्वीप तक भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ।

प्रश्न : यह प्रसार काल कब-से-कब तक है?

उत्तर : बुद्ध काल से पूर्व भारतीय संस्कृति का विस्तार लगभग उस समय तक के सभ्य संसार में हो गया था। बौद्ध-भिक्षुओं ने सनातन धर्म के प्रचारकों का अनुसरण करते हुए बाद में बौद्ध धर्म का विस्तार किया। अतः महाभारत काल तथा बौद्ध काल के बीच सनातन धर्म के विस्तार का काल रहा। बुद्ध काल तथा गुप्त काल के बीच बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार हुआ और गुप्त काल से हर्षवर्धन काल तक पुनः सनातन धर्म का प्रसार हुआ।

प्रश्न : 12वीं सदी में भारत के पतन का मुख्य कारण क्या है?

उत्तर : मुख्य कारण तो राष्ट्रीय चरित्र का अभाव ही है। कुछ सामाजिक और कुछ धार्मिक कारण भी हैं। पर कुल मिलाकर राष्ट्रीय चेतना का अभाव ही पतन का मुख्य कारण है। धार्मिक कारण बौद्ध-ब्राह्मण द्वंद्व और सामाजिक कारण में सामाजिक विषमता को माना जाता है।

मार्च, 1980 के 'जाह्नवी' (हिन्दी मासिक) में प्रकाशित

अविच्छिन्न भारतीय परम्परा

यूरोप में पुरातत्त्व के अवशेषों के अतिरिक्त होमर से पूर्व के कोई चिह्न नहीं मिलते, किन्तु भारत में सिन्धु सभ्यता के काल से आज तक सभ्यता की अविच्छिन्न परम्परा चलती आ रही है।

—प्रो. ओबराय

वैदिक धर्म न केवल प्राचीनतम धर्म है, वरन् सर्वाधिक पूर्ण धर्म भी है। यह विश्व के धर्मों में सर्वप्रथम और सर्वोच्च स्थान पर है।

—सन्त टाल्सटाय

उत्तरी सीमा पर चीनी आक्रमण—इतिहास की भीषण चेतावनी

इतिहास के उषाकाल में भारत ने सारे विश्व को जो ज्ञानालोक प्रदान किया उसी परम्परा में एशिया के अनेक देशों के समान चीन को भी धर्मदृष्टि प्रदान की। किन्तु, जहाँ भारत ने चीन को करुणावतार भगवान बुद्ध प्रदान किए वहाँ चीन आज भारत की छाती पर गोलियाँ चला रहा है, चीन का धर्मभूमि भारत पर हमला पाकिस्तान का हजरत मुहम्मद की जन्मभूमि मक्का पर हमला करने के तुल्य है।

भारत की प्राकृतिक सीमाएं

ईश्वर की ओर से भारत को जितनी प्राकृतिक एवं सुदृढ़ सीमाएं प्राप्त हुई थी वैसी संसार के किसी भी अन्य देश को प्राप्त नहीं हुई। उत्तर में 3000 वर्गमील का हिमालय हमारे रक्षक के समान खड़ा है। पश्चिमोत्तर में हिन्दूकुश की ऊंची पर्वत श्रृंखला थी, बाकी तीन ओर अनन्त सागर प्रत्येक आक्रांता को लीलने के लिये आकुल है। किन्तु, जितनी सुदृढ़ सीमाएं हमें प्रकृति से प्राप्त हुई उसके मुकाबले में हम अपनी सीमाओं की रक्षा के प्रति उतने जागरूक नहीं रहे। दर्रा-खैबर एक साधारण सा दर्रा है जो कहीं-कहीं कुछ गज मात्र ही है और कहीं-कहीं एक फर्लांग मात्र। हमने शत्रु को वहाँ नहीं रोका और हर गजनवी, गोरी, खिलजी, हर तुर्क, तातार, मुगल, अफगान सारे भारत को रौंदता हुआ चला गया। हमने शत्रु को सीमा पर नहीं कुचला। बाद में बारी-बारी झेलम, रावी, व्यास, सतलुज पर हम शत्रु से भिड़े सही, किन्तु देश को गुलामी के पंजे से न बचा सके। एक बख्तियार खिलजी मुट्ठी भर सैनिकों के साथ आया और मुट्ठी भर सैनिकों के साथ सारे भारत को रौंदता हुआ बंगाल तक बढ़ गया। नालन्दा विश्वविद्यालय के महान् पुस्तकालय को जला दिया। नालन्दा तथा विक्रम विश्वविद्यालयों के हजारों स्नातकों तथा ब्रह्मचारियों को तलवार के घाट उतार दिया तथा बोरों में भरवाकर समुद्र में फिंकवा दिया। सीमा सुरक्षा के प्रति एक छोटी सी असावधानी के कारण सारे देश को डेढ़ हजार वर्ष तक की गुलामी का शिकार होना पड़ा। क्या हम इतिहास की इस भीषण चेतावनी पर ध्यान देंगे?

ब्रिटिश शासन में भारत की सीमा सुरक्षा

अंग्रेजों ने भारत के पश्चिमोत्तर में अफगानिस्तान को एक 'बफर स्टेट' के रूप में रखा। उस के साथ ही आगे की सीमा प्रारम्भ हो जाती है। अंग्रेज ने जान लिया कि यदि कहीं भारत की सीमा रूस जैसे बड़े एवं भयंकर देश के साथ जा लगी तो सदा संकट बना रहेगा। अतः अंग्रेजों ने अफगानिस्तान के साथ तीन युद्ध लड़े तथा अफगानिस्तान को भारत तथा रूस के बीच 'बफर राज्य' रखा ताकि रूस द्वारा होने वाला प्रथम हमला अफगानिस्तान सहे तथा तब तक भारत सम्भल जावे। इसी प्रकार उत्तर में चीन को भारत की सीमा से सदा दूर रखने के लिए तिब्बत को स्वाधीन 'बफर स्टेट' के रूप में रखा गया। तिब्बत के गुलाम होने का अर्थ भारत के द्वार पर नित्य का झगड़ा है। अतः हमारे देश की 3000 मील की उत्तरी सीमा (मेकमोहन लाइन) तिब्बत से मिलती थी न कि चीन से। तिब्बत एक शान्तिप्रिय देश था तथा भारत का उत्तरी सीमांत सदा सुरक्षित था। पूर्व की ओर हिन्द-चीनी के झगड़ों को भारत की सीमा से दूर रखने के लिए अंग्रेज ने स्याम देश को स्वतन्त्र 'बफर स्टेट' रखा ताकि भारत की सीमाओं से झगड़े या संकट की अग्नि को सदा दूर रखा जाये।

वर्तमान असुरक्षित सीमान्त

अब पाकिस्तान के निर्माण की भयंकर भूल से भारत की 2500 मील की सीमा पूर्व और पश्चिम में पाकिस्तान जैसे झगड़ालु देश से जा मिली है। यह सीमा प्राकृतिक नहीं, खेतों और मैदानों में से गुजरती है। इस की रक्षा भी एक महान् समस्या है। फिर उत्तर की ओर चीन द्वारा तिब्बत की हत्या होने के पश्चात् भारत का 3000 मील का उत्तरी सीमान्त लालचीन के खूनी पंजों की मार में आ गया है। वे जब चाहते हैं, जहाँ चाहते हैं वहीं गोलियाँ चला कर भारत के क्षेत्र पर अधिकार कर रहे हैं।

तिब्बत का नरमेध

तिब्बत संसार के उच्चतम पठार पर अवस्थित शान्तिप्रिय, शीत प्रधान देश है। वहाँ की आधी से अधिक जनता लामाओं (साधुओं) की है। प्रत्येक घर में से कम से कम एक व्यक्ति को लामा बनाया जाता है।

उन निहत्थे साधुओं के मठों के भीतर घुस कर चीनी दरिन्दों ने 65 हजार लामाओं की हत्या कर दी है। भारत सरकार ने तिब्बत पर चीनी शासन को मान्यता देकर भारतीय इतिहास की सबसे बड़ी भूल की है। तिब्बत की रक्षा का उत्तरदायित्व सदा भारत पर रहा है। अभी तक वहाँ की एक तार व्यवस्था भारत के हाथ थी, ल्हासा में भारतीय सेना की टुकड़ी सदा रहती थी। सांस्कृतिक दृष्टि से भी हम

तिब्बत देश को कभी भी भूल नहीं सकते। यह हमारे कैलास एवं मानसरोवर का देश है। गंगा, सिन्धु एवं ब्रह्मपुत्र का उद्‌गम स्थल भी वहीं है। यह त्रिविष्टप देश हमारा प्राचीन स्वर्ग है। इसकी हत्या के पश्चात् भारत सदा संकट में है।

चीन का षड्‌यन्त्र

चीन ने 5 वर्ष पूर्व के नक्शों में भी 44 हजार वर्गमील भारतीय क्षेत्र को चीन का भाग दिखाया था। अब उन्होंने भारत का साढ़े आठ हजार वर्गमील क्षेत्र अपने खूनी पंजे के नीचे दबा लिया है। साढ़े आठ हजार वर्गमील का अर्थ लगभग 1000 जालन्धर शहर जितना क्षेत्र है। पं. जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिन पर चाऊ भाई ने 9 भारतीयों की लाशें उपहार में भेजीं!! क्या भारतीयों के स्वाभिमान को यह चुनौती नहीं है?

चीन भारत का शीश काटना चाहता है। क्या भारतीय सिंह अपनी गर्जना से शत्रु का कलेजा कंपा देगा? पंजाब केशरी ला. लाजपत राय की हुँकृति हम स्मरण करें—

मगर यह बात कहने में, न चूके हैं न चूकेंगे।
लहू देंगे मगर इस देश की, मिट्टी नहीं देंगे।।

राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दू का सैनिककरण

'जब तक देश की राजनीति का हिन्दूकरण और हिन्दू का सैनिककरण नहीं किया जाएगा तब तक भारत की स्वाधीनता, उसकी सभ्यता व संस्कृति कदापि सुरक्षित नहीं रह सकेगी। मेरी तो हिन्दू युवकों से यही अपेक्षा है कि वे अधिक संख्या में सेना में भरती होकर सैन्य विद्या प्राप्त करें ताकि समय पड़ने पर वे अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा में योग दे सकें! विद्यालय में सैनिक शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाए।'

—स्वातंत्र्य वीर सावरकर

अहिंसा की भ्रान्त व्याख्या ने ही राष्ट्रीय चिन्तन को, विवेक की शक्ति से वंचित किया है। हमने शक्ति को ही 'हिंसा' मानना प्रारम्भ किया है और अपनी 'दुर्बलता' को हम गौरवान्वित करने लगे हैं।... विश्व दुर्बलों के जीवन-दर्शन को, चाहे वह कितना भी उदात्त क्यों न हो, सुनने को तैयार नहीं है।'

—गुरुजी (माधव सदाशिव गोलवलकर)

अखण्ड भारत के त्रिकोण—अफगानिस्तान, बर्मा और श्रीलंका

इस देश की रक्षा अंग्रेजों ने बहुत बढ़िया की—जितनी बढ़िया सुरक्षा अंग्रेजों ने की शायद स्वाधीन भारत उसकी तुलना में शतांश भी नहीं कर सका। अंग्रेजों ने क्या किया? अंग्रेजों ने सोचा—भारत ब्रिटिश साम्राज्य के ताज का सबसे कीमती हीरा है। इसको सदा सुरक्षित रखो। क्योंकि इससे भोग मिलेंगे। भारत, भारतीयों के लिये नहीं वरन् अपने लोगों के लिये वे सुरक्षित रखना चाहते थे।

इसलिये उत्तर में तिब्बत को बफर स्टेट बनाया। बफर स्टेट अर्थात् दो बड़े राज्यों के बीच में एक छोटा राज्य जो Shock absorbing State की तरह। जैसे गाड़ी में आप चलते हैं तो रास्ते की टूट-फूट, उसके ऊबड़-खाबड़ से जो धक्के लगते हैं उससे बचने के लिए एक Shock absorber लगाया जाता है, Spring लगाये जाते हैं ताकि धक्के को वह Spring सह ले और हम बच जायें। बफर स्टेट जो है Shock absorbing State होता है। चीन का धक्का पड़ा भारत की ओर तो तिब्बत ने सह लिया। बच गया भारत, सावधान हो गया, तब तक भारत ने जवाबी हमला कर दिया। तो, अंग्रेजों ने तिब्बत को बफर स्टेट बनाया था। उधर अफगानिस्तान को बफर स्टेट बनाया। भारत की अखण्डता में एक Triangle A, B, C है। A, B, C क्या है? A, B, C है अफगानिस्तान, बर्मा, श्रीलंका। यह Triangle है।

अखण्ड भारत की त्रिकोण है A, B, C अर्थात् अफगानिस्तान, बर्मा और श्रीलंका।

अफगानिस्तान

अफगानिस्तान हमारा गंधार देश है। अफगानिस्तान में संसार की सबसे विशाल खड़ी मूर्ति है 175 फुट ऊँची है वह बामीयान में। और, एक इससे भी विशाल मूर्ति है वह बैठी हुई मूर्ति है। वह चीन में है। लुसान नामक स्थान में। इससे भी बड़ी बैठी हुई मूर्ति, उसका आकार है 276 फुट। उसकी दो जंघाओं के बीच

इतनी जगह है जिसमें सौ व्यक्ति आराम से बैठ सकते हैं। उसकी एक-एक अंगुली जो है वह 12-12 फुट, 13-13 फुट लंबी है। बड़ी विशाल मूर्ति है। तो दुनिया में विशालता में चीन, अफगानिस्तान और थाइलैण्ड एक-दूसरे से प्रतियोगिता करते हैं। अब दो सौ फुट लंबी, लेटी हुई मूर्ति Sleeping बुद्धा बैंकाक में बनाई। इस तरह हर आदमी कोशिश करता है ऊँचा बनाये, लंबा बनाये।

तो अफगानिस्तान प्राचीन गंधार देश था। दुर्योधन की माँ गांधारी वहीं की थी। शकुनि, दुर्योधन का मामा भी वहीं का था। पाणिनि वहीं के थे। वहाँ की भाषा पर संस्कृत का बड़ा प्रभाव है और आज तक वह प्रभाव जीवित है। पस्तो भाषा में कम से कम 45 प्रतिशत संस्कृत के शब्द अभी भी आप खोज सकते हैं। कुछ तत्सम और कुछ तद्भव। सयाने व्यक्ति को ऋषि बोलते हैं। सयाने और एक पठान दूसरे पठान से मिलता है तो कहता है कुशल। और वहाँ पर कुभा नदी, वेदों में जिसका उल्लेख है, आजकल उसे काबुल नदी कहते हैं, काबुल नगर कहते हैं। काबुल विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष हैं वे हमारे मित्र हैं जो पहले पंजाब विश्वविद्यालय में पढ़ाते थे और, वहाँ पर उन्होंने संस्कृत के अध्ययन को पहले से अधिक महत्त्व देना शुरू किया। अभी अनिवार्य कर दिया। अफगानिस्तान और ईरान में संस्कृत का अध्ययन अनिवार्य हो गया। वे कहते हैं इसके बिना वे अपनी भाषा ही नहीं समझते। सबसे श्रेष्ठ लेखन कला, लिपि, विद्या कहीं थी तो गंधार में थी। जिसको वे श्वेत गंधार कहते हैं। एक समय वहाँ सब हिन्दू ही थे। बप्पा रावल के समय के सब राजपूत लोग हैं। बाद में धर्मान्तरण हो गया। राजपूत की आन-बान पठानों में आज भी है। अस्तु, अफगानिस्तान अखण्ड भारत के त्रिकोण का एक बिन्दु है।

दूसरा बिन्दु है बर्मा, ब्रह्मदेश। ब्रह्मदेश की राजधानी का नाम रामावती, रामावती से हुआ रमनवती, रमनवती से रंगनवती, रंगनवती से रंगन और रंगन से रंगून हो गया। वहाँ से 30 किलोमीटर दूर है हंसावती। वहाँ का माडले (जेल) तो हमारा तीर्थ हो गया जहाँ लोकमान्य तिलक ने बैठकर गीतारहस्य लिखा। हमारे बड़े-बड़े क्रान्तिकारियों को वहाँ का कारावास मिला। वहाँ एक नगर है अनिरुद्धपुर। अनिरुद्धपुर का एक नाम है आजकल अनुरोधपुर। फिर आजकल पगान भी नाम हो गया है। ह्वेनसांग कहता है जब वह वहाँ यात्रा पर गया था तब वहाँ ढाई लाख मंदिर देखे थे। अभी भी 15-20 मील के घेरे में 10-12 हजार मंदिर गिन सकते हैं। विष्णोमिया नामक नगर है जिसमें विष्णु की दशावतार मूर्तियाँ हैं। वहाँ की रामलीला बड़ी अलौकिक है। वहाँ पर स्वैडागपगौडा संसार का Richest मंदिर है। रंगून से 10 किलोमीटर बाहर एक ऊँची पहाड़ी पर एक पठार है। उस पर उसके चारों ओर के घेरे में 64 शिखर हैं, 64 शिखरों की गोलाई को लेकर बीच

में 65वां शिखर है। यह 65वां शिखर 368 फुट ऊँचा गया है। 65 के 65 शिखर सोने के पत्तरे से मढ़े हुए हैं। उनमें पाँच हजार हीरे जड़े हैं। साढ़े तीन हजार अन्य जड़ाऊ पत्थर हैं। चारों ओर ऊपर जाने के लिये सीढ़ियाँ हैं। 365 सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। इतनी विशाल सीढ़ियाँ हैं कि हाथी भी सरोवर से सूँड से कमल को तोड़कर सीढ़ियों से चढ़कर (आकार Solid Gold की 18 फुट) भगवान बुद्ध की मूर्ति के चरणों में चढ़ाकर, मस्तक नवाकर चला जाता है। ब्रह्मदेश अपना अखण्ड भारत का अविभाज्य अंग है।

श्रीलंका अपना है। सन् 1982 में वहाँ पर विश्व हिन्दू सम्मेलन हुआ। वहाँ पर हमने प्रदर्शनी लगायी। राष्ट्रपति जयवर्द्धन ने कहा—हमने जीवन में ऐसी सुंदर प्रदर्शनी कहीं नहीं देखी। वहाँ के Cultural Minister आये। उन्होंने कहा—मैं भारतवंशी हूँ। पर मैंने भारत में और श्रीलंका में कहीं भी ऐसी प्रदर्शनी नहीं देखी। उसकी रंगीन टेलीविजन फिल्म बनाई और सारे देशवासियों को दिखाई। वह एक अलौकिक देश है। जाफना में 85 प्रतिशत हिन्दू बसे हुए हैं। शिव के मंदिर ही मंदिर हैं। त्रिपुण्ड लगाये, धोती पहने लोग घूम रहे हैं। ओम नमः शिवाय। शिवरात्रि पर महान् मेले लगते हैं।

वहाँ पर रावणेश्वर महादेव हैं। जैसे रामेश्वर महादेव हैं वहाँ पर रावणेश्वर महादेव हैं। लुअर एलिया नामक स्थान है जहाँ पर रावण की राजधानी थी। और आठ हजार फुट समुद्रतल से ऊँचा है। त्रिकूट पर्वत पर लंका बसी हुई है। यह वाल्मीकि रामायण ने कहा। त्रिकूट पर्वतों में एक पर्वत है लुअर एलिया, दूसरा पर्वत है श्रीपाद पर्वत, तीसरा है सीता एलिया। तो लुअर एलिया रावण की राजधानी है। सीता एलिया अशोकवन है जहाँ रावण ने सीता को रखा था। इसके पास सीताजी का मंदिर है। वहाँ सीताजी बीच में है। प्रायः सब मंदिरों में राम बीच में होते हैं। वहाँ तो सीता बीच में है और राम उनकी दायीं ओर हैं बायीं ओर लक्ष्मण हैं और हनुमानजी चरणों में हैं। शिखर में अनेक मूर्तियाँ बनी हुई हैं। हनुमानजी सीता के सामने परिचय दे रहे हैं अपना निवेदन कर रहे हैं, कहीं मुद्रिका दे रहे हैं, कहीं चूड़ामणि ग्रहण कर रहे हैं, कहीं अशोकवन में फल खा रहे हैं। पीछे विशाल अशोकवन है।

उसके पचासों चित्र हम लेकर आये हैं। मूर्ख लोगों को संतुष्ट करने के लिये जो कोई कहता है लंका मध्यप्रदेश में है, तो कोई कहता है लंका आंध्रप्रदेश में है। बुल्के का स्वर्गवास हो गया है। वह कहता है छोटानागपुर ही रामायण काल की लंका थी। उरांव लोग रावण की संतान हैं।

वहाँ पर संजीवनी मलय नामक पर्वत है जहाँ पर संजीवनी बूटी लेने हनुमानजी गये थे। लक्ष्मणजी की मूर्च्छा दूर हुई और उसका कुछ अंश वहाँ छूट

गया। वहाँ संजीवनी बूटी उगती है और अभी भी बेहोशी दूर करने की बहुत प्रबल औषधि (आयुर्वेद में) लंका में प्रचलित है।

श्रीपाद पर्वत है जिस पर सब धर्मों का दावा है कि हमारा है। मुसलमान, यहूदी, ईसाई उसे एडम स्पिक कहते हैं। बाबा आदम का पांव लगा हुआ है। वे कहते हैं आदम को जब स्वर्ग से गिराया गया था तो यहीं गिरा।

बौद्ध लोग उसको श्रीपाद कहते हैं। भगवान बुद्ध के चरणों का तीर्थ है। शैव लोग उसको शिवपाद कहते हैं। शिव के चरणों का तीर्थ है।

सबका दावा है और सब जाते हैं पर बौद्धों का बाहुल्य है। उस क्षेत्र में बौद्ध हिन्दू हैं वे। उत्तरी भाग में बौद्ध भी हिन्दू ही हैं। लेकिन बौद्ध हिन्दू हैं वे उत्तरी भाग में जाफना आदि में इनका बाहुल्य है और दक्षिणी भाग में बौद्ध लोगों का बाहुल्य है।

आगे, कोणेश्वर महादेव त्रिकोणावली जगह है। समुद्रतट पर विशाल पर्वत है। अचानक, समुद्र के तट पर इतना विशाल पर्वत बहुत कम मिलता है। समुद्रतट पर प्रायः जमीन समतल होती है। अचानक समुद्र के तट पर चट्टानी पर्वत, बड़ा विशाल है। उसके ऊपर बड़ा भारी मंदिर है। उसमें अनेक शिखरों में दिखाया रावण 10 शीश वाला, 20 भुजाओं से कैलास को हिला रहा है। कैलास पर शिव-पार्वती बैठे हुए हैं और हिलाने की चेष्टा कर रहा है। उसको लोग दक्षिण कैलास कहते हैं और जो रावणेश्वर महादेव है वहाँ पर रावण अपने दस शीश काटकर शिव को भेंट करता था। शिव तांडव-स्तोत्र गाता था। एक मनार है। मनार के जो मोती हैं दुनिया में प्रसिद्ध हैं। तो मनार की खाड़ी के मोती संसार में सबसे प्रसिद्ध हैं। उस मनार में इतना विशाल शिव-मंदिर है कि आप भूल जायेंगे कि आप कहाँ हैं? आप समझेंगे कि आप रामेश्वर में घूम रहे हैं। उसको लंका का रामेश्वर कहा जाता है।

भारत के इतिहास में सबसे बड़ी भूल हमारी हो गई है। यह हुई कि हमारा पश्चिमोत्तर द्वार जिसे आज दर्रा खैबर कहते हैं उसका नाम है सिंधुद्वार। मैं उसको दो बार पैदल पार करके गया हूँ। एक-आध बार गाड़ी से पार करके गया हूँ। मैंने उसको देखा, लगभग 10-12 हजार फुट की ऊँचाई पर हिन्दूकुश पर्वत में बहुत संकरा दर्रा है। इतना छोटा दर्रा है कि उस दर्रे में से, उस द्वार में से आने वाली शत्रु सेना को बड़ी कठिनाई होती है बहुत नीचे से, पहाड़ों से चढ़ते-चढ़ते, मोड़-तोड़ लेते-लेते बड़ी कठिनाई से हांफते हुए। सूखे पहाड़ हैं, पानी भी बहुत कम मिलता है, प्यास से कोई मर जाय तो उसको पानी देने वाला भी कोई नहीं है। उन पहाड़ियों से चक्कर खाते-खाते लोग ऊपर आते हैं और कहीं-कहीं तो दर्रा इतना

संकरा है कि दो घोड़े एक साथ पार नहीं हो सकते और, प्रायः आक्रान्ता उधर से आये थे।

यह एजीरोनी का चित्र है। यह रूस के ताशकन्द से आया। संस्कृत पढ़ी। भारत के इतिहास पर लिखा। भारत की संस्कृति पर लिखा। भारत के ग्रंथों का अनुवाद किया, ज्योतिष के ग्रंथों का अनुवाद किया, बहुत काम किया। वह कहता है—इतना महान् देश, इतना पवित्र देश, इतना ज्ञानसम्पन्न देश और यह लुटेरे, दुष्ट-पापियों, नरपिशाचों द्वारा रौंद डाला गया। बड़ा रोता है, दुःख प्रकट करता है। कहता है—इनको होश नहीं आया कि अपनी रक्षा करें।

इधर मुसोडर भी लिखता है, उन्होंने देखा कि भारत सोया हुआ है। कोई सामने प्रत्याक्रमण करने वाला, रक्षक-वक्षक भी नहीं। प्रतिरोध करने वाला कोई है ही नहीं। वह दर्रा खैबर पर पहुँचकर मुस्कराया कि हम दर्रा खैबर पहुँचे तो हमने देश जीत लिया। उस छोटे दर्रे में हम कई बार रोते हैं? इतिहास के आंसू बहाते हैं। यदि वहाँ पर दस सैनिक बैठ जाते तो नीचे से आने वाले दस हजार सैनिकों को वहीं पर धराशायी कर सकते थे। वहीं पर द्वार था। सब आक्रान्ता प्रायः उधर से ही आये अंग्रेजों को छोड़कर और हमने भारत की रक्षा नहीं की। इतिहास की महानतम भूल मैं इसी को मानता हूँ कि हमने अपने सिंधुद्वार की रक्षा नहीं की। यदि वहाँ पर कोई शस्त्र नहीं रहता और शत्रु की सेना नीचे से ऊपर चढ़ रही है तो हमारे वीर वहाँ से केवल चट्टानें एवं पत्थर ही लुढ़काते जाते, चट्टानों से शत्रु की लाखों सेना कुचली जा सकती थी। क्योंकि हम ऊपर होते, उनको नीचे से ऊपर चढ़ना था। कुछ न करते, पहाड़ लुढ़काते जाते, शत्रु कुचला जाता। हमने देश की सीमा की रक्षा नहीं की। उस अपराध के कारण देश की लाखों-करोड़ों संतानों को हजार वर्ष तक पराधीन रहना पड़ा।

इसलिये रणजीतसिंह ने इस चीज को पहचाना। उन्होंने देखा कि सब आक्रान्ता इससे होकर आते हैं। तो मैं उलटा उधर की ओर मार करूंगा। उन्होंने अपनी सेनायें सजायी। हरिसिंह नलवा के नेतृत्व में सेनायें मार्च करती-करती अटक तक पहुँचीं। अटक वह स्थान है जहाँ से सिंधु नदी तिब्बत में मानसरोवर के पास से निकलती है। तिब्बत में गिलगिट के पास आती है। गिलगिट के बाद नीचे उतरती है, अटक के पास पहुँचती है। वहाँ पंजाब और फ्रंटियर की सीमा कटती है और भयंकर चट्टानी-तूफानी उसका पथ है। पहाड़ों को चीरती हुई, चट्टानों को चीरती, गड़गड़ाती हुई सिंधु नदी वहाँ है। अटक से कटक तक लोग देश की सीमाओं का वर्णन भी करते थे। जब अटक में पहुँचे महाराजा रणजीतसिंह को पंडितों ने कहा—महाराज! रुक जायें, इसके आगे म्लेच्छ भूमि है। पठानों का राज्य था, तो कहा म्लेच्छ भूमि है। महाराजा रणजीतसिंह ने कहा—सबै भूमि

गोपाल की तामें अटक कहाँ। सब भूमि तो गोपाल की है, म्लेच्छ भूमि कौन-सी होती है?

सबै भूमि गोपाल की तामें अटक कहाँ,
जाके मन में अटक है सोई अटक रहा।

जिसके मन में हिचक होती है, अटक होती है, वह अटक जाता है। अटक-वटक कुछ नहीं करना है। उस तूफानी नदी को पार किया। घोड़ों पर पार किया। पेशावर पहुँचे। पेशावर होते हुए दर्रा खैबर पार करके काबुल में जाकर झण्डे गाड़े। केशरिया ध्वज फहरा दिया। पुनः पेशवाओं के बाद रणजीतसिंह ने केशरिया फहराया और उस प्रभाव से पठान स्त्रियों के मन पर ऐसा दबदबा पड़ा कि आज तक पठान स्त्रियाँ अफगानिस्तान की, कलात की, ब्लोचिस्तान की, फ्रंटियर की, सीमान्त प्रान्त की, सब, जब बच्चे को नहलाती हैं तो बच्चा रोता है, या किसी बात पर बच्चा रोता है तो डरावा देने के लिये कहती हैं, अरे, खंजीर के बच्चे! चुप हो जा हरिआ आ गया है। खंजीर उनके यहाँ गाली है। खंजीर यानी सूअर के बच्चे। अरे, खंजीर के बच्चे चुप हो जा, हरिआ आ गला। अर्थात् हरिसिंह नलवा आ गया है। पठान स्त्रियाँ आज तक हरिसिंह नलवा के नाम पर बच्चों को चुप कराती हैं। इतना बड़ा प्रभाव हमारी विजय का आज तक है।

पर दुर्भाग्य से आज यह परंपरा हमारी टूट गयी रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद। जब तक रणजीतसिंह जीवित रहे, अंग्रेजों का कब्जा सारे भारत पर हो गया था सिवाय—पंजाब के। सन् 1845 में रणजीतसिंह की मृत्यु के बाद अंग्रेजों ने पंजाब में प्रवेश किया। उन्होंने दो-दो सिख (war) लड़ी। प्रथम सिख (war) में अंग्रेज हारे, सिख जीत गये। लेकिन दूसरे सिख युद्ध में अंग्रेजों ने एक कूटनीति का अवलंबन लिया। महाराजा रणजीतसिंह की विधवा रानी थी रानी जींदा। उन्होंने उसे धोखे से अपनी ओर मिला लिया और सैनिकों के साथ युद्धभूमि में धोखा हो गया। और सिक्ख हार गए और पंजाब पर भी अंग्रेजों का अधिकार हो गया। अफगानिस्तान, बर्मा और श्रीलंका अखण्ड भारत के त्रिकोण है। अखण्ड भारत के ये अविभाज्य अंग हैं। पर अंग्रेजों ने भारत को सदा दुर्बल बनाए रखने के लिए देश की स्वाधीनता के पूर्व ही भारत से अलग कर दिया। 1903 में अफगानिस्तान को, सन् 1911 में श्रीलंका को तथा 1935 में ब्रह्मदेश को। भारत के सबल होने और विश्व के कल्याण के लिए भारत का अखण्ड होना अनिवार्य है।

योगीराज अरविन्द घोष अखण्ड भारत के दिव्य तत्त्वद्रष्टा के रूप में सदा-सर्वदा पूजित होते रहेंगे। 15 अगस्त 1947 के दिन भारत विभाजन की दुर्भाग्यपूर्ण वेला में उन्होंने देशभर को आशा एवं उत्साह का मार्ग दिखाते हुए कहा था—'देश

निश्चय ही पुनः अखण्ड होकर रहेगा। विश्व की कोई शक्ति इसको सदा के लिए ऐसे कटा-बंटा हुआ नहीं रख सकती। इसमें ईश्वरीय आदेश एवं ईश्वरीय उद्देश्य निहित है।' पर इसको यथार्थ में परिणत करने में बड़ी बाधायें हैं जिसमें एक यह भी है—

कांग्रेस में मौलाना अब्बुल कलाम आजाद आदि जो राष्ट्रीय मुसलमान समझे जाते थे उनकी स्थिति के विषय में 'Muslim politics in secular India' में हमीद दलवाई स्पष्ट करते हुए कहते हैं—जिन्ना एक हिस्से में इस्लाम स्थापित कर वहाँ से सारे देश को धीरे-धीरे ग्रसना चाहते थे और मौलाना अब्बुल कलाम आजाद एक बार में ही सारे देश को इस्लाम में लाना चाहते थे। यही दोनों में अन्तर था। मौलाना अब्बुल कलाम आजाद ने जो मुसलमान पाकिस्तान जाना चाहते थे उन्हें रोका, और समझाया कि यहाँ के मुसलमानों की स्थिति दुर्बल न करें आपको यहाँ बैठे-बैठे ही इसी भारत देश में आपको पाकिस्तान मिल जाएगा।

इस स्थिति से उबरने के लिये जिन्हें भी संविधान द्वारा नागरिकता प्रदान की गयी है उनका भारतीयकरण आवश्यक है। और यह सम्भव है क्योंकि यहाँ ईसाई-मुसलमान सब पूर्व में हिन्दू ही थे, केवल उपासना पद्धति बदल जाने से राष्ट्रीयता, पूर्वज, इतिहास नहीं बदल जाते। अतः इन सबका भारतीयकरण होने पर ही भारत की अखण्डता पुनः सम्भव है।

उन्नीसवीं शताब्दी का भारत नकलची, आत्म-विस्मृत व कृत्रिम था। उसने भारत में यूरोप की अनुकृति सफलतापूर्वक बना लेने का लक्ष्य रखा था, गीता का गूढ़ उपदेश भूलकर—'दूसरे के धर्म का अच्छी तरह अनुपालन करने से भी अच्छा है गुणरहित भी अपने धर्म का पालन करना, अपने धर्म में मरना भी कल्याण कारक है, दूसरे का धर्म भयावह है।' क्योंकि स्वधर्म में मृत्यु नया जीवन लाती है, दूसरे के पथ पर सफलता का भी अर्थ मात्र सफल आत्महत्या ही है।

—ऋषि अरविन्द

× × ×

यदि तुम पाश्चात्यों की नकल करोगे तो तुम्हें न उनकी क्रिया-शक्ति प्राप्त होगी, न ही उनके द्वारा की गई भौतिक उन्नति ही मिल सकेगी। सिंह की खाल ओढ़कर गधा, सिंह नहीं बनता।

—स्वामी विवेकानन्द

हमारे पड़ोसी शिष्य देश

जो भारत विश्व का गुरु रहा है, आज दुर्भाग्य से अपने सभी पड़ोसियों तथा कल तक के शिष्यों के लात-घूंसे तथा चाबुक खाने वाला अभागा नौकर जैसा बन गया है। सन् 1947 में पश्चिमी पंजाब, सिंध सीमाप्रांत, ब्लोचिस्तान, कश्मीर एवं पूर्वी बंगाल में लाखों हिन्दुओं को तलवार के घाट उतारा गया। नन्हे बच्चों को भालों की नोकों पर उछाला गया, नंगी महिलाओं के जुलूस निकाले गये, भवन जलाये गये, धन, प्राण एवं मान-मर्यादा लूटी गई तथा करोड़ों लोगों को उनके हजारों वर्षों के परंपरागत निवास से निर्वासित कर दर-दर का भिखारी, शरणार्थी बना दिया गया।

चीन जो दो हजार वर्ष तक भारत का शिष्य रहा, उसने भी सन् 1962 में तिब्बत की हत्या के उपरांत भारत के लद्दाख एवं नेफा क्षेत्रों पर निर्लज्ज बर्बर आक्रमण कर दिया।

ब्रह्मदेश से (जो सन् 1936 तक भारत का अंग था) लाखों भारतवंशियों की धन-संपत्ति लूट कर उन्हें देश से निकाल दिया गया।

नेपाल जैसे हिन्दू राष्ट्र ने भी भारतीयों के लिए कठोर नियम बनाने प्रारंभ किए हैं तथा उसने भी भारत के संरक्षित राष्ट्र की स्थिति त्याग कर संयुक्त राष्ट्र-संघ में अपनी स्वतंत्र सदस्यता स्वीकार कर ली है। उसको बहुत अधिक आर्थिक सहायता देकर—चीन, रूस, अमेरिका, पाकिस्तान तथा बांग्लादेश भारत के खिलाफ भड़काते रहते हैं।

भारत एवं लंका के सांस्कृतिक सम्बन्ध इतने पुराने हैं जितना कि विश्व का प्रथम महाकाव्य वाल्मीकि रामायण।

अब श्रीलंका में भी, जो विभीषण के काल से अब तक भारतीय संस्कृति का भक्त रहा, गत 2300 वर्षों से भगवान बुद्ध के संदेश से अनुप्राणित रहा तथा सन् 1936 तक भारत का अंग भी रहा, वहाँ भी आज भारतवंशियों की सामूहिक हत्या, आगजनी, लूट-पाट, व्यापक हिंसा द्वारा श्रीलंका से निकालने या नामशेष करने का खूनी नाटक चल रहा है।

भारत की इस अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा-हानि का कारण क्या है? भारत की विदेशों में जो प्रतिष्ठा थी वह सैन्य शासन शक्ति के कारण न होकर भारत की महान नैतिक और आध्यात्मिक संस्कृति के कारण ही थी। उदार हिन्दुत्व कोई पंथ, संप्रदाय या मजहब न होकर इस देश की चिरंतन संस्कृति है। किन्तु जब हमारे प्रशासक हिन्दुत्व को संप्रदाय कहकर भारतीय संस्कृति के उदात्त जीवन-मूल्यों को सांप्रदायिक कूड़ा-करकट कहकर कूड़ेदानी में फेंक देते हैं, तब न भारत की भावात्मक एकता का आधार बचता है तथा न भारत के जगद्गुरुत्व का ऐतिहासिक सम्बन्ध-सूत्र। जिस संस्कृति के उज्ज्वल दीपस्तंभ से अन्य देश प्रकाश पाते थे उसके स्वयं प्रकाशविहीन हो जाने पर पड़ोसी उसे नमस्कार करने के स्थान पर पत्थर ही मारेंगे। संस्कृति को छोड़कर केवल कूटनीतिक सम्बन्ध मात्र रखने से हम सम्मान तो कभी पा नहीं सकते, हाँ, कूटनीतिक दांव-पेंच में कभी-कभी अपमान तो अवश्य पा सकते हैं। राजनीति तोड़ती है संस्कृति जोड़ती है। श्रीलंका और भारत के राज्य और राजनीति दोनों भिन्न हैं। अतः दोनों में स्वार्थों का संघर्ष स्वाभाविक है। किन्तु जिस संस्कृति ने हजारों वर्षों से लंका को भारत का कृतज्ञ शिष्य बनाया है, उस संस्कृति के सम्बन्धों को सजीव एवं सुदृढ़ करने की कोई प्रभावी योजना आज भारत सरकार के पास नहीं है। राजनीति स्वार्थों का अखाड़ा है। संस्कृति उदात्त जीवनमूल्यों की संस्कार परंपरा है। जो सिंहली राजनीतिक विद्वेष में भारतवंशियों को भ्रमवश राष्ट्र शत्रु मानकर उन पर गोलियाँ चलाता है, वही एक भारतीय महापुरुष भगवान बुद्ध के चरणों में अपना तन-मन-धन समर्पित करता है तथा भारतीय तीर्थों की धूलि को मस्तक पर चढ़ाता है। राजनीति काटने वाली कुठारिका है और संस्कृति जोड़ने वाली संजीवनी-सुधा।

अतः पुनः सांस्कृतिक सम्बन्धों को सुदृढ़ करने से राजनीतिक स्वार्थों की आंधिया छंट जाने पर पुरानी स्मृतियाँ कौंधेगी तब ये देश पुनः भारत के चरणों में आ सकते हैं। क्योंकि कोई भी देश एकाएक पूर्णतया बदल नहीं सकता। समय पाकर पुरानी स्मृतियाँ जागेगी तब पुनः भारत ही विश्वगुरु के पद पर स्थापित होगा और सारा विश्व सौख्य शांति का अनुभव करेगा। भारत के पास ही वह कर्तृत्व, व्यक्तित्व, वह भाव, वह दृष्टि है जो सारे विश्व को एक परिवार के रूप में देखती है। सुलझे हुए पश्चिम के विचारकों की दृष्टि में भारत ही भावी विश्व की आशा का केन्द्र है।

'धर्म में जीवन का शाश्वत विधान प्रतिष्ठित है।'

—गुरुजी (माधव सदाशिव गोलवलकर)

आर्य जाति का यूरोप में विस्तार

मनु के जल प्लावन की घटना विश्व की सर्वप्रसिद्ध ऐतिहासिक अथवा प्रागैतिहासिक घटना है जिसका उल्लेख भारतीय, ईरानी, यहूदी, ईसाई, इस्लामी, बेबिलोनी, मिस्री, यूनानी, चीनी तथा चाल्डिया के प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है। मनु के जल प्लावन के समय सारा तत्कालीन आर्यावर्त्त हिमालय से विंध्याचल तक जल में डूब गया था। मनु भगवान ने अपनी नौका को हिमालय के उत्तुंगशिखर (सम्भवतः मनाली) से जाकर बांधा था। उस समय आर्य जाति के बहुत से सदस्यों ने अफगानिस्तान, ईरान के रास्ते से जाकर एशिया एवं यूरोप की सीमा पर स्थित सबसे ऊँचे पर्वतशिखर ऐलबुरूण (काकेशस पर्वत) की छाया में शरण ली।

डॉ. ज्वालाप्रसाद सिंहल ने अपने ग्रंथ The Sphink Speaks से मनु के जल प्लावन की घटना को प्राचीन भूगर्भ शास्त्र के आधार पर पाँच लाख वर्ष पुराना सिद्ध किया है।

मनु के जल प्लावन की घटना को कुरान में 'तूफाने नूह' तथा बाइबिल में Noahs Great Deluge कहा गया है। काकेशस पर्वत की तलहटी में तथा कश्यप सागर (कैस्पियन सागर) के तट पर जहाँ आर्य जाति के बीज की रक्षा उस भयंकर जलप्रलय में हुई उसे आर्यानाम्बीजम् कहा गया। वही कालांतर में आर्यनम् बायजो कहलाया तथा आजकल 'अजरबेजान' कहलाता है। वर्तमान काल में 'अजरबेजान' नाम का एक राज्य सोवियत रूस के अन्तर्गत है जिसकी राजधानी प्रसिद्ध ज्वालामुखी वाला नगर बाकू है तथा इसी नाम का उसकी सीमा से सटा हुआ अजरबेजान ईरान में भी है।

इसी आर्यानाम्बीजम् (अजरबेजान) को यूरोप के अनेक विद्वानों ने भ्रान्ति से आर्यों का मूल स्थान मानकर यूरोपवासी आर्यों को काकेशियन कहना प्रारम्भ किया। आर्यानाम्बीजम् क्षेत्र यूरोप तथा एशिया के मिलन बिन्दु पर स्थित होने के कारण इस क्षेत्र को यूरेशिया नाम से भी पुकारा जाता है। किन्तु वास्तव में अजरबेजान आर्यों के बीज का स्थान न होकर जलप्रलय के समय आर्यों के बीज की रक्षा का स्थान बना था।

उसी जलप्रलय की उथल-पुथल में एशिया तथा यूरोप दोनों महाद्वीपों में बहुत बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। भूगर्भवेत्ता स्वीकार करते हैं कि लगभग उसी समय दक्षिण भारत का त्रिकोण लैमूरिया महाद्वीप से पृथक् होकर आर्यावर्त्त से आ मिला। सम्भवतः उसी समय ब्रिटिश द्वीप यूरोप से पृथक् होकर अस्तित्व में आया।

आर्यानाम्बीजम् के प्राचीन हिन्दू मन्दिर तथा वहाँ संस्कृत शिलालेख के चित्र संस्कृति विहार रांची में सुरक्षित हैं।

जल प्लावन के बाद अजरबेजान से आर्यों की एक शाखा लौटकर पुनः भारत में आयी तथा एक वहीं से आगे यूरोप की ओर बढ़ गई। अतः रूस, लिथूनिया, आर्मेनिया, रूमानिया, बुल्गारिया, चेकोस्लोवाकिया, जर्मनी, इटली, फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल तथा इंग्लैण्ड आदि में स्थानीय जंगली जातियों पर अपनी विकसित सभ्यता का प्रभाव जमाती हुई आर्य जाति सारे यूरोप तथा अमरीका, कनाडा तक फैल गई। रूस में स्लाव जाति के लोग भी थे जो यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया तथा रूस में आज तक विद्यमान हैं। किन्तु ये सब जातियाँ आर्य जाति में घुल-मिल कर आर्य ही बन गईं।

ईरान देश का मूल नाम आर्यान देश है। वह हमारे पड़ोस में होने के कारण उसे पार्श्व आर्यान कहा गया। पार्श्व से पारस, फारस और पर्शिया शब्द बने तथा आर्यान से ईरान। ईरान के शाह अभी तक मुसलमान होने के उपरान्त भी आर्यमिहिर (आर्यों का सूर्य) की उपाधि धारण करते हैं। अफगानिस्तान में संस्कृत की पढ़ाई अनिवार्य है तथा उन्होंने अपने देश की वायु सेवा का नामAryan Air Ways रखा है।

लिथूनिया में भारतीय देवताओं इन्द्र, वरुण, नासत्य आदि का प्रचार हुआ। आर्मेनिया में प्राचीन कृष्ण मन्दिर का प्रमाण मिला है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन रूसी शब्द की ऋषि से व्युत्पत्ति मानते हैं, मैक्समूलर जर्मनी को शर्मण्य देश (ब्राह्मणों का देश) मानता था, 'पाल डायसन' नामक जर्मन विद्वान अपने आप को 'पालदेव सन' कहते थे। जर्मन सरकार अपने प्राच्य विद्या प्रकाशनों में जर्मनी को वेदों का दूसरा घर (Veda's Second Home) प्रचारित करती है.....जर्मन कवि रूखर्ट (Ruckert) की भारत सम्बन्धी कविता अभी तक सर्वश्रेष्ठ कविता में गिनी जाती है। हिटलर अपने आपको सबसे शुद्ध आर्य मानता था। जर्मनी के राष्ट्रध्वज पर स्वस्तिक लहराता था।

इंग्लैण्ड के बुद्धिजीवी अपने आर्य रक्त पर गर्व करते हैं, इंग्लैण्ड के पड़ोस में आयरलैण्ड द्वीप नाम से ही आर्यों का देश सिद्ध होता है। वहाँ के राष्ट्रपति डी. वलेरा ने कहा है 'आयरिश लोग आर्य जाति की पूर्वी लीलाभूमि से आये हैं। Irish people came from the Eastern Cradle of the Aryan Race. अमरीका

के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं प्राच्यविद्या मनीषी विलडूरेन्ट ने छः खण्डों में प्रकाशित लगभग 6000 पृष्ठों के अद्वितीय ग्रंथ सभ्यता का इतिहास (The Story of Civilisation) में स्वीकारा है।

अपनी विदेश यात्राओं में मैंने अमरीका की नार्थ कोरेलाइना यूनिवर्सिटी में यह पाठ पढ़ाते हुए देखा है—यूनान ही विश्व सभ्यता की जननी है। मैंने प्रतिवाद किया—मानव सभ्यता की आदि जननी भारत है न कि यूनान। इस पर एक रोचक वाद-विवाद छिड़ गया। मैंने पूछा—2300 वर्ष पूर्व जब सिकन्दर की विश्वविजय की आकांक्षा थी तो उसने यूनान से, जो यूरोप का एक भाग है, अन्य यूरोपीय देशों की ओर प्रयाण क्यों नहीं किया। इसके उत्तर में वहाँ के अध्यापक ने कहा—इसका कारण हम नहीं जानते हैं। मैंने हंसकर कहा—बेचारा सिकन्दर इन देशों का अभियान तो तभी कर सकता था जब इन देशों का कहीं कोई अस्तित्व होता। उस समय तक लगभग सारे यूरोप में मनुष्यों और पशुओं का कच्चा मांस खानेवाले, असभ्य, नंगे, बर्बर लोगों का निवास था। जिनकी चर्चा करना तक भी यूनानी इतिहासकारों ने अपनी लेखनी का अपमान समझा।

चौथी शताब्दी तक इंग्लैण्ड तो रोमन साम्राज्य का गुलाम था। उस काल की लैटिन भाषा के कोष में आंग्ल, एंग्लो आदि शब्दों का अर्थ ही गुलाम किया जाता था। इंग्लैण्ड के लोग रोम के बाजारों में गुलामों की तरह बिकते थे। उन्हें नग्न-अर्ध नग्न रूप में मण्डी में बैठाकर क्रय-विक्रय किया जाता था।

मास्को से प्रकाशित 'Ancient History' Davies द्वारा लिखित An outline of the History of World तथा C या O Stephenson द्वारा लिखित Mediaeval History के अनुसार रोम गुलामों पर सबसे अधिक अत्याचार करने वाला साम्राज्य था। वहाँ अन्य गुलामों के समान अंग्रेज गुलामों को भी रोमन अमीरों के द्वार पर गले में जंजीर बांध कर कुत्ते की तरह बैठाया जाता था। उन्हें गलियों या चौराहों में सोना पड़ता था। उनसे अपराध होने पर उन्हें समुद्र में मगरमच्छ के सामने जीवित ही डाल दिया जाता था और उनके निरपराध होने पर उन्हें खुले गोलाकार क्रीड़ाक्षेत्र (Stadium) में हिंस्र पशुओं से अथवा गुलामों को आपस में शस्त्रों से लड़वाकर मनोविनोद किया जाता था। हार जाने पर उनको मारकर उसके शव को रथ के पीछे फंसाकर घसीटा जाता था।

यूरोप के अंधकारयुगीन इतिहास का एक पुराना मानचित्र मिला है ई. पू. 6 शती का। जिसमें धरती को एक गोल थाली जैसा दिखाया गया है तथा उसमें यूरोप और एशिया का बेढप चित्र ऊपर-नीचे दिखाया गया है। उसमें इंग्लैण्ड का कोई संकेत नहीं है।

बाइबिल में धरती को चपटा मानने के कारण गलैलियो, जीनो तथा ब्रूनो आदि वैज्ञानिकों द्वारा धरती को गोल कहने के कारण सताया गया, जीवित जलाया गया। भारत के वेद में भूगोल शब्द का प्रयोग भूमि के गोल होने का प्रमाण है।

भारत गौरव

भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है॥15॥

शैशव दशा में देश प्रायः जिस समय सब व्याप्त थे,
निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे।
संसार को पहले हमीं ने ज्ञान-भिक्षा दान की,
आचार की, व्यापार की, व्यवहार की, विज्ञान की॥45॥

'हाँ' और 'ना' भी अन्य जन कहना न जब थे जानते,
थे ईश के आदेश तब हम वेद मंत्र, बखानते।
जब थे दिगम्बर रूप में वे जंगलों में घूमते,
प्रासाद-केतन-पट हमारे चन्द्र को थे चूमते॥46॥

जब मांस-भक्षण पर वनों में अन्य जन थे जी रहे,
कृषि-कार्य करके आर्य तब शुचि सोमरस थे पी रहे।
मिलता न यह सात्त्विक सु-भोजन यदि शुभाविष्कार का,
तो पार क्या रहता जगत् में उस विकृत व्यापार का॥47॥

कविवर मैथिलीशरण गुप्त : भारत-भारती

भारतीय संस्कृति का विश्वव्यापी विस्तार

भारतीय संस्कृति प्रत्येक क्षेत्र में सब देशों की संस्कृति की जननी है। कई लोग ऐसा मानते हैं कि विश्व मानव की आदि जन्मभूमि और आदि संस्कृति एक ही है। वह पुण्यभूमि भारत ही है। जहां से मनुष्य पश्चिम में फैल गया और अपने साथ यहां के संस्कारों को भी ले गया। काल एवं परिस्थितियों के प्रभाव से वही संस्कार उनकी संस्कृतियों में व्यक्त हुए।

भारत—जहां स्वयंभु प्रभु ने सर्वप्रथम वेद का गान गाया, जिसे जगदीश्वर ने सर्वप्रथम अपनी लीलास्थली बनाया।

जैसा आकार हमारे देश का आज है, सृष्टि के आरंभ में इस आकार में कुछ अन्तर था। भारतमाता के दोनों हाथ पंजाब और बंगाल आज की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ थे। भारत जननी के सिर का ताज कैलास भी अधिक शोभाशील था। मुकुट-मणि बदरी-केदार अपनी वर्तमान अवस्था से भी अधिक ज्योत्स्नामय थे। इसका वक्षस्थल कौशल देश महाबलशाली था। हिमालय के गौरव का तो ठिकाना ही क्या था। वह तो साक्षात् मूर्तिमान गौरव ही था। वरुण इसी प्रकार उसके चरण कमल की सेवा में चौबीसों घंटे तत्पर रहता तथा अपनी जननी जन्मभूमि के स्तोत्र गाता। सब कुछ ऐसा ही था। केवल उन दिनों अपनी श्रद्धा के वशीभूत हुआ महाकाल नीलोदधि अपनी मातृभूमि के वक्षस्थल तक पहुंच गया था। वह अपनी जननी जन्मभूमि के अत्यंत निकट रहना चाहता था। उन दिनों राजपूताना के स्थान पर सागर था। एक ओर यह सागर त्रिगर्त (जालंधर और फिरोजपुर) तक छाया हुआ था। दूसरी ओर इसका शरीर दिल्ली तक फैल चुका था। मानो उन दिनों सिन्धु-सौतीर क्षुद्रक (बहावलपुर), राजपूताना ये सब अरब सागर के ही एक अंग थे।

परन्तु परमात्मा की लीला बड़ी विचित्र है। जल में थल और थल में जल करते हुए उसे कुछ भी देर नहीं लगती। लगे भी क्यूं! अपने संकल्प मात्र से उसने संसार का खेल खेला, वह इस खेल को जैसे चाहे खेले। अपनी पुतलियों को वह पुतलियों वाला जैसा उसका दिल चाहे नचाये। कभी उसने बिहार में कैसा नाच नचाया था। कभी कांगड़ा को उसने कैसा हिलाया था?

उन दिनों धरती पर पापी तो नहीं बसते थे, फिर भी न जाने धरती माता को किन पापों का फल भोगना पड़ा कि नीचे भी पानी और ऊपर भी पानी। इसका नाम है प्रलय। कहते हैं उन दिनों निरंतर 58 दिन वर्षा होती रही। मुफ्त का पानी था। परमात्मा के प्रमुख अहलकार इन्द्र देवता ने धरती वालों पर केवल अपनी शान का सिक्का जमाने के लिए उसे यूं ही बहा दिया। लोग अपनी जान बचाने के लिए हिमालय पर जा चढ़े। वे अपना दाना-पानी समेट उसकी कंदरा में जा छिपे। कुछ इतने घबराए कि वे हिमालय को भी पारकर तिब्बत और मध्य एशिया में जा बसे। 58 दिन थोड़े नहीं होते। मुसीबत की तो एक घड़ी भी कम नहीं फिर 58 दिन! निश्चय ही वे लोग धन्य थे जिन्होंने इस घोर आपद्काल में भी साहस न छोड़ा।

विदेशों में मनु की गाथा—यहूदी बाइबिल, ईसाई बाइबिल तथा कुरान में वर्णन—नूह का प्रलय। इसे नहीं मानना पाश्चात्य इतिहासकारों का दुराग्रह है।

यूरोप में आर्य—अफगानिस्तान, ईरान, जर्मनी, इंग्लैण्ड, यूनान के लोग उन्हीं आर्यों की संतान हैं जो हिमालय से होते हुए यूरोप और मध्य एशिया में जा बसे।

ईरान—आर्यन, शाह की पदवी आर्यमिहिर। भारतीय आर्य और ईरानी आर्य दोनों अग्नि के उपासक थे। किन्तु भारतीय इन्द्र को अधिक महत्त्व देते थे दूसरे अग्नि को तथा मित्र वरुण को। इसी से दोनों भाइयों में विवाद बढ़ गया। यही देवासुर-संग्राम बन गया।

प्रलय के पश्चात्—जल घटने पर लोग गंगा के द्वार हरिद्वार के मार्ग से पुनः अपनी भूमि में प्रविष्ट हुए। अतः आर्य आर्यावर्त्त लौट के आये।

असुर—मुनि यास्काचार्य के मत में—असुर शरीरबल का द्योतक था। देव बुद्धिबल का प्रतीक। भारतीय तथा ईरानी आर्यों में मतभेद बढ़ जाने से असुर शब्द का अर्थ विकृत हो गया। असुरों ने भारत में आक्रमण शुरू किए। शुक्राचार्य उनके गुरु बन गए।

संसार के देशों में भारतवर्ष के प्रति लोगों का प्रेम और आदर उसकी बौद्धिक, नैतिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति के कारण से है।

प्रो. लुई टिनाऊ, पेरिस विश्वविद्यालय

पुराणों में नील नदी का अन्वेषण

वर्तमान विज्ञान के पारंगत पाश्चात्य विद्वानों ने भी भूगोल आदि विषयों को जानने के लिये पुराणों से कितनी शिक्षा ली है, उसका एक निदर्शन मिस्र (इजिप्ट) की सुप्रसिद्ध नील नदी है। वह इतनी बड़ी है कि उस देश का विभाग-सा कर देती है। भौगोलिक दृष्टि से नील नदी का वही स्थान है जो भारत में गंगा का है।

वह नील नदी कहाँ से निकलती है, उसका उद्गम स्थल कौनसा है? इसका पता कुछ शताब्दियों पहले वहाँ किसी को नहीं था। परन्तु उसके उद्गम स्थल की जिज्ञासा प्रायः सबको बनी रहती थी।

भारतीय पुराणशास्त्र के ज्ञाता और भूगोल सम्बन्धी अन्वेषक यशोलब्ध श्रीविल्फोर्ड महाशय ने पुराणों के वर्णनों के आधार पर नील नदी के उद्गम-स्थल का पता लगा लिया। उन्होंने पहले पुराणों के वर्णन के अनुसार नील नदी के उद्गम स्थल का मानचित्र बनाकर उसे प्रकाशित कर दिया।

यूरोपीय विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी था, जो भारतीय साहित्य के गौरव का अनुभव करने में अपने को असमर्थ पाता था। उनमें श्री एच. एच. विल्सन, श्री कनिंघम, बोसेण्ट मार्टिन आदि यूरोप के प्रसिद्ध विद्वानों ने श्री विल्फोर्ड का उपहास किया तथा नील नदी के उद्गम स्थान के सम्बन्ध में पुराणों के आधार पर जो कुछ श्री विल्फोर्ड ने कहा था, उस सबका खण्डन किया। श्री विल्फोर्ड के द्वारा विरचित नील नदी के मानचित्र को उन्होंने अविश्वसनीय ठहरा दिया और स्पष्ट रूप से कहा कि श्री विल्फोर्ड ने व्यर्थ ही पुराणों का महत्त्व स्वीकार करके पक्षपात से काम लिया है।

उस समय एक लेफ्टिनेण्ट जे. एच. एस्पीक नामक विद्वान ने भी नील नदी के उद्गम-स्थल के विषय में परिश्रम आरंभ किया। उन्होंने पहले सभी विचारों का अध्ययन किया, फिर स्वयं नील नदी के उद्गम स्थल को प्रत्यक्ष देखने के उद्देश्य से श्री विल्फोर्ड का मानचित्र लेकर मिस्र में भ्रमण आरंभ किया और उसी मानचित्र के आधार पर मिस्र के उन सभी स्थानों को ढूंढ़ निकाला।

अंततः मानचित्र के आधार पर ही यात्रा करते हुए उन्होंने नील नदी के उद्गम स्थान को भी अपनी आंखों से देखा। यह समस्त विषय 'डिस्कवरी ऑफ दि सोर्स

ऑफ दि नील' नामक पुस्तक में उन्होंने नील नदी के अन्वेषण के विषय में तथा श्री विल्फोर्ड के विषय में स्पष्ट लिख दिया है।

इस विषय का विवरण एशियाटिक रिसर्चेज के तीसरे भाग में मुद्रित हुआ है। हिन्दी की पुरानी पत्रिकाओं में भी उनका सारांश अनेक बार प्रकाशित हुआ है।

त्रिविष्टव (तिब्बत)=स्वर्ग

प्राचीन काल में तिब्बत ही स्वर्ग था। गंगा तिब्बत (स्वर्ग) से आती है। भगीरथ से पूर्व उसका सारा जल हिमालय से उत्तरी पठार की ओर बहता था। भगीरथ ने (इंजीनियरिंग की) तपस्या द्वारा गंगा को भारत में आने का मार्ग दिया। गंगा मनुष्य द्वारा निर्मित सबसे बड़ी नदी है।

शंकरधाम कैलास तिब्बत में है। प्राचीनकाल में लोग तपस्या के लिये कैलासवास या तिब्बत जाते थे और फिर लौट आते थे। तिब्बत का अधिपति अर्जुन भी वहीं तपस्या के लिये गया जहाँ उर्वशी का प्रसंग आया, वहीं से गांडीव लाया और नेपाल से पाशुपतास्त्र शंकर भगवान् से लाये। पांडव लोग अपने उत्तरजीवन में उसी मार्ग से स्वर्ग गये। वहाँ शीत और हिम अधिक होने से अनेकानेक लोग गल जाते थे इसलिये स्वर्गवास का अर्थ मृत्यु रूढ़ हो गया। अभी भी मृत्यु के पश्चात् सिर उत्तर दिशा में कर दिया जाता है।

—प्रो. ओबराय

सनातन धर्म स्वयं जीवन है; यह ऐसी वस्तु है जिस पर उतना विश्वास करना नहीं, जितना इसे जीना होता है। यह वह धर्म है जिसे प्राचीनकाल से इस प्रायद्वीप के एकांत में मानवता के उद्धार के लिये प्रेम-पूर्वक रखा गया। यही धर्म (मानवता को) देने के लिये भारत का उदय हो रहा है। यह उस प्रकार नहीं उदित हो रहा जैसे दूसरे देश होते रहे हैं अपने स्वार्थ या जब वह शक्तिवान हो तो निर्बलों को पददलित करने के लिये। यह इसलिये उदित हो रहा है ताकि जो प्रकाश इसे दिया गया था वह पूरे जगत् पर फैलाये। भारत सदैव मानवता के लिये अस्तित्व में रहा है, अपने लिये नहीं और मानवता के लिये, न कि अपने लिये उसे (पुनः) महान् होना है।

—ऋषि अरविन्द

भारत तथा ईरान—इतिहास के सहोदर भाई

इतिहास के रंगमच पर भारत तथा ईरान के सांस्कृतिक एवं जातिगत सम्बन्ध उतने ही पुराने हैं जितना पुराना आर्य जाति का इतिहास अथवा विश्व इतिहास का प्रथम अध्याय हो सकता है। ईरान के शाह के ये शब्द बड़े युक्ति-युक्त हैं, 'हमारे दोनों देशों की संस्कृतियाँ महान् और मूल रूप से एक रहीं और समय की हजारों साल की दौड़ में हम निरन्तर साथ रहे।'

स्वयं ईरान देश का नाम ही आर्यानः (अर्थात् आर्याणां देशः) था। यही आर्यान नाम धीरे-धीरे ईरान उच्चारण किया जाने लगा। स्वयं ईरान सरकार ने अपनी प्रकाशित पुस्तक Six Centuries of Glory के प्रथम पृष्ठ पर स्वीकार किया है—'ईरान का ऐतिहासिक व्याकरण के अनुसार, यौगिक अर्थ है 'आर्यों का देश।'

आर्यों की ही एक शाखा आर्यों के आदिदेश आर्यावर्त्त अथवा सप्तसिंधव में बसती थी तथा आर्यों की ही दूसरी शाखा पड़ोस के देश आर्यान (ईरान) में जा बसी। हमने उन्हें पार्श्व आर्यान (पड़ोस के आर्य) कहा। पार्श्व से पारस, पारसी, पारसीक, फारस, पर्शिया आदि नाम पड़े। आर्यान से ईरान नाम की व्युत्पत्ति हुई। कुछ विद्वान पारस नाम की व्युत्पत्ति परशु जाति वाचक नाम से मानते हैं जो मद्रदेश (पश्चिमी पंजाब) से ईरान गए थे, इन्हीं के नाम पर ईरान में मीडियन राज्य का नाम चला। दूसरी ओर हमारे ईरानी बंधुओं ने हम आर्यावर्त्त के आर्यों को सप्तसिंधु क्षेत्र में बसने के कारण हफ्त हिन्दू अथवा हिन्दू आर्य कहा। इस प्रकार हमने उन्हें प्रेम से पड़ोस के आर्य कहा तथा उन्होंने हमें सिंधु आर्य या हिन्दू आर्य कहा। प्राचीन पारसी भाषा में सैकड़ों शब्दों में 'स' का उच्चारण 'ह' हुआ है, यथा सप्त-हफ्त। सप्ताह-हफ्ताह। सुर-हुर। असुर-अहुर। सोम-हौम। सरयू-हरयू। सरस्वती-हरहवती। सेना-हेना।

ईरान देश के पश्चिमोत्तर कोने पर कृष्ण सागर तथा कश्यप सागर के बीच काकेशस पर्वत की तलहटी में वह ऐतिहासिक स्थान है आर्याणां बीजम्, जिसे आर्यनम बायजो तथा आजकल अजरबेजान कहा जाता है। यह वह स्थान है जहाँ मनु के जल प्लावन के समय पश्चिमोत्तर के सूखे पठारों की ओर बढ़ते हुए आर्यों ने काकेशस पर्वत श्रृंखला में एल ब्रूज नामक यूरेशिया क्षेत्र के सर्वोच्च शिखर पर

जाकर शरण ली। कई इतिहासकार इसे ही आर्यों की शरणभूमि के स्थान पर मूल भूमि मानते हैं। अजरबेजान नाम का एक प्रान्त ईरान में है तथा उसी का आधा भाग अजरबेजान, आर्मेनिया (रूस) में है। ईरान विज नाम भी उसी का पर्याय है।

वंक्षु नदी (जिस का वेदों में वर्णन है) से लेकर हिन्दूकुश पर्वत तक प्राचीन वाह्लीक प्रदेश है जिसे आजकल के ईरान में बलख कहा जाता है। भारतीय पुराणों में इसी वाह्लीक देश को केतुमालवर्ष भी कहा गया था। इसे ही यूनानियों ने बैक्ट्रिया कहा था। वेंदिदाद नामक ग्रंथ में इसी को पताकाओं का नगर कहा गया है जो केतु (पताका) की माला का ही समानार्थक है।

ईरान में सरयू नामक नदी है जिसका उच्चारण हरयू तथा हरिरुद होता है। इसका प्रसिद्ध नगर हेरात है। इतिहासकार प्लिनी के अनुसार सैल्यूकस निकाटोर ने चंद्रगुप्त मौर्य से सन्धि के पश्चात् आर्याना प्रदेश, जिसकी राजधानी हेरात थी, भारतीय सम्राट् को भेंट कर दिया था।

सरस्वती (हरहवती) क्षेत्र को यूनानी लेखकों ने अराचोसिया लिखा। वहाँ नदी पर अनेक पुल होने के कारण उसे संस्कृत साहित्य में सेतुमन्त तथा ग्रीक उच्चारण में हेतुमन्त तथा वर्तमान उच्चारण में हेलमन्द कहा जाता है। इस क्षेत्र का प्रसिद्ध नगर गजनी आजकल अफगानिस्तान में है।

ईरान के प्राचीन पारसी धर्म पर वैदिक धर्म की छाप सुस्पष्ट है। अनेक वैदिक मंत्र मात्र थोड़े परिवर्तन से ईरानी धर्म पुस्तक जेंद अवेस्ता (छंद अवस्था) तथा गाथा साहित्य में गूंजते हुए दिखाई देते हैं—

(पारसी मंत्र)	(संस्कृत रूप)
तम अमवन्तय याजतम्।	**तम अमवन्तम याजनम्**
सूरग दामोहु सविस्तम।	**शूरम् धामसु शविष्ठम्**
मिथ्रम वजाइ जओथाव्यो।।	**मित्रम यजै होत्राम्यः।।**

अर्थ—मैं उस रक्षा करने वाले, कल्याणकारी, बलवान, धामों में सृष्टि करने वाले मित्र (सूर्य) देवता का हविष से यजन करूँ।।

ऋग्वेद का इंद्र-वृत्रासुर युद्ध जेंद में भी वर्णित है। पारसी लोग सदा से अग्नि पूजा करते आए हैं। वह वेद की यज्ञाग्नि ही है। मित्र पूजा (मिथ्र पूजा अर्थात् सूर्य पूजा) ईरान ने ही सारे संसार में प्रचारित की। रोम के सम्राट् जूलियस सीजर भी सूर्य पूजक थे। भारतीय देवी-देवता—सूर्य, चंद्र, इन्द्र, वायु, जल, यम, अग्नि आदि सभी प्राचीन ईरानी धर्मग्रंथों में प्रतिष्ठित हैं।

पारसी जनों के सबसे बड़े देवता अहुरमज़दा हैं जिसका अर्थ है महान् देवता।

पारसियों के प्राचीनतम धर्म संस्कारक अवतारी पुरुष जरदुस्त्र हुए हैं जिनका काल ईसा से कम से कम 600 वर्ष पूर्व माना जाता है। जेंद नामक धर्मग्रंथ में

वर्णन है कि पृथ्वी ने गौ का रूप धारण कर ईश्वर के पास जाकर अपनी रक्षा के लिए जरदुस्त्र को माँगा। यह अवतार हेतु प्रार्थना शत-प्रतिशत भारतीय कल्पना है। वे भी अपने को गो एवं वेद (ज्ञान) के रक्षक मानते हैं।

पारसियों के प्राचीन ग्रंथ 'शातीर' में वर्णन है कि ईरान के गश्ताशप नामक बादशाह ने अपने गुरु जरदुस्त्र से धर्म चर्चा करने हेतु भारत से व्यास नाम के मनीषी को बुलाया था। 'अकनु बिरह मने व्यास नाम अज हिन्द आमद वस कि दाना चुनानेस्त्र।' अर्थात् हिन्द से व्यास नाम का एक हिन्दू ब्राह्मण आया। उसके समान बुद्धिमान कोई दूसरा नहीं था।

ईरान के सर्वप्रथम सर्वाधिक प्रतापी आर्य राजा हुए कुरुष् जिसे यूनानी इतिहासकारों ने Cyrus लिखा। उसने असीरिया, बेबीलोनिया, लीडिया तथा लघु एशिया को जीता। दिग्विजय में वह चंद्रगुप्त मौर्य के समान तथा न्यायप्रियता में प्रियदर्शी अशोक के समान था। सन् 1971 में उस प्रतापी आर्य सम्राट् की स्मृति में उसके साम्राज्य संस्थापन के 2500 वर्ष पूर्ण होने पर एक विराट् आर्य महोत्सव किया गया। उसकी प्राचीन राजधानी पसारगढ़ी (यूनानी नाम पर्सिपोलिस) में अलौकिक वैभव एवं ऐश्वर्य के साथ यह महोत्सव मनाया गया। भारत सरकार ने राजा कुरुष् की स्मृति में विशेष डाकटिकट चलाए तथा भारत के महामहिम राष्ट्रपति स्वयं उस आर्यों के गौरव सम्राट् कुरुष् को नमनांजलि चढ़ाने पर्सिपोलिस गये। पर्सिपोलिस में विराट् नंदी वृषभ की मूर्ति संसार में बेजोड़ है। राजा कुरुष् के पश्चात् उसके वंशज राजा धारयवसु (Darius) ने भी आधी दुनिया को जीता। 480 ई. पूर्व में धारयवसु के पुत्र सम्राट् खषयार्श (जेरेक्सेज) ने अपनी सेना में भारतीय धनुर्धरों को साथ लेकर यूनान पर चढ़ाई की। इन भारतीय धनुर्धरों के तीर का फल इस्पात का बना हुआ था। तब तक पश्चिम के किसी देश को इस्पात का ज्ञान तक न था। इन वीर धनुर्धरों के शौर्य से खषयार्श ने मिस्र, अरब, सीरिया, फलस्तीन, मोसोपोटामिया, तुर्की, आर्मेनिया आदि को जीतने के बाद यूनान के थर्मोपिली के युद्ध में ऐतिहासिक विजय प्राप्त की।

प्रारम्भ से अब तक ईरान के सम्राट् आर्यमिहिर (आर्यों का सूर्य) की उपाधि धारण करते आए हैं। वे अपने आपको सूर्यवंशी आर्य मानते हैं अतः प्राचीन पहलवी राजाओं के ताज में भी मणियों से सूर्य बना हुआ है।

भारत व ईरान के सांस्कृतिक सम्बन्धों में मधुरतम कड़ी तब जुड़ी जब सातवीं शती में ईरान पर अरब आक्रमण होने पर सहस्रों पारसी अपनी आस्था की रक्षा तथा अपने अग्नि देवता की प्रतिष्ठा के लिए भारत की शरण में आए तथा इस चिर कल्याणमयी जगत् जननी भारत-माता ने अपने उन शरणागत पुत्रों को अपनी गोदी में अपार स्नेह एवं भावात्मक सुरक्षा का स्थान दिया।

ईरान में कई प्राचीन शिव मन्दिर हैं तथा प्राचीन सिक्कों पर शिव की प्रतिमा भी है। सर विलियम जोन्स का कथन है,'जेंद अवेस्ता ग्रंथ के कोश में प्रत्येक दस शब्दों में से 6-7 शुद्ध संस्कृत के हैं।' भूतपूर्व ईरानी राजदूत श्री अली असगर का कथन है, 'ईरान का इतिहास और विशेषतया उसके प्रारम्भिक इतिहास को समझने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान बहुत ही जरूरी है। प्राचीन ईरानी तो लगभग संस्कृत ही थी। वर्तमान फारसी में भी संस्कृत के सहस्रों शब्द गूँज रहे हैं—

मातृ=मादर; पितृ=पिदर, भ्रातृ=बिरादर, दुहितृ=दुख्तर, श्वसुर=सुसुर, स्वसृ=हमशीरा, अगुष्ठ=अंगुश्त, उष्ट्र=उश्तर (ऊँट)। पुरोहित=फरिश्ता, आपताप= आफताब (सूर्य); मासताव=महताब (चंद्रमा), यक्ष्मा=जेरत्म; श्लाका=सलाख, गोधूम=गंदुम। वसिष्ठ=वहिश्त। अस्ति=अस्त; नास्ति=नेस्त। अहिफेन=अफ्चून, द्वार=दर, मास=माह.....इत्यादि।

ईरान के राजा नौशीखाँ ने पंचतत्र का प्रथम फारसी अनुवाद करवाया था जो 'अनवार सहेली' नाम से अभी तक प्रचारित है। तक्षशिला में अशोक ने ईरानी-लिपि में एक सुन्दर शिलालेख खुदवाया था। भारत के सम्राट् पुलकेशी (7वीं शती) के दरबार में ईरान के शाह खुसरो (2) ने अपना राजदूत श्रद्धाभाव से भेजा था। फैजी का गीता का फारसी अनुवाद तथा दाराशिकोह के गुरु सर्मद शहीद द्वारा करवाए गये उपनिषदों के फारसी अनुवाद ने सारे यूरोप को भारतीय तत्त्वज्ञान का प्रथम परिचय देने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। गुरु नानक ने भी अपनी यात्रा में ईरान के पाटल बागानों तथा अंगूर बेलों के निकुंजों में अध्यात्म का अमृत बाँटा। विश्वकवि रवीन्द्र नाथ का जो सम्मान ईरान के शाह रजाशाह पहलवी ने किया उसके लिए बड़े-बड़े सम्राट् तो क्या देवता भी तरसते होंगे।

भारत में गुरु गोविन्दसिंह एवं छत्रपति शिवाजी फारसी में सुन्दर कविताएँ रचते थे। फारसी के जितने लेखक ईरान ने पैदा किए भारत ने उससे कुछ अधिक ही पैदा किए होंगे। शेख सादी की एक पंक्ति ने लाला लाजपतराय को बचपन से ही बलिदान के महायज्ञ के लिए प्रेरित कर दिया था। स्वामी रामतीर्थ की वाणी पर सूफियों के प्रेरक शेर मानो नृत्य करते रहते थे। सूफी धर्म तो मानो वेदान्त का ही ईरानी संस्करण है। मौलाना रूम, हाफिज़, शम्स तब्रेज आदि ने मानवता को जगाने में अपनी आत्मा की वाणी को गुँजाया।

एक फारसी कथा है कि दो भाई एक-दूसरे को पूर्णतया भूल गये। युगों के बाद वे पुराने गीतों की धुनें गुनगुनाते हुए, अपनी बांसुरी पर धुन बजाते हुए निकट आए। उन धुनों से दोनों कुल वालों ने एक-दूसरे को परस्पर पहचान लिया। आज आशा है इतिहास की कुछ बिसरी हुई धुनों को पुनः सुन कर भारत तथा ईरान, दोनों भाई पुनः गले मिलेंगे।

विश्व सभ्यता को भारत की देन—उजबेकिस्तान

सबसे बड़ा प्रजातन्त्र

उजबेकिस्तान जनसंख्या के विचार से मध्य एशिया के प्रजातन्त्रों में सबसे बड़ा प्रजातन्त्र है। जनसंख्या लगभग 70 लाख है। राजधानी ताशकंद की जनसंख्या 9 लाख है।

मुख्य नदियाँ

शिर दरिया, आमू दरिया, जरफसाँप और चिरचिक आमू दरिया उजबेकिस्तान और अफगानिस्तान के बीच की सीमारेखा है। कुछ उजबेक लोग हिन्दूकुश पर्वत तक बसे हुए हैं।

आर्यों की मूलभूमि कहाँ?

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मत में यही आर्यों की भूमि रही। इसके पड़ोस में आर्यन एम्बाइजो (आर्यानाम्बीजम्) है, जिसका वर्तमान नाम अजरबेजान है। कई इतिहासकार इसे ही आर्यों की मूलभूमि के रूप में प्रचारित करते हैं। वास्तव में आर्यानाम्बीजम् (आर्यन एम्बाइजो) आर्यों के बीज की उत्पत्ति का स्थान नहीं वरन् मनु के जल प्लावन के समय पश्चिमोत्तर में बढ़ने वाले और काकेशस पर्वत की अलबरूज चोटी (18,000 फुट से अधिक) में शरण पाने वाले आर्यों का शरणार्थी शिविर था। यहाँ आर्यों के बीज का सूत्रपात नहीं हुआ वरन् जल प्लावन के समय आर्यों के बीज की रक्षा हुई। रक्षा भी एक नये जन्म के समान है इसलिए काकेशस पर्वत से पश्चिम की ओर यूरोपीय देशों में फैलने वाले आर्य अपने आप को काकेसियन कहने लगे। यहाँ पर अंगरेजों ने भारत की स्वाधीनता के लिए आन्दोलन करने वाले भारतीयों का मनोबल नष्ट करने के उद्देश्य से लार्ड मेकाले की शिक्षा पद्धति के माध्यम से इतिहास में यह असंगत एवं तथ्यहीन पाठ पढ़ाना प्रारम्भ किया कि आर्य लोग भारतमाता के पुत्र न होकर मध्य-एशिया के मैदानों से भारत को लूटने के लिए आने वाले डाकू एवं आक्रान्ता थे। यह मात्र कुछ तो अज़रबेजान नाम की भ्रान्ति के कारण और कुछ भारत को पराभूत एवं पराधीन

रखने के राजनीतिक षड्यन्त्र के तहत प्रचारित किया गया। यह भ्रान्त विचार अब आधारहीन सिद्ध हो चुका है।

(क) यदि मध्य एशिया आर्यों की मूल-भूमि रही होती तो आर्यों के वहाँ से यूरोप एवं एशिया में फैल जाने के उपरान्त भी वहाँ आज भी आर्यों के बीज वर्तमान रहते, किन्तु वहाँ शक, हूण और स्लाव जातियों का ही बाहुल्य है।

(ख) यदि आर्य लोग मध्य एशिया से आये होते तो वे स्वाभाविक ही अपने साथ मध्य एशिया के मैदानों, पर्वतों, नदियों, सम्राटों एवं प्राकृतिक सम्पदा की स्मृतियों को अपने साहित्य, भाषा, बोली, नृत्य, गान, मेले, उत्सव आदि में अभी तक सुरक्षित रखे होते। आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ तथा मानव सभ्यता के प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। इसकी तुलना में भारत से विदेशों में जाकर बस जाने वाली घुमन्तू जातियों (gypsies जिप्सीज) के भाषा-साहित्य, नृत्य-गान आदि पर हजारों वर्षों के भारत से भौगोलिक अलगाव के उपरान्त भी भारत के हिमालय, गंगा, काशी, होली, दीवाली, राजा विक्रमादित्य आदि की स्मृतियाँ अभी तक जीवित हैं।

(ग) आर्यों के वैदिक वाङ्मय में सबसे महत्त्वपूर्ण यज्ञ अश्वमेध यज्ञ है। मध्य-एशिया में अश्व ही बहुत कम मिलते हैं तो अश्वमेध यज्ञ कैसे सम्भव है?

(घ) वेद के मन्त्र ऋषियों को जिस-जिस नदी-तीर अथवा पर्वतीय-उपत्यका में प्राप्त हुए उनका नाम संकेत वेद में ही है उसमें किसी भी विदेशी नदी, पर्वत का नाम संकेत नहीं, उसमें सप्तसिन्धु उत्तर भारत की सात प्रसिद्ध नदियों का नाम है—ऊपर में सिन्धु, नीचे सरस्वती और बीच में पंजाब की पाँच नदियाँ (सतद्रु, विपासा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता)।

(ङ) यदि आर्य बाहर से आक्रान्ता बनकर आये होते तो इस देश का आर्यों से पूर्व का नाम क्या था? इतिहास एवं वैदिक वाङ्मय के अनुशीलन से पता चलता है कि इस देश का प्राचीनतम नाम आर्यावर्त्त ही है। यदि आर्यों से पूर्व यहाँ कोल्ह-भील, द्रविड़ आदि का निवास था तो इस देश का नाम कोल्हावर्त्त, भीलावर्त्त या द्रविड़ावर्त्त होना चाहिए था, जिसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। आर्यावर्त्त इस देश का जातिपरक नाम है। इस देश का भूगोलपरक नाम हुआ—सप्तसिन्धु। मनु के जल प्लावन के समय आर्यों की ही एक शाखा अपने पश्चिमोत्तर के पड़ोसी देश में जाकर बसी। उसे पार्श्व, पारस, परसु, परशियन, फारस, फारसी आदि नाम मिले तथा आर्यों का ही देश होने के कारण उन्होंने उसे पार्श्व आर्यान कहा।

(च) ईसा से 500 वर्ष पूर्व ईरान का सबसे प्रतापी राजा कुरू (Cyrus) शुद्ध आर्य हिन्दू राजा था। उस शक्तिशाली राजा ने बक्त्रीया, सुश्र्थ, एसीरीया, सीरिया, आरमेनिया, केपिडोसिया, तुर्की, मिस्र, आदि सब देशों को अपने विस्तृत साम्राज्य के अधीन कर लिया था। तब तक ईसा और ईसाईयत के जन्म को 500 वर्षों की देरी थी। मोहम्मद और इस्लाम के जन्म को लगभग 1200 वर्षों की देरी थी। तब हमारे ईरानी—आर्य भाइयों ने हमें सिन्धु-आर्यान पुकारा। फारसी भाषा में 'स' का उच्चारण 'ह' हो जाने के कारण सप्त-हप्त, सप्ता-हप्ता, सुर-हुर, असुर-अहुर, सरयू-हरयू , सरस्वती-हरहवती के समान ही सप्तसिन्धु को हप्तहिन्दू, सिन्धु आर्यान को हिन्दू-आर्यान पुकारा गया। अतः हिन्दू नाम किसी विधर्मी का घृणा से दिया हुआ नाम नहीं है। औरंगजेब के शासनकाल में ही हिन्दुओं का मनोबल गिराने के उद्देश्य से फारसी शब्दकोशों में हिन्दू का घृणित अर्थ दिया जाने लगा। उसके पहले के सभी कोशों में हिन्दू का अर्थ—हिन्द का निवासी ही दिया हुआ है।

(छ) स्वयं हजरत मुहम्मद के चाचा अब्दुल हिक्म ने अपनी अरबी कविता में हिन्द एवं हिन्दू की प्रशस्ति गाई है—

वा साहबी कयाम फीम काबुल हिन्दे योवन (—हे प्रभु! मेरा समस्त जीवन ले लो और उसके बदले मुझे मात्र एक दिन के लिए हिन्द का वास दे दो।)

(ज) एक फारसी ग्रन्थ में उल्लेख है—अफ्रुबिर हमने व्यास नाम अज हिन्द आमद बस खेदाना चुनानेस्त यथार्थ हिन्द से एक हिन्दू ब्राह्मण—व्यास नाम का यहाँ आया जिसकी तुलना का बुद्धिमान व्यक्ति इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं था। इससे सिद्ध होता है कि औरंगजेब के बाप शाहजहाँ के समय तक हिन्दू और हिन्दू नाम का फारस और फारसी में बड़ा सम्मान था।

(झ) ईसा से 300 वर्षों पूर्व जब सिकन्दर ईरान जीतने के पश्चात् भारत की ओर बढ़ा तो उसने ईरानियों से अगले देश का नाम पूछा। ईरानियों ने इसे सिन्धु से हिन्दू किया। यूनानी लोग उस 'ह' का उच्चारण बहुत हलका होने के कारण हिन्दू को ईन्डू पुकारने लगे। ग्रीक प्रभाव से अंगरेजी के अनेक शब्दों में 'ह' की ध्वनि लुप्त हो रही हैं जैसे hour का आवर, honest का ऑनेस्ट। यूनानी लोग हर देश का नाम स्त्रीलिंग वाचक लगाने के अभ्यासी थे। हम उनके देश को कहते हैं—ग्रीस, वे कहते हैं ग्रेसिया। हम कहते हैं यवन, वे कहते हैं आयोनिया। वही सारे यूरोप के गुरु बने। उन्होंने ही ब्रिटेन को ब्रिटेनिया, रूस को रसिया, अरब-अरबिया, पारस-परसिया करते हुए इन्डूज का नाम इंडिया कर दिया।

इस प्रकार इंडिया नाम अंगरेजों का दिया हुआ नहीं वरन् ईसा के 300 वर्ष पहले यूनानी लोगों का दिया हुआ है। यूनानी यात्री मेगस्थनीज ने भारत के विषय में एक मोटा ग्रन्थ लिखा है—इंडिका। यूनानी लोगों ने दक्षिण-पूर्व एशिया में लगभग 3500 द्वीप देखे जिनमें हिन्दू संस्कृति भी जगमगा रही थी। उन्होंने उसे नाम दिया इन्डू अर्थात् हिन्दू+निजज अर्थात् द्वीप और स्त्रीवाचक निजिया अर्थात् इन्डोनिजिया। उसे भारतीय ग्रन्थों में कहा जाता था—द्वीपरूपभारत या बृहत्तर भारत या आग्नेय द्वीपसमूह। ग्रीक प्रभाव से ही कम्बुज को कम्बोडिया, मंगोल को मंगोलिया, मंजुश्री को मंचुरिया, कुरू को कोरिया और एशिया के सबसे ऊँचे हिमाच्छादित देश को जहाँ बर्फ की अधिकता के कारण पक्के मकान बनाकर रहना कठिन था तथा लोग शिविर (Tent) लगाकर रहते थे तथा उसे शिविर देश कहा जाता था। उसे ही बदलकर साईबेरिया कर दिया गया।

(ञ) दिल्ली के एक सम्मेलन में मैंने भरी सभा में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन को पकड़ लिया तथा उन्हें इस बात को प्रमाणित करने के लिए कहा कि संस्कृति की धारा रूस की वोल्गा नदी से भारत की गंगा नदी की ओर कैसे प्रवाहित हुई? आपने मार्क्स की भक्ति में बहकर ऐसा प्रतिपादन किया है। जबकि रूसी भाषा में साहित्य का प्रारम्भ 13वीं सदी से हुआ है और रूसी भाषा के नमूने 11वीं सदी के मध्य के आस-पास के हैं। इसकी तुलना में भारतीय संस्कृत भाषा के ग्रंथ ईसा से हजारों वर्ष पूर्व के मिलते हैं। ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम ग्रंथ है तथा कम से कम ईसा से 10 हजार वर्ष पुराना माना जाता है, उसमें आर्यों की मूल भूमि के रूप में सप्तसिंधु (उत्तरी भारत) का वर्णन है। अतः स्पष्ट है—वोल्गा से गंगा नहीं, 'गंगा से वोल्गा' होना चाहिए।

हिन्दू कौन?

हिन्दू वह जो हिन्दुस्तान के पवित्र तीर्थों, ऋषि-मुनियों, महापुरुषों, उसकी सभ्यता व संस्कृति के प्रति सच्ची श्रद्धा रखता है और भारत भूमि को अपनी मातृभूमि, पितृभूमि एवं धर्मभूमि मानता है।

—स्वामी विवेकानन्द

सोवियत रूस देश श्वेत ऋषि देश है तथा रूसी भाषा संस्कृत की पुत्री

रूस आर्यों की पश्चिम यात्रा का यूरोप में प्रथम पड़ाव है। मनु के जल प्लावन के समय जब भारत, अरब, ईरान का अधिकांश भाग, मध्यपूर्व के देश, आदि जलमग्न हो गये थे तब आर्यों की पश्चिमोन्मुखी शाखा को, जहाँ काकेशस पर्वत की तलहटी में, कश्यप सागर के तट पर शरण योग्य भूमि मिली उसे 'आर्याणां बीजम्' कहा जाता था। कालांतर में उसी का नाम 'आर्यनम बायजो' बोला जाने लगा। उसी के पड़ोस में आर्मेनिया नामक देश है। उसका नाम भी आर्याणां था। 23 शती पूर्व सिकन्दर के काल में उसे आर्यनम अथवा आर्यमन कहते थे। यूनानी लोग प्रत्येक देश का नाम स्त्रीलिंग वाचक बनाते थे। अतः इतली (इटली) का इतालिया, रूस का रशिया, अरब का अरेबिया, लिथून का लिथूनिया, आर्यमन का आर्मेनिया नाम हो गया। इसीलिए रूसी, आर्मेनी, लिथूनी भाषाओं में सहस्रों संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्द हैं।

आर्य जाति की मूल भूमि—भारत से यूरोप तथा अमरीका तक फैली हुई विशाल आर्य जाति की मूल भूमि तथा मूल भाषा संस्कृत के विषय में पश्चिमी इतिहासकारों ने कई अटकलें लगायी हैं—

(क) अजरबेजान (आर्याणां बीजम्) का सीधा अर्थ आर्यों का बीज स्थान लगाया। यह कहा जा रहा है कि आर्य लोग काकेशस से ही आर्यावर्त्त (भारत) में आकर बसे तथा कुछ काकेशस से ही यूरोप की ओर फैल गये।

(ख) मध्य एशिया में प्राचीन भारतीय संस्कृति के अवशेषों को पाकर कुछ इतिहासकारों ने यह अनुमान लगाया है कि आर्य लोग वहीं से भारत तथा यूरोप की ओर फैले होंगे।

(ग) महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने अपने ग्रन्थ 'वोल्गा से गंगा' तथा 'मध्य एशिया का इतिहास' में यही संभावना प्रकट की है कि भारतीय आर्य रूस

के अजरबेजान क्षेत्र से ही पूरब में भारत की ओर पश्चिम में यूरोप की ओर फैले होंगे।

आर्यों की शरण भूमि : आर्याणां बीजम्

आर्यों की मूल भूमि-आर्यावर्त्त—वास्तव में आर्यों की मूल भूमि आर्यावर्त्त ही है किन्तु जल प्लावन जैसे भयंकर प्राकृतिक प्रकोप के समय (जिसका वर्णन भारत में शतपथ ब्राह्मण, पारसियों की धर्म पुस्तक जेन्दावस्था, यहूदियों की पुरानी बाइबिल, ईसाइयों की बाइबिल, अरबों के कुरान शरीफ, इत्यादि सभी में है।) आर्यों की एक बहुत बड़ी शाखा इस जल संकट से बचने के लिए पश्चिम की ओर बढ़ी। जैसे राजर्षि मनु को जल-से बचने के लिए अपनी नौका हिमालय पर्वत में मनाली शृंग (हिमाचल प्रदेश) से बाँधनी पड़ी, वहीं पश्चिमोन्मुखी आर्यों को इस जल प्लावन के समय (जब सभी मैदानी क्षेत्र जल में डूब जाते हैं तब) यूरोप एवं एशिया के संगम स्थल यूरेशिया क्षेत्र में तत्रस्थ, काकेशस पर्वत की सर्वोच्च चोटी, एल. ब्रुज (ऊँचाई 19237 फुट) में शरण मिली। वहाँ आर्यों के बीज की रक्षा होने से वह क्षेत्र 'आर्याणां बीजम्' कहलाया। वह आर्यों की मूल भूमि न होकर आर्यों की शरण भूमि थी।

आर्य भाषा संस्कृत रूसी से अधिक प्राचीन—प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. भोलानाथ तिवारी के अनुसार 'रूसी भाषा के प्राचीनतम नमूने 11वीं सदी मध्य के आस-पास के हैं।....सच्चे अर्थों में रूसी भाषा में साहित्य का आरम्भ 13वीं सदी से हुआ है। ब्लूमफील्ड एवं मैक्समूलर भी यह मानते हैं कि रूसी भाषा के अभिलेख 12 वीं शताब्दी से मिलते हैं। इसकी तुलना में भारतीय संस्कृत भाषा के ग्रन्थ ईसा से हजारों वर्ष पूर्व के मिलते हैं। ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है तथा कम से कम 10 हजार वर्ष पुराना माना जाता है, उसमें आर्यों की मूल भूमि के रूप से सप्तसिन्धु (उत्तरी भारत) का वर्णन है।

गंगा से वोल्गा—अतः आर्यावर्त्त को ही आर्यों की मूल भूमि मानकर इतिहास को भूगोल के चौखटे में बिठाने से प्राचीन इतिहास एवं भाषा विज्ञान के प्रायः सभी गुप्त रहस्य प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार सभ्यता एवं संस्कृति का प्रवाह 'वोल्गा से गंगा' की ओर न होकर 'गंगा से वोल्गा' की ओर ही प्रमाणित होता है।

संस्कृत—यूरोपीय भाषाओं की जननी

प्रख्यात यूरोपीय प्राच्यविद्या मनीषी श्री लूई रेणु (Louis Renou) ने कहा है कि 'संसार की सब भाषाएं संस्कृत से प्रभावित हैं।' प्रख्यात अमेरिकी संस्कृति शोधकर्ता श्री विल डूरेंट (Wil Durant) ने लिखा है, 'India was the

Motherland of our Race and Sanskrit the Mother of European Languages. अर्थात् भारत ही हमारी जाति की जन्मभूमि थी तथा संस्कृत ही यूरोप की भाषाओं की जननी है।'

श्वेत-सोवियत—महापंडित राहुल सांकृत्यायन 'सोवियत' विशेषण को संस्कृत के श्वेत शब्द से व्युत्पन्न मानते हैं। संस्कृत में श्वेत का अर्थ सफेद रंग, उजला अथवा उजाला (प्रकाश) होता है। रूसी भाषा में स्वेत तथा 'त्स्वेत्' शब्द इसी अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। जैसे—स्टालिन की पुत्री श्वेतलाना का संस्कृत में अर्थ होगा श्वेतानना—श्वेत मुखवाली।

ऋषि-रूसी—राहुल जी के अनुसार रूसी शब्द संस्कृत के ऋषि शब्द से निकला है, जिसका अर्थ है ज्ञानी अथवा द्रष्टा। मेरा तथा कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि रूस या रूसी शब्द 'ऋक्ष' शब्द से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है रीछ। यह मनोरंजक तथ्य है कि संस्कृत के ऋषि एवं ऋक्ष (रीछ) दोनों एक ही धातु ऋ से निकले हैं जिसका अर्थ है गमन करना या देखना। रीछ की लौकिक दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण होती है तथा ऋषि की अलौकिक दृष्टि बड़ी व्यापक। दोनों की गति विशेष महत्त्व की है। ऋषि मोक्ष का मधु विद्या-पान करता है तथा रीछ मधु के छत्ते का मधु। अतः संस्कृत एवं रूसी दोनों में रीछ को मध्वद (मधु खानेवाला) कहा जाता है। उत्तरी ध्रुव की परिक्रमा करने वाले सप्तर्षि (7 ऋषिगण—कश्यप, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदाग्नि, भरद्वाज) को रूसी एवं अन्य यूरोपीय भाषाओं में सात बड़े रीछ (Seven Stars of the Great Bear) कहा जाता है। रूस में वैसे भी रीछ की इतनी प्रतिष्ठा है कि रीछ रूस का प्रतीक ही बन गया है। उत्तरी ध्रुव के हिम प्रदेश के श्वेत रीछ प्रसिद्ध हैं।

रास-रासे—डा. भोलानाथ तिवारी के अनुसार रूसियों के एक प्राचीन कबीले का नाम रास या रासे था। इसी आधार पर देश तथा भाषा का नाम रूस-रूसी पड़ा। कुछ लोग इन नामों का सम्बन्ध रूस के दक्षिणी भाग में बहने वाली नदी रास से जोड़ते हैं।

श्रवः-स्लावा—प्राचीन संस्कृत में श्रव शब्द यश, धन, स्तुति आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता था तथा अनेक सुन्दर नामों के अंत में श्रवा प्रयुक्त होता था। जैसे सोमश्रवा, वाजिश्रवा, भूरिश्रवा इत्यादि। उसी श्रवा शब्द से रूसी भाषा में स्लाव शब्द प्रचलित हुआ है जो व्यक्तिगत नामों तथा देशवाचक नामों में भी प्रयोग हुआ है। जैसे श्वेत-स्लाव, व्याचि-स्लाव, स्व्यातोस्लाव इत्यादि व्यक्ति-वाचक नाम हैं तथा चेकोस्लाव, यूगोस्लाव आदि देशवाचक नाम हैं। पूर्वा स्लाव भाषाओं में रूसी, बोल्गारी तथा सेर्बो भाषाएं गिनी जाती हैं। तथा पश्चिमी स्लाव भाषा में स्लोवानी, चेक तथा पोलो भाषाएं परिगणित हैं।

रूसी भाषा में संस्कृत शब्द

रूसी भाषा में जो सहस्रों संस्कृत मूल वाले शब्द आज भी गूँज रहे हैं, उनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

संस्कृत	रूसी (नागरी लिपि)	रूसी (रशियन लिपि)	हिन्दी अर्थ
भूमि वर्ग के शब्द			
ज्या	जेम्त्या	земля	भूमि
पथ	पुत्	путь	मार्ग
गिरि	गोरा (गरा)	уора	गिरि (पर्वत)
द्रोणा	दोलिना (दलिना)	долина	द्रोणा, दून
अश्मन्	कामेन्	уамень	पत्थर
उदक वर्ग के शब्द			
वंदा	वोदा	Вода	पानी
उदक	वोद्का	Водhа	शराब
फेन	पेना	ттена	फेन (झाग)
स्नेह	स्नेग्	снег	बर्फ
रोधश्	त्यो	лед	बर्फ (फारसी रूद नदी)
अग्नि वर्ग के शब्द			
अग्नि	ओगोन्	оуонь	अग्नि
अंगार	उगार (उगलि) उगोल	Уголь	अंगारा
ज्वाल	नर, नरा	жар, жара	ताप
तम	तम, तेम्नोता	тьма Те мио Та	अंधेरा
धूमः	तुमान्	туманл	धुआं, कुहरा
धूमः	दिम् यजति, यजल	д Ы м	धुआं
यज्ञ	जेर्त्य	жсртва	यज्ञ

वायु वर्ग के शब्द

वात	वेतेर	ветер	वात, वायु, वाद (फारसी)
उड्डीयन (वातः)	उरागान	урaглн	उड़ती हुई (औंधा)

नभ वर्ग के शब्द

स्वर्ग	स्वेर्ख, स्वेर्खु	сверху	ऊपर
नभस्	नेबो	небо	आकाश, स्वर्ग
अभ्र	ओव्लका	облэhа	बादल
सूर्यः, सूरः	सोलन्त्से	со′лнпе	सूर्य
मालिनी	मोल्निया	мо′лниа	बिजली

काल वर्ग के शब्द

दिन	देन्	день	दिन
नफ्त, निशा	नोच्	ночь	रात्रि
मास	मेस्यत्स	ме′сяд	मास
ऋतु	लत्		वर्ष
वसन्त	वेस्ना	весна′	बसंत
हिम (हेमन्त)	जिना	знма′	हेमन्त

इस प्रकार पाँचों तत्त्वों के प्रायः सभी नाम संस्कृत से ही हैं। मानव सम्बन्धों के नामों में, शरीरांगों के नामों में, तथा अन्य वर्गों में सर्वत्र संस्कृत ही गूँज रही है, कुछ वाक्यों के नमूने देखिए—

संस्कृत	**रूसी (नागरी लिपि)**	**रूसी (रशियन लिपि)**	**हिन्दी अर्थ**
श्रृगालः क्रुध्यति	शकाल इग्रोणत	L L l ачал	गीदड़ क्रुद्ध होता है।
देवो चायं एवं शर्करा देहि	देवुश्का चाय इ सावर दाइ		देवी चाय और शक्कर दो
न जीवनं न मृत्युम्	निव झाव नि म्योर्त्य		न जीवन न मृत्यु
भगवान सर्व बेदयति	भग वसे वेदित		भगवान सब कुछ जानता है।
स्वयं ददामि	सम दाम		मैं स्वयं देता हूँ।

रूसी भाषा पर संस्कृत का प्रभाव

संस्कृत	**रूसी भाषा**
देवी चायं एवं शर्करा देहि	देवया चाय ऊं शाकर दी
भगवान सर्व जानाति	भग (Bog) सोब जानीस्त
	भग = तेज
जंगल मध्ये	In the midst of a Jungle
यत्र पिककान्तः कूजन्ति	yither Peacoke are cooving
गावा घासं चर्वन्ति	Cow are chewing grass
नारंग तरवः प्रफुल्लति	Orange trees are flowering
नारंग यूषाः सुमिष्ठः	Orange juice is sweet
माता सुनुं लालयति	Mother loves the son
सर्पाः सि सृपन्ति	Serpents are creeping
श्रृगालाः बुकूयन्ति हल्लाकुर्वन्ति	Jockals are barking and rearing
तत्र त्रयाः युवानः सताः	Thither three young Saint
उपरि स्थले	as an upper stall
नवकुटयान्तरे	in a new college
विभूति य बहुत्वं चिन्तयन्ति	Think of the beauty deity of God
स्थारि चरयन्ति	will stay
पार्थ चिण्यन्ति च	will play

गाँधीजी ने अपने विशद अध्ययन के आधार पर लिखा है— 'दुनिया में आज भी इतने लोग जिन्दा हैं, इससे सिद्ध होता है कि संसार की नींव शस्त्र-बल पर नहीं है, बल्कि सत्य, दया एवं आत्मबल पर है।... हजारों बल्कि लाखों मनुष्य प्रेम से रहकर अपना जीवन व्यतीत करते हैं। करोड़ों परिवारों के छोटे-मोटे झगड़े प्रेम भावना में डूब जाते हैं। सैकड़ों कौमें मिल-जुल कर रह रही हैं।'

यूनानी और रोमन जगत् को भारत की देन

छठी शताब्दी ईस्वी पूर्व भारत और यूनान के गहरे संबंध थे जो फारस के साम्राज्य जिसकी सेना में भारतीय सैनिक हुआ करते थे, से उपजे संबंधों के कारण थे। यूनानी इतिहासकारों ने एथेन्स में भारतीयों की उपस्थिति की चर्चा की है। उस शक्तिशाली साम्राज्य की सातवीं शताब्दी ईस्वी पूर्व की 'संचार तंत्र' व्यवस्था ने दोनों समृद्ध देशों के आपसी सम्पर्क को सरल और सहज बना दिया था। यूनान और भारत के आपसी ज्ञान के आदान-प्रदान ने इन दोनों देशों के लोगों को अत्यन्त प्रभावित किया।

फारस की सेना में भारतीय टुकड़ियाँ

यूनानी संस्कृति के महान् चिन्तक सर फ्लिन्डर्स ने भारतीय सत साधना की चर्चा करते हुए लिखा है कि फारस की सेना में भारतीयों की टुकड़ियों ने 480 ई.पू. अपनी उपस्थिति से किस प्रकार पाश्चात्य जगत् को प्रभावित किया। उन्होंने बताया है कि पाँचवी शताब्दी ई.पू. मेम्फिस में भारतीयों के प्रतीकचिह्नों की खोज से पता चलता है कि वहाँ भारतीय लोग व्यापार के लिये रहते थे। अतः इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि पाश्चात्य जगत् की नवीन सत साधना का स्रोत भारत ही है।

एथेन्स में भारतीय चिन्तक

चौथी शताब्दी ई.पूर्व में एथेन्स में भारतीयों की उपस्थिति का तत्कालीन साक्ष्य भी उपलब्ध है। 'यूसेबिन्स' (315 ई.पू.) एक ऐसी परम्परा को संजोये हुए थे जिसका श्रेय अरिस्टोक्सेनस, (Aristoxenus अरस्तू के शिष्य) को था। अरस्तू एक सुप्रसिद्ध समतावादी और सात्त्विकतावादी विचारक थे, जिनका समय 330 ई.पूर्व बताया जाता है (देखिये—Preparatic Evangelica प्रिपरेटिक इवेन्जेलिक॥-3)। गायक 'अरिस्टोक्सेनस' एक कहानी में इन भारतीयों के विषय में लिखते हैं, 'इनमें से कोई भारतीय अरस्तू से एथेन्स में मिला और उन्होंने (अरस्तू ने) पूछा कि आपके दर्शन 'ऐन एनक्वायरी इन्टू ह्यूमन फेनोमेनन' का क्षेत्र क्या है? इस प्रश्न पर भारतीय ने अट्टहास करते हुए पूछा, 'किस प्रकार हम मानव

फेनोमेनन Human Phenomenon पर प्रश्नचिह्न लगा सकते हैं जबकि हम उस दैवी शक्ति को ही नहीं जानते जिससे हमारी उत्पत्ति है।'

प्लेटो (अफलातून), अरस्तू और यूडोक्सस

कहीं-कहीं अरस्तू के संबंध में उल्लिखित 'डायोजिनिस लारटियस' में भारतीयों के एथेन्स में रहने की चर्चा है। 'प्लिनी' यूडोक्सस, जो प्लेटो के मित्र और ज्योतिषी थे, के अनुसार वे भारतीय विचारधारा में गहरी रुचि रखते थे।

भारतीय दूतावास

रोमन इतिहासकार 'स्ट्राबो' दमिश्क के निकोलस के आधार पर कहता है कि दूतावास के भारतीय ने 20 ई.पू. एथेन्स में आत्मदाह कर लिया जिसे भारतीय बादशाह पुरु (पोरस) ने 'सीजर' के पास भेज दिया था। प्लूटार्क ने भी इस आत्मदाह के बारे में कहा है कि उस भारतीय का मकबरा एथेन्स में 2 बाहरी व्यक्तियों के लिये एक दर्शनीय यादगार है।

स्वामी रंगनाथानन्द India's Contribution to the Greaco-Roman World P. 651

सिकन्दरिया के क्लीमेन्ट पालीहिस्टार की पुस्तक की चर्चा करते हुए उद्धृत करते हैं कि भारतीय नर-नारियों द्वारा, जो ब्रह्मचर्य व्रत में रहते थे और सदैव सत्य के अनुसंधान में लगे रहते थे, अपने इष्टदेव की अस्थियों के संग्रह स्तूपों की आराधना करते थे। त्याना के फिलोस्ट्रेटस, अपलोनियस, जो प्रसिद्ध यायावर थे, भारत की यात्रा विवरण में कहते हैं कि भारत के संतों के मठों में चार माह तक रहे।

विदेशी पर्यटकों का ज्ञान और धन हेतु आगमन

भारत विश्व के सभी देशों द्वारा समृद्धि और ज्ञान के भण्डार के रूप में जाना जाता था। धन ने अन्य देशों को व्यापार हेतु आकर्षित किया, वहीं भारत के चिन्तकों के ज्ञान ने ज्ञानपिपासुओं को आमन्त्रित किया। कुछ तो व्यापार करने आये और अन्य भारतीय मनीषा से शिक्षा अर्जित करने आये। सिकन्दर, जो किंवदंती सा बन गया, धन-लोलुपतावश आया। प्राचीन भारत विश्व में अपने व्यापार हेतु प्रसिद्ध था। भारत के पूर्वी एवं पश्चिमी घाटों पर रोम और पूर्व के राजाओं, जिसमें एशिया के निकट-पूर्व से लेकर पश्चिम तक, चीन और दक्षिण-पूर्व से सुदूर पूर्व तक के राज्यों द्वारा व्यापार हेतु आवागमन होता था। आज भी प्राचीन स्मारकों के उत्खनन में रोम के सिक्के दक्षिण भारत में पाये जाते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि भारत और रोम साम्राज्य का आपसी व्यापार अत्यधिक समृद्ध था। रोम से ऐश्वर्य-युक्त सामग्री का व्यापार होता रहा। रोम की महिलाएं भारतीय प्रसाधनों

को बहुत पसन्द करती थीं। इसी कारण बहुत अधिक सामग्री का निर्यात समुद्री जहाजों से हुआ करता था। भारत भी इन देशों से धातु के सामानों, घोड़ों आदि का आयात करता था। इसी कारण भारत ने रोम से अत्यधिक सोना लेना प्रारम्भ किया। परिणामतः रोम को बाद में भारत से व्यापार करने पर प्रतिबंध लगाना पड़ा। कोई भी राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से ऐश्वर्य के प्रसाधनों का व्यापार तब तक नहीं करता जब तक वह स्वयं एक समृद्ध और सर्वथा सम्पन्न औद्योगिक स्थिति में न हो। प्राचीन समय से ही भारत के लोग चतुर एवं कुशल, कर्मनिष्ठ, मितव्ययी होते थे। उसके कलाकार, शिल्पकार एवं कारीगर सौन्दर्य प्रसाधनों के निर्माण में दक्ष हुआ करते थे जिनकी मांग अन्य देशों में भी थी। वर्तमान भारत की भी यही तस्वीर है।

भारत की दूसरी तस्वीर यह है कि इसे ज्ञानभूमि समझा जाता था। इसके वेद, उपनिषद् और अन्य साहित्य से इसे दर्शनशास्त्र और उच्चकोटि के अध्येताओं की खान समझा जाता था। क्योंकि मानव जीवन की विविध समस्याओं से वे जूझते एवं समाधान निकालते थे। दार्शनिक विचारों की यह परम्परा भारतीयों में अद्वितीय, पूर्णत्व और योग्यता की परिचायक थी।

भारत का ज्ञान-कौशल

पाश्चात्य का प्राचीन-कालीन व्यक्ति भारत की प्रतिभा से अत्यन्त प्रभावित था। मध्यकाल में भारत के इस ज्ञान-विज्ञान का प्रसार पाश्चात्य देशों में अरबों के माध्यम से हुआ, जिनका साम्राज्य मध्य-पूर्व के देशों में फैला हुआ था। अरबों ने भारत के विज्ञान का प्रसार पाश्चात्य देशों में भी किया जिसे वे पहले ही भारत से अर्जित कर चुके थे। कई शताब्दियों तक अरबों के साम्राज्य भारत के ज्ञान के प्रसार-बिंदु बने रहे। भारतीय विचारधारा और संस्कृति को अरबों ने स्वतंत्रतापूर्वक ग्रहण किया। उसी प्रकार उन्होंने यूनान एवं रोम से भी विचारों एवं संस्कृति को ग्रहण किया। उन्होंने अत्यन्त समुन्नत सभ्यता का निर्माण अपने यहाँ किया। आठवीं शताब्दी में पूर्व में भारत और पश्चिम में यूरोप को भी अपनी सभ्यता से आप्लावित किया।

तेरहवीं शताब्दी में जब उनके साम्राज्य का पतन हुआ और उसका स्थान तुर्कों के साम्राज्य ने लिया तो भारत से सम्पर्क समाप्त हो गया। पाश्चात्य के पूरे इतिहास, विशेषतः पश्चिमी यूरोप के इतिहास में हम देख सकते हैं कि वहाँ के लोगों में एक सतत ललक भारत के सम्पर्क में बने रहने की जगती रही। जब तुर्कों द्वारा इस ललक को रोक दिया गया तो पश्चिमी यूरोप ने भारत जाने का समुद्री मार्ग ढूढ़ने का प्रयास किया। इतिहास का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि किस प्रकार इंग्लैंड, फ्रांस, हालैंड, स्पेन और पुर्तगाल ने लगातार अपनी पूरी शक्ति भारत का समुद्री मार्ग ढूंढ़ने में लगा दी और उनमें से एक पुर्तगाल ने समुद्री मार्ग,

जो दक्षिण अफ्रीका की परिक्रमा करते हुए था, ढूंढ़ निकाला। वास्को-डि-गामा ने यह मार्ग प्रशस्त किया और 1498 ई. में केरल के कालीकट नामक स्थान पर भारत-भूमि पर पदारोपण (पदार्पण) किया।

अमरीका

इस घटना ने एक बार फिर भारत को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस धारा से जोड़ दिया। उसी प्रकार कोलम्बस ने पश्चिम दिशा में समुद्री मार्ग से बढ़ते हुए अमरीका की भूमि पर सन् 1493 में अपने पांव रखे, जिसे उसने भारत समझ लिया। यद्यपि यह उसकी भूल थी परन्तु वहाँ के आदिवासियों को उन्होंने भारतीय कहना प्रारम्भ कर दिया।

वास्तविक भारत की खोज

मुझे गतवर्ष अमरीका के कई विश्वविद्यालयों और वहाँ के श्रोताओं को सम्बोधित करने का अवसर मिला जिसमें मैंने उन्हें बताया कि उन्होंने भारत की खोज करते हुए अमेरिकी महाद्वीप को बड़ी उपलब्धि के रूप में पाया था। यह भी बताया कि वे अपनी खोज के साथ भारतीय महाद्वीप की भी खोज को निरंतर चलाते रहे, जिससे भारत की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को जान सके। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के उपरान्त अमेरिकी लोगों का खोज अभियान और अधिक उत्साह के साथ चल रहा है। आज भारत अमरीका को आकर्षित कर रहा है। भारत का यह आकर्षण उन्नीसवीं शताब्दी में भी विद्यमान था जिसका प्रमाण वाल्ट ह्विटमैन की पुस्तक 'पैसेज टू इण्डिया' जैसी पुस्तकों में मिलता है। यूरोपीय देशों ने जिन बातों का अनुभव पहले ही कर लिया था, उसे अमरीका के लोग आज बीसवीं शताब्दी में कर रहे हैं।

पाश्चात्य की ओर प्रथम अभियान

हमें यह स्मरण रहना चाहिये कि जब स्वामी विवेकानन्द ने भारत के वर्तमान समय में अपनी पाश्चात्य देशों की यात्रा की उससे 5000 वर्ष पूर्व तक भारत का कोई प्रसिद्ध मनीषी, आध्यात्मिक प्रतिनिधि या लब्धप्रतिष्ठ सांस्कृतिक व्यक्ति इन देशों को नहीं गया था। भारत के अपने ज्ञान-प्रसार का कार्यकलाप केवल प्राच्य जगत् तक ही सीमित रहा जिसमें पश्चिमी एशिया भी सम्मिलित है।

बौद्ध धर्म प्रचार

अपने अनुभव की अजस्रधारा के प्रसार का कार्य भारत द्वारा गतिशील एवं प्रभावशाली रीति से महात्मा बुद्ध के समय में ही हुआ। इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि एशिया महाद्वीप के विभिन्न देशों तक बुद्ध के पहले भी भारतीय विचारधारा पहुँच

चुकी थी, परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से उन देशों तक महत्त्वपूर्ण सम्पर्क बुद्ध के समय में ही विशेष रूप से परिलक्षित होता है। विश्व में भारतीय ज्ञान की शृंखला का प्रसार मुख्य रूप से इन देशों में उन्हीं के समय में हुआ। बौद्ध धर्म के प्रचारकों ने पर्वतों के उस पार, समुद्र की सीमाओं को लांघकर लंका, दक्षिण-पूर्व एशिया, मध्य एशिया, मध्य-पूर्व एवं निकट-पूर्व चीन और कुछ सीमा तक कोरिया और जापान तक बुद्ध के धर्मोपदेशों का प्रचार-प्रसार किया। बुद्ध का शान्ति, प्रेम और आध्यात्मिकता का सन्देश इन देशों तक अबाध रूप से पहुँचा। उनके धर्म-सन्देशों का इन मध्य-पूर्व एशिया के देशों के साथ गहरा संबंध स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

इस प्रकार धर्म प्रसार का अनुभव और उसका सक्रिय प्रचार इस ऐतिहासिक काल में पूरे एशिया तक ही सीमित रहा। इसमें अशोक ने तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व मध्य-पूर्व एशिया में अपने राजदूत भेजे जिन्होंने सीरिया के अन्योकस, मिस्र के प्टोलेमी, फिलाडेलफस, मकदूनिया के एन्टीगोनस, गोनाटस, साइरेना के मेगास और एपिरस के अलैक्जेन्डर तक पहुँच कर बौद्ध धर्म का प्रचार करना जारी रखा। (स्वामी रंगनाथानन्द India's Contribution To The Greaco-Roman World - Page 653)

पाश्चात्य का भारत आगमन

पश्चिमी दुनिया के लोग भारत आकर जो भी ज्ञान प्राप्त कर सके उसे स्वतः लिया। इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि पाश्चात्य जगत् के लोगों पर ईरानी साम्राज्य के समय से ही व्यापार के सम्बन्ध में भारतीयों से सामाजिक सम्पर्क का प्रभाव पड़ा और भारतीयों पर भी उसी प्रकार प्रभाव पड़ा जो यूनान और अन्य देशों के सम्पर्क में आये।

सिकन्दर और भारतीय संत

भारत के पश्चिमी प्रान्तों में सिकन्दर चौथी शताब्दी ई.पू. में आया और उन पर विजय प्राप्त की। जिस मार्ग से वह गया उसके देशों को भी उसने जीत लिया परन्तु उसकी इच्छा थी कि पूर्व के आध्यात्मिक संतों और दार्शनिक विचारों से वह अवगत हो जाय। यूनान के इतिहासकारों ने सिकन्दर की एक भारतीय (पंजाब) के संत से मिलने की घटना को संजोकर रखा है। शास्त्रीय अभिलेखों में सम्राट् सिकन्दर के उस संत से मिलने और उनकी बातों से प्रभावित होकर उन्हें अपने साथ यूनान चलने के अनुरोध की विस्तृत चर्चा है। संत ने उसकी प्रार्थना को ठुकरा दिया तो वह बार-बार अनुरोध करता रहा परन्तु संत किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुए। तब सम्राट् अपने प्रभुत्व का रोब जताते हुए तलवार निकाल कर उन्हें जान से मार डालने की धमकी देने लगा। इस पर संत ने अट्टहास की हंसी हंसी। जब

सिकन्दर ने संत से हंसने का कारण पूछा और कहा कि आपको डर नहीं लगा तो संत ने उत्तर दिया कि सिकन्दर का वह कृत्य उसके जीवन की सबसे बड़ी मूर्खता थी। भौतिक सुखों का आकांक्षी सम्राट् उसे कभी भी मार नहीं सकता। क्योंकि वे केवल शरीर ही नहीं थे वे तो आत्मा थे जो अमर और स्वतंत्र है और जिसे न तो आग जला सकती है न पानी गीला कर सकता है और न कोई शस्त्र काट ही सकता है। अपने विश्व-विजय अभियान में उसे पहली बार एक ऐसा व्यक्ति मिला था जो उससे भयभीत नहीं हुआ। सारा विश्व उससे भय खाता था और उसके सामने नतमस्तक होता था। उसे पहली बार एक ऐसा व्यक्ति भारत में मिला था जो उससे भयभीत नहीं हुआ और शान्त और निर्भय रहा, सम्राट् के प्रभुत्व के सामने झुका नहीं।

भौतिकतावाद बनाम अध्यात्मवाद

भौतिकतावाद ने, जो पाश्चात्य देशों की उपज है, यूरोप और अमरीका के विचारों को पूर्णतः प्रभावित किया है। इन पाश्चात्य देशों ने भारत को तथा पूरे विश्व को अपनी गिरफ्त में ले लिया और उसके ऊपर एशिया के अन्य देशों पर भी भौतिकतावाद का जाल बिछ गया। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, स्वामी विवेकानन्द के पाश्चात्य भ्रमण अभियान का प्रश्न है उन्होंने पाश्चात्य देशों के भौतिकवादियों को अध्यात्मवाद का उपदेश देना ही लक्ष्य बनाया था। वे भारत का अध्यात्मवाद उनके ऊपर थोपना नहीं चाहते थे। जैसा कि विदेश भ्रमण के पश्चात् उन्होंने प्राच्य देशों में अपने प्रथम भाषण में व्यक्त किया था। विश्व की समस्या के केन्द्र-बिन्दु पर ही वे आक्रमण करना चाहते थे। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य भारत की प्राचीन परम्परा की तरह पाश्चात्य देशों की भौतिकतावादी संस्कृति पर प्रहार करना ही था।

चुनौतियाँ

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक पाश्चात्य भौतिकतावाद अपनी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। यह अभियान केन्द्रीभूत होने वाला था तभी उसे एक ऐसे देश से चुनौती मिली जो विदेशी साम्राज्य के अधीन था और अपनी मर्यादा छोड़कर इस भौतिकतावाद के आगे आत्मसमर्पण करने को उद्यत था। यह चुनौती किसी गाजे-बाजे अथवा.....फौजी दस्ते (cohorts) के साथ नहीं दी गयी थी। यह तो एक युवा संन्यासी द्वारा दी गयी। रोम्याँ रोलां कहते हैं, 'वह एक जन्मजात नृपति थे, जिसकी आत्मा में नेपोलियन का ओज भरा था। उनका मुखमण्डल देदीप्यमान था, वाणी में संगीत का आकर्षण था और हृदय और मन में पूरे विश्व के कल्याण की भावना भरी पड़ी थी।'

विश्व सभ्यता को भारत की देन

भूलोक का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल कहाँ?
वह ही कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन भारत-वर्ष है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की उक्त भारत-प्रशस्ति विश्व में भारत की महत्ता पर प्रकाश डालने वाली है। 'भारत की विश्व को देन' दो भागों में विभाजित की जा सकती है—

(क) सभ्यता के क्षेत्र में देन,

(ख) संस्कृति के क्षेत्र में देन।

सभ्यता जीवन का श्रृंगार है किन्तु संस्कृति जीवन का सार है। दोनों का यथास्थान अपना-अपना महत्त्व है किन्तु सार के बिना श्रृंगार साधना प्राणहीन मृतक की शव-पूजा के समान है। सभ्यता जीवन के साधनों का विकास है किन्तु संस्कृति जीवन का विकास है। जीवन के मूल्यों एवं आदर्शों का विकास है। भारत ने सभ्यता एवं संस्कृति दोनों क्षेत्रों में भूमण्डल के प्रायः सभी देशों को अपनी अलौकिक एवं अप्रतिम देन दी है।

विश्व-विजेता स्वामी विवेकानंद के शब्दों में :

सभ्यता के क्षेत्र में मानव को मानव, मैन (Man), मनुष्य, मनुज आदि नाम भी इसीलिए मिले क्योंकि वह मनु की संतान है। अब प्रश्न होता है कि मानव को घर बनाना, समाज में रहना, सभा में बैठना, योग्य-सभ्य होने का ज्ञान, किसने दिया।

संसार में सर्वप्रथम गेहूँ की खेती

रूसी वैज्ञानिक वाविलोव के मतानुसार, संसार में गेहूँ की उत्पत्ति सर्वप्रथम पंजाब के समीप हिन्दूकुश तथा हिमालय के बीच वाले भाग में हुई और यहाँ से इराक, यूरोप, अमरीका आदि सभी जगह फैल गई। इन देशों में जिस गेहूँ की खेती होती है उसका मूल स्थान पंजाब है।

संसार को शर्करा की देन

आज से 23 शती पूर्व जब सिकन्दर के नेतृत्व में यूनानियों ने भारत पर प्रथम आक्रमण किया तो आधी दुनिया के विजेता सिकन्दर एवं उसके साथियों को प्रथम बार भारत में इक्षुदण्ड (ईख, गन्ना) से रस निकालते हुए देखकर महत् आश्चर्य हुआ। उन्होंने आंखें मलते हुए परम आश्चर्य से कहा, 'भारतीय लोग भी क्या विचित्र लोग हैं। ये लकड़ियों को निचोड़कर रस निकालते हैं।' इसका अर्थ है कि तत्कालीन सारे सभ्य संसार (यूरोप के यूनान देश से लेकर एशिया तक) में गन्ना एवं खाण्ड कहीं उपलब्ध नहीं थे, जिससे यवन विजेताओं की जिह्वा मीठी हो सकी हो। संस्कृत के शर्करा शब्द से ही हिन्दी में शक्कर, रूसी में शाखर, जर्मन में जूखर, यूनानी में शूगर, लातीनी में सूकरोज, सेकेरीन, आदि सभी संसार भर की भाषाओं के शर्कराबोधक शब्द व्युत्पन्न हुए हैं। अतः विश्वभर के मानवों की जिह्वा पर जो मिठास है उस पर तो राज्य भारत का ही है। भारत ने ही संसार को सर्वप्रथम मीठा और मिठास का स्वाद चखाया।

चावल का यूरोपीय नामकरण

यूरोप के अंग्रेज लोग जब भारत के दक्षिण में व्यापार हेतु आकर बसने लगे तो उन्होंने तमिल के अरिशा (चावल) से अंग्रेजी भाषा में राइस (Rice) शब्द अपना लिया। अतः पश्चिम को चावल का ज्ञान भी भारत से ही हुआ।

संसार को कपास (कर्पदा) एवं वस्त्र कला का ज्ञानदान

23 शती पूर्व जब यूनानी भारत में आए तो पंजाब में कपास की खेती को देखकर उन्होंने विस्मित होकर कहा, 'भारत में लोग पेड़-पौधों पर ऊन पैदा करते हैं। सचमुच ही यह बड़ा विचित्र देश है।' इससे स्पष्ट है कि विश्वविजय की आकांक्षा से आधी दुनिया पार करके भारत में पहुंचने वाले तत्कालीन पश्चिम के सर्वाधिक सभ्य देश यूनान (जिसे यूरोपीय विद्वान् विश्व सभ्यता की जननी मानते हैं), उस सर्वाधिक सभ्य देश के सर्वाधिक सभ्य मानव सिकन्दर ने भारत पहुँचने से पूर्व न कपास का दर्शन किया था तथा न ही वस्त्र पहनना सीखा था। कपास के लिये संस्कृत शब्द कर्पदा है। रुई के लिये तूल शब्द से भ्रान्तिवश वूल (wool) शब्द प्रचलित हो गया। यूनानी भाषा में आज तक कपास को बोलबोले बोला जाता है। जर्मन तथा अन्य अनेक यूरोपीय भाषाओं में भी इससे मिलते-जुलते शब्द हैं। रुई को कातने अथवा वस्त्र को काटने के लिये संस्कृत शब्द कर्त्तन है। इसी से अरबी भाषाओं में कत्तन शब्द बना है। वही यूरोपीय भाषाओं में कॉटन शब्द बन गया। प्राचीनकाल में भारत की मलमल सिन्धु प्रदेश के बंदरगाहों से विदेशों में निर्यात होने के कारण बेबिलोनिया, मिस्र तथा रोम तक में सिन्धु नाम से

पुकारी जाती थी। ढाका की मलमल इतनी महीन तथा सूक्ष्म होती थी कि उसका पूरा थान एक अंगूठी के भीतर से पार हो सकता था। प्राचीन रोम में भारत की वह महीन मलमल तुला में सोने के भार के बराबर तौलकर बिकती थी। वहाँ के एक इतिहासकार प्लिनी ने कहा कि उस मलमल द्वारा भारत प्रतिवर्ष रोम से तीस हजार (30000) पौण्ड, (15000 सेर) सोना कमा लेता था। उसने चेतावनी दी कि यदि रोम की स्त्रियाँ उस महीन मलमल की खरीद बंद न करेंगी तो रोम लुट जायगा तथा रोम का सारा स्वर्णकोष भारत चला जायेगा। उसने उस सूक्ष्म पारदर्शी वस्त्र की आलोचना करते हुए उसे वस्त्र न मानकर उसे लहरदार हवा कहा, जिसके भीतर से स्त्रियों के सारे अंग नंगे दिखाई देते थे। उसने स्त्रियों से अपील की वे इस पारदर्शी पतली मलमल का प्रयोग बंद करें ताकि उनके शील तथा देश के सोने की रक्षा हो सके। किन्तु रोम की स्त्रियाँ भारत की उस महीन मलमल पर ऐसी मुग्ध थीं कि उन्होंने प्लिनी के विरुद्ध बड़ा भारी जनप्रदर्शन किया, तथा भारत के मलमल के व्यापार को बचा लिया।

कपास तथा रेशम दोनों प्रकार के वस्त्रों में भारत की महती ख्याति रही है। संस्कृत के वस्त्र शब्द से अंग्रेजी में वेस्टर शब्द बना है जिसका अर्थ वही है। इसी प्रकार वस्त्र-शिल्पी (दर्जी) के लिये अंग्रेजी में शब्द है—वेस्त्री मैन (वस्त्र मानव)। इन सब तथ्यों से प्रमाणित होता है कि संसार के बर्बर, जंगली, अधनंगे, अधभूखे लोगों को सर्वप्रथम वस्त्र पहनना तथा मानवीय गरिमा से भोजन करना भारत ने ही सिखाया।

फलों का दाता—भारत

फल राज रसाल (फलों का राजा आम) संसार को भारत की ही देन है। तमिल भाषा में आम के लिये प्रयुक्त शब्द मंगुई से ही अंग्रेजी तथा यूरोपीय भाषा में मेंगो (Mango) शब्द चल पड़ा है। संस्कृत के नारंग शब्द से आरेंज (Orange), काजू से कैस्यू, चंदन के लिये सन्दल, तरु के लिये ट्री, फूल के लिये फ्लावर, आदि-आदि नाम भारत की तद्विषयक देन के परिचायक हैं।

हाथी दांत तथा कीमती रत्न

हाथी दांत को संस्कृत में इमुदन्त, इमुरीय कहते हैं। इसी से अंग्रेजी में आइवरी शब्द बना है। हाथी दांत की कला में भारत अभी भी संसार में बेजोड़ है। भारत के मूंगा, मोती, पुखराज, पन्ना, नीलम, वैदूर्य आदि नवरत्न भारत ने ही संसार को दिये। आज तक विश्व का सर्वाधिक मूल्यवान हीरा कोहनूर, जो ब्रिटिश साम्राज्य के ताज में चमक रहा है, वह भारत की ही देन है।

मूल्यवान इमारती लकड़ी तथा सुगन्धियाँ

तुर्की के लेम्पेरकास नामक स्थान से ईसा की प्रथम शताब्दी की रोम की बनी हुई चांदी की एक सुंदर तश्तरी प्राप्त हुई है जिसमें केन्द्र में भारतमाता सिंहासनासीन है। भारतमाता उन सब वस्तुओं से अलंकृत और घिरी हुई दिखाई गई है जो प्राचीनकाल में भारत से रोम आदि देशों में निर्यात होती थी। भारतमाता सिर पर गंध-मुकुट पहने हुए है (जो इत्र में डूबे हुए तमाल-पत्रों से बनता था)। इसको पहनने से शिरो-वेदना दूर होती थी, मस्तिष्क को शीतलता मिलती थी। यह यूरोप के देशों में बहुत प्रचलित हो चुका था। उस गंध-मुकुट में ईख की दो पोरें खोंसी हुई हैं। उसका अर्थ है गन्ना तथा शर्करा, जो भारत से निर्यात होता था। उसका शरीर एक मलमली साड़ी से आवृत है। मलमल भारत से निर्यात होती थी तथा रोम आदि देशों में सोने के भार से तौलकर खरीदी जाती थी। जिस आसन पर वे बैठी हैं उसके पाये हाथी दांत के बने हुए हैं, जो भारत से निर्यात होता था। तश्तरी में दाहिनी ओर चितकबरा मुर्गा और एक शिकारी कुत्ता है। बायीं ओर सुग्गा और एक लंगूर है। चित्र में भारतमाता के चरणों के पास दो शिकारी चीते अपने रक्षकों के साथ हैं। ये सब पशु-पक्षी भी भारत से निर्यात होते थे।

मिस्र देश के प्राचीनतम पिरामिडों (शवादि मंदिरों) में राजाओं के शवों को रखने के लिए जो सुंदर पेटिकाएं मिली हैं वे सागवान (शाकवन) की लकड़ी की बनी हुई हैं जो भारत से निर्यात होती थी। शवों को लपेटने के लिये जो मलमल प्रयोग होती थी वह भारत से ही निर्यात होने वाली तथा सिन्धु नाम से प्रसिद्ध थी। इमली की लड़की को अरब एवं मिस्र देशों में तमरे-हिन्द कहा जाता है। जिसका अर्थ है हिन्द की लकड़ी। इसी से यूरोपीय भाषा में इमली के लिये तेमेरिन्द शब्द प्रचलित हो गया। इसी प्रकार आबनूस की लकड़ी, देवदारु की लकड़ी आदि भी भारत की ही देन है। भारत का राष्ट्र-पक्षी मयूर भी भारत की ही विश्व को देन है।

खेल एवं मनोरंजन प्रसाधन

शतरंज का खेल सारे संसार को भारत की ही देन है। सौ-सौ लोगों का रंजन करने के कारण इसे शतरंज कहा गया है। इसे चतुरंग भी कहते हैं, क्योंकि इसमें चार रंग की गोटियाँ प्रयुक्त होती हैं। ताश के पत्तों का खेल भी मूलतः भारत की ही देन है। प्राचीनकाल में ये पत्ते पीपल के पत्ते के समान अथवा गोलाकार होते थे जिन पर भगवान विष्णु के दशावतारों के चित्र बने होते थे। गेंद का खेल भी भारत की देन है। भगवान कृष्ण की कंदुक-क्रीड़ा तो प्रसिद्ध ही है। बाद में उसी का आधुनिक रूपान्तर गेंद, बल्ला (क्रिकेट), फुटबाल तथा वॉलीबाल आदि खेल बन गये हैं। हॉकी भी मूलतः एक भारतीय खेल था, जो दण्ड-कन्दुक के रूप में खेला जाता था। मल्लयुद्ध, अक्षक्रीड़ा, द्यूतक्रीड़ा, चौपड़ का खेल, वोटा क्रीड़ा

(गिल्ली-डंडा), गधक्रीड़ा, चित्रक्रीड़ा, बाजिबाह्य क्रीड़ा (घोड़े पर चढ़ कर पोलो का खेल), गज (वाह्य क्रीड़ा) हाथी पर चढ़कर गेंद खेलना, घटक्रीड़ा (शिर पर घड़ों को रखकर रस्सी पर, डंडे पर अथवा अंगारों पर चलना, कभी नेत्र बंद कर चलना), शब्दसंधान (शब्दवेधी बाण चलाना) आदि सब खेल भारत की ही देन हैं। कबड्डी के प्रसिद्ध खेल का प्राचीन नाम कोबधीह प्रतीत होता है जिसका भाव यह है कि सांस भर कर जाने वाला खिलाड़ी अन्यों को चुनौती देते हुए पूछता है कि मेरा वध करने की इच्छा कौन रखता है वह सामने आवे? योगासन तथा अन्य यौगिक क्रियायें तो भारत की इतनी महान् देन हैं कि आज सारे भौतिकवादी पश्चिम में भी तन एवं मन के स्वास्थ्य के लिये योगासन का सर्वाधिक प्रचलन हो चला है।

भारत के विश्वप्रसिद्ध गर्म मसाले तथा पाक-विज्ञान

पाक-विज्ञान के क्षेत्र में भारत संसार का सर्वप्रथम सभ्य देश हुआ। अरणियों द्वारा मंथन करके अग्नि प्रकट करने की कला भारत में सबसे प्रथम विकसित हुई तथा अग्नि को पवित्र मानकर अग्निष्टोम एवं हवन-यज्ञ प्रथा भारत की ही देन है। अग्नि द्वारा अन्न एवं वनस्पतियों को सिद्ध करके भोजन बनाने की पाककला भी भारत की देन है। भोजन को स्वादि बनाने हेतु नाना प्रकार के व्यंजन (गर्म मसाले) आदि भी संसार को भारत की ही देन है। प्राचीनकाल में भारत के गर्म मसालों की यूरोप में इतनी ख्याति थी कि एला, लवंग, जीरक, मरिच, शतपुष्पा (सौंफ), तेजपत्र, यवाजिका (अजवायन) इत्यादि की सुगंधि के लिये घर-घर की पाकशाला लालायित रहती थी। भारत के इन गंध-द्रव्यों से आकृष्ट होकर गाथिक जाति के एक लुटेरे-आक्रान्ता एलारिक ने रोम पर आक्रमण कर दिया था। तब रोम के बड़े-बूढ़े लोग उसके पास गये तथा उससे प्रार्थना की कि वह मुंह-मांगा पुरस्कार लेकर रोम को छोड़ दे। एलारिक ने पैंतीस मन भारत के गर्म मसालों की मांग की। रोमवासियों ने पैंतीस मन कालीमिर्च इत्यादि गर्म मसाले एकत्र कर एलारिक को भेंट किये तथा इस प्रकार पैंतीस मन कालीमिर्च में रोम की स्वाधीनता तुल गई।

भवन एवं नगर निर्माण कला

विश्व की प्राचीनतम सभ्यता का प्रमाण मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाई में प्राप्त सिंधुघाटी सभ्यता में मिला है। उसमें बड़े सुंदर-सुव्यवस्थित तथा सीध में बने हुए मार्गों वाले समकोणात्मक अधोभूमि प्रणालीयुक्त नगर ईसा से कम से कम पाँच हजार वर्ष पूर्व के काल के मिले हैं। इस प्रकार संसार में सबसे प्राचीन नगर व्यवस्था भारत की ही देन है। भारत के प्राचीन मंदिरों, राज-प्रासादों तथा कलात्मक भवनों की रचना को देखकर बड़े-बड़े विदेशी वैज्ञानिक आज भी विस्मय से ठगे से रह जाते हैं। एलोरा का कैलास मंदिर पहाड़ के एक ही पत्थर को

ऊपर से नीचे तक चीरकर व्यवस्थापूर्वक कई खण्डों में विभाजित अलौकिक मंदिर है जिसमें उसी एक ही पत्थर के शिखर, पत्थर की दीवारें, पत्थर की छत, पत्थर के कई ऊपर के खण्ड, पत्थर के आंगन, पत्थर के द्वारपाल, पत्थर के सैकड़ों कक्ष तथा उसी पत्थर को तराश कर बनाई गई सहस्रों कलात्मक मूर्तियाँ विश्व भर में बेजोड़ हैं, जो एक ही पत्थर पर अनेकानेक वर्षों तक छेनी तथा हथौड़े द्वारा की गई मानव की महानतम कला-साधना की गाथा गा रहे हैं।

ललित कलाओं की जन्मभूमि भारत

चित्रकला में अजंता विश्व का महानतम कलातीर्थ है। उसी की प्रेरणा पाकर लंका के राजाओं ने सिंहागिरि (सिगिरिया) की गुफा में पाँचवीं शती में भित्ति चित्र बनवाये। उसी से प्रेरणा प्राप्त कर चीन की तुनहुआंग गुफाओं में, तिब्बत के गुहा-मंदिरों में, कोरिया की वज्रगिरि गुफाओं में तथा बामियान (अफगानिस्तान) की विशाल गुफाओं में अलौकिक मूर्तियाँ एवं भित्ति-चित्र निर्मित हुए। अतः अजंता के द्वारा भारत की कला क्षेत्र में जो विश्व को देन है वह शाश्वत एवं अमोघ है। मूर्तिकला के क्षेत्र में चावल के दाने पर गीता के पद अंकित करने से लेकर बामियान (अफगानिस्तान) में 175 फुट ऊँची बुद्ध मूर्ति तक भारत की ख्याति विश्वभर में व्याप्त है। संगीत कला में भारत बेजोड़ है। शास्त्रीय संगीत भारत की अमूल्य निधि है तथा नृत्य कला भारत की शाश्वत-विभूति। साहित्य कला में आज तक कालिदास, तुलसी, टैगोर बेजोड़ हैं।

विज्ञानों का आदिगुरु भारत

विज्ञान के क्षेत्र में भारत ही विश्व का गुरु कहा जा सकता है। जहाँ 16वीं शती तक पश्चिम को धरती की गोलाई का ज्ञान तक भी न था वहाँ भारत के वेदों में भूगोल नाम भूमि के गोल होने का परिचायक है। आर्यभट्ट तथा भास्कराचार्य, वसुबन्धु तथा ब्रह्मभट्ट की गणित तथा ज्योतिष के क्षेत्र में देन आज भी भारत को आदिजनक सिद्ध करती हैं। कालगणना के क्षेत्र में भी भारत ही जगद्गुरु है। पोप ग्रेगरी (सन् 1587) से पूर्व सारे यूरोप में दिसंबर दसवां मास ही था, नवंबर नवां, अक्टूबर आठवां, सितम्बर सातवां, आदि। वर्ष का आरंभ मार्च (वसंत ॠतु) के विक्रम संवत् के समय ही हुआ करता था। संस्कृत के मासम् से लातीनी भाषा का मेंसम शब्द, संस्कृत दिव, दिवस से ही डे शब्द बने। गणित के अंकों को अभी तक अरबी भाषा में हिन्दसा कहा जाता है। जिसका अर्थ ही है भारत से सीखा हुआ। भारत के आयुर्वेद से ही यूनान का चिकित्सा शास्त्र प्रभावित है। चरक एवं सुश्रुत के ग्रंथों के अनुवाद मंचूरिया से अरब तक में उपलब्ध है। मंगोलिया में तथा तिब्बत में अमृत कलश लिए हुए धन्वन्तरि की मूर्तियों की प्रतिष्ठा है।

संस्कृति के क्षेत्र में भारत विश्व गुरु

भारत की देन सभ्यता के क्षेत्र में महान् है ही किन्तु उसकी महानतम देन तो संस्कृति के क्षेत्र में है, जिसकी चर्चा के लिए एक स्वतंत्र प्रबंध की आवश्यकता है। योगीराज अरविन्द ने कहा है—मानवता को यदि सचमुच महानतम जीवनमूल्य चाहिएं, जिसके आधार पर मानवता का त्राण हो सकता है, तो वे जीवनमूल्य जगद्‌गुरु भारत की महान् मृत्युंजय संस्कृति ही प्रदान कर सकती है। संसार के दुःखी प्राणियों को संस्कृति की सुधा पिला कर अमरत्व का वरदान भारत ही दे सकता है।

अमरीकी इतिहासकार विल डयूरंट ने दस खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टोरी आव सिविलाइजेशन' के प्रथम खण्ड 'अवर ओरियंटल हेरिटेज' में इस बात का उल्लेख किया है कि आधुनिक विश्व भारत से क्या आशा कर सकता है। उन्होंने कहा है (पृष्ठ सं. 633)

'यह सत्य है कि हिमालय की सीमाओं से पार भी भारत ने हमें व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, कथाओं, सम्मोहन और शतरंज तथा इन सबसे बढ़कर हमारे अंक और दशमलव प्रणाली की महान भेंट दी है परन्तु ये सब उसकी आत्मा का सार नहीं है। भविष्य में हम उससे जो सीख सकते हैं उसके मुकाबले में ये सब तुच्छ है। जैसे-जैसे नए आविष्कार, उद्योग तथा व्यापार महाद्वीपों को एकता में बाँधेंगे या एशिया के साथ हमको संघर्ष में डालेंगे, हम उनकी सभ्यताओं का अधिक निकटता से अध्ययन करेंगे तथा शत्रुता में भी उनके कुछ आचार-विचार को अपना लेंगे। संभवतः विजय, उद्दंडता और लूटमार के बदले में भारत हमें परिपक्व बुद्धि की सहनशीलता और शालीनता, असंग्रहशील आत्मा का शान्त-संतोष, समझदार व्यक्तित्व की शान्ति और सभी जीवित प्राणियों के प्रति एकता और प्रेम की शिक्षा देगा।'

विश्व के वक्षस्थल पर फहराता हुआ भारत का विजय-केतु

'यदि मुझ से पूछा जाये कि किस गगन के नीचे मानव-मन ने ऊँची से ऊँची प्रतिभाओं का विकास किया है, जीवन की बड़ी से बड़ी समस्याओं पर विचार करके ऐसे ऊँचे हल ढूंढ़े हैं जो प्लेटो तथा काण्ट का अध्ययन करने वाले विद्वानों के ध्यान को भी आकर्षित करने का अधिकार रखते हैं, तो वह महान् देश है 'भारत'। बीसवीं शताब्दी के संस्कृत के सब से बड़े विद्वान, महामहिमा-मण्डित डॉ. मैक्समूलर की भारत को वह श्रद्धांजलि कितनी हृदयहारी और मनोमुग्धकारी है। इसी भाव को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी भारत-भारती में गाया है—

भू-लोक का गौरव प्रकृति का, पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि, हिमालय और गंगाजल कहाँ?
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उस का कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारतवर्ष है।

विष्णु-पुराण में भारत की प्रशस्ति में लिखा है—

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतूभते, भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

अर्थात् स्वर्ग के तैंतीस कोटि देवता यही गीत गाते हैं कि भारतभूमि पर जन्म पाने वाले लोग धन्य हैं क्योंकि इस भूमि पर जन्म पाने मात्र से ही उनका स्वर्ग और अपवर्ग अपने आप सिद्ध हो जाता है। इसलिए भारत में जन्म पाने वाले लोग निश्चय ही देवताओं से भी ऊँचे हैं।

यह शस्यश्यामला भारत-धरणी विश्व संस्कृति की जननी है। भारतमाता के शीश पर दो हजार मील लम्बे हिमालय पर्वत की बरफानी चोटियों वाला चमकता हुआ चांदी का मुकुट रखा है। इस की हरी-भरी छाती पर गंगा-यमुना मोती और नीलम के समान झूल रही हैं। इस की कमर पर करधनी के समान विन्ध्य और सतपुड़ा पर्वतों की मेखला सुशोभित है। कृष्णा और कावेरी आंचल फहरा रही हैं।

पद-प्रान्त में स्वर्ण की कमल कली सी लंका सुशोभित है। दक्षिणी छोर पर कुमारी अन्तरीप के पास रत्नाकर की लहरें उछल-उछल कर भारतमाता के चरण पखारने के लिए दिन-रात होड़ करती रहती हैं। यह है सदावत्सला भारतमाता, जिस की गोदी में खेले राम और कृष्ण, भीम और अर्जुन, मनु तथा याज्ञवल्क्य, व्यास और वाल्मीकि, शिवि और हरिश्चन्द्र, बुद्ध और शंकर, चन्द्रगुप्त और विक्रमादित्य, नानक और कबीर, रामतीर्थ और विवेकानन्द, गांधी और अरविन्द। मनु से महात्मा गांधी तक तथा भगवान राम से रमण महर्षि तक कोटि-कोटि महापुरुषों की जन्मदात्री यह भारतमाता निखिल विश्व के धर्मों एवं संस्कृतियों की जननी है।

हमारा यह गौरव है कि जब समूचा संसार अन्धकार एवं अज्ञान के गर्त में पड़ा गोते खा रहा था, जब संसार के शेष देशों के लोग मानव का और पशुओं का कच्चा मांस खाकर अधनंगे घूमते थे, जब अमरीका अन्धकार में खोया हुआ था, और यूरोप के लोगों ने अपनी बन्दर की पूंछ काटकर इनसान बनना नहीं सीखा था, उस समय हमारे भारत के ऋषि हाथ में वेद के ज्ञान की मशाल लेकर सारे संसार को आलोक-मार्ग दिखा रहे थे। भारत की सारे संसार को सब से बड़ी देन यही है कि इसने अज्ञान में पड़ी हुई मानवता को सबसे पहले सभ्यता के प्रकाश का दान दिया। इसीलिए भगवान मनु ने आदेश दिया है कि इस देश के लोग पृथ्वी भर के सब मानवों को ज्ञान एवं विज्ञान की शिक्षा देवें। भारत की इस महान् देन को शोपनहावर, मैक्समूलर, कीथ और कांट, प्रभृति पश्चिमी विद्वानों ने भी मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। भारत की पराधीनता के काल में भी लंदन के ट्रेफल्गार स्क्वेयर में खड़े होकर दोनों भुजा उठाकर मैक्समूलर कहा करता था, 'भारत सारे संसार का आध्यात्मिक पूर्वज है। जिस जाति में राम और कृष्ण पैदा हुए हैं उसे गुलाम बनाना सारी मानव जाति के साथ घोर अन्याय करना है'।

भारत की आध्यात्मिक महिमा निराली है। सारे के सारे हिन्देशिया द्वीपसमूह में भारतीय संस्कृति की अमिट छाप अभी तक दृष्टिगोचर होती है। वहाँ के मन्दिरों की दीवारों पर महाभारत और रामायण के सुन्दर चित्र खुदे हुए हैं। ऋषि अगस्त्य का पूजन होता है। जावा का एक हजार स्तम्भों वाला विष्णु मन्दिर सारे संसार में बेजोड़ है। स्वयं भारत में भी उतना बड़ा मन्दिर नहीं है। इंडोनीजिया द्वीपसमूह में आज तक होने वाली रामलीला और रामायण, महाभारत गाथाओं का प्रचार देखकर वहाँ के करोड़ों मानव हृदयों पर अंकित भारतीय संस्कृति की छाप का अनुमान लगाया जा सकता है। सम्भवतः बहुत कम लोगों को पता है कि इंडोनीजिया के राष्ट्रपति डॉ. सुकर्ण के पिता महाभारत के महान् विद्वान थे। महाभारत में कर्ण का चरित्र उन्हें बड़ा पसन्द आया। परन्तु कर्ण का कौरवों के पक्ष में होना उन्हें अच्छा नहीं लगा। इसलिए उन्होंने अपने पुत्र का नाम रखा 'सुकर्ण' अर्थात् अच्छा कर्ण।

भिक्षु चमनलाल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दू अमरीका' में लिखा है कि कोलम्बस के अमरीका खोजने से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व अमरीका में हिन्दू साम्राज्य था। वहाँ के मन्दिरों और मूर्तियों के आधार पर एक सुन्दर चलचित्र तैयार करवा कर उन्होंने सारे संसार के सम्मुख इस सत्य को घोषित किया है। अमरीका से आते हुए जब मैक्सिको के एक जज ने उनसे पूछा कि 'आप हमें दोबारा हिन्दू धर्म में कब अपनायेंगे?' तो उनकी आंखों में आंसू भर आये।

इतिहास प्रमाण है कि काबुल में दसवीं शताब्दी तक ब्राह्मणों का राज्य था। काबुल नदी का नाम 'कुंभा' तथा कुर्रम नदी का नाम 'क्रमु' वेदों में भी आया है। देवभाषा संस्कृत को उस का सब से मूल्यवान व्याकरण देने वाला ऋषि पाणिनि, काबुल में ही तो पैदा हुआ था। ईरान की पुरानी भाषा अवेस्ता संस्कृत के शब्दभण्डार से भरपूर है। जिन के इतिहास के नेत्र बन्द नहीं हो गए हैं वे साफ समझ सकते हैं कि तुर्किस्तान राजा ययाति के पुत्र तुरु द्वारा बसाया हुआ तुरुस्क स्थान ही है। कंधार का पुराना नाम गन्धार देश था और कौरवों की माता गान्धारी वहाँ के राजा की पुत्री थी।

जर्मन देश का नाम शर्मण शब्द से बना है। प्राचीन काल में वहाँ अनेक ब्राह्मण विद्वान रहते थे जिन की उपाधि शर्मा प्रसिद्ध है। हिटलर अपने आप को आर्य कहने में गौरव मानता था और हिन्दुओं के चिह्न स्वस्तिक को अपने राष्ट्रीय झण्डे पर चित्रित करने में गर्व का अनुभव करता था।

वर्तमान युग के शक्तिशाली देश रूस की रूसी भाषा में संस्कृत के अनेकानेक तत्सम और तद्भव शब्द आज तक गूँजते हैं और इस बात का प्रमाण देते हैं कि भारत और भारती का डंका उन देशों में भी अवश्य बजा होगा। अपनी यात्राओं में संसद सदस्य डॉ. रघुवीर ने मन्चूरिया में लोगों को गायत्री पाठ करते देखा और मंगोलिया में ही गौड़पाद की सांख्यकारिका का प्रचार देखा। चीन, जापान, कोरिया, श्रीलंका, तिब्बत और ब्रह्मदेश करुणावतार भगवान बुद्ध की चरणधूलि को माथे पर चढ़ाने वाले भारत-भक्त ही हैं।

अमरीका में वर्तमान काल में भी भारतीय संस्कृति अपना प्रभाव दिखाए बिना नहीं रही। गीता के भक्त महात्मा थोरो का शिष्य इमर्सन जब इंग्लैण्ड के सन्त कवि कार्लायल से मिलने के लिए यूरोप में गया तो दोनों विद्वानों ने एक दूसरे को श्रीमद्भगवद्गीता की प्रति ही भेंट की। जब स्वामी विवेकानंद अमरीका में भारत की विजय-पताका फहराने के लिए पहुँचे तो वहाँ की एक महिला ने कहा—यदि अमरीका की धरती पर कभी ईश्वर ने चरण रखा है तो स्वामी विवेकानंद के रूप में। स्वामी रामतीर्थ के अमरीका पहुँचने पर उस देश के पत्रों ने लिखा कि एक

जीवित ईसा मसीह ने अमरीका की धरती पर चरण रखा है। स्वयं ईसा मसीह के विषय में रूसी विद्वान निकलसन नोटोविच की खोज के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि वे आध्यात्मिक शिक्षा के लिए भारत आए थे। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने ठीक ही लिखा है—

था हिन्दुओं का शिष्य ईसा यह पता भी है चला।
ईसाइयों का धर्म भी है बौद्ध सांचे में ढला।

अरब पर भारतीय संस्कृति की जो छाप है उसे लोग प्रायः भूल गए हैं। किंतु सूफी धर्म भारत के वेदान्त का ही एक दूसरा रूप था और 'अनलहक' गाने वाले मंसूर को फांसी देकर इस्लाम ने साबित कर दिया कि सूफी धर्म इस्लाम से नहीं जन्मा। इसी परम्परा में एक सूफी फकीर सरमद शहीद 'अनलहक' गाता हुआ भारत पहुँचा। वह औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह को वेदान्त और उपनिषद् पढ़ाया करता था। औरंगजेब ने दाराशिकोह को दिल्ली के चांदनी चौक में घुमवा कर मरवाने के बाद वेदान्त की मस्ती वाले फकीर सरमद को बन्दी बनाकर अपने दरबार में बुलाया और पूछा कि तुम काफिरों की तरह नंगे क्यों फिरते हो? सरमद ने उत्तर दिया कि 'मैं बालक के समान निर्दोष हूँ, तुम्हारे जैसे काफिर को ही अपने कुफर छिपाने के लिए सफेद लिबास की आवश्यकता पड़ती है।' इस पर क्रुद्ध होकर औरंगजेब ने पूछा—'तुम अपने आप को खुदा क्यों कहते हो? अनलहक मत कहो।' सरमद ने उत्तर दिया कि 'यह मेरी आत्मा की आवाज है इसे कोई रोक नहीं सकता।' जब दिल्ली के लाल किले के बाहर सरमद शहीद को सूली पर चढ़ाया गया तो सरमद ने कहा—'बहुत देर से मन्सूर की आवाज धीमी पड़ चुकी थी, शम्स तब्रेज की आवाज भी लोग भूल चुके थे, रूमी का सन्देश भी विस्मृत होने लगा था। उनकी आवाज को दोबारा गुंजाने के लिए मैं इस देश में आया हूँ जिस देश से अनलहक की आवाज हमारे देश तक पहुँची थी। मन्सूर को फांसी दे दो, सरमद को सूली पर लटका दो, पर अनलहक की अमरध्वनि कभी नहीं मरेगी।' दिल्ली के बिरला मन्दिर में संगमरमर की एक शिला पर हजरत मुहम्मद के चाचा अब्दुल हिक्म की एक अरबी कविता का अंश खुदा हुआ है। अब्दुल हिक्म ईश्वर से प्रार्थना करता है—'हे प्रभु, मेरा समस्त जीवन लेकर भी मुझे केवल एक दिन के लिए भारत का वास दे दो।' इससे पता चलता है कि हजरत मुहम्मद के बाप-दादा हिन्दू थे और भारत के दर्शन के लिए लालायित रहते थे। यह भी कहा जाता है कि अरब का संगे-अस्वद असल में शिव-लिंग का काला पत्थर ही है।

जब सिकन्दर विश्व-विजय करने के लिये भारत की ओर जाने वाला था तो उस के गुरु अरस्तू ने उसे कहा था—'भारत से मेरे लिए श्रीमद्भगवद्गीता लाना।' प्लेटो के दर्शन पर भी भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता

है। स्वस्तिक को ग्रीक क्रोस माना जाता है। नक्षत्र विज्ञान के क्षेत्र में तो अरब और यूनान दोनों ही भारत के शिष्य रहे हैं। बाइबिल में धरती को चपटा माना गया है। धरती को गोल कहने वाले गेलिलियो को जीवन भर दारुण दुःख दे कर भी उनकी धर्मान्धता का प्रतिशोध न हुआ। कुरान शरीफ के अनुसार धरती पहले थी और इसके अन्धकार को दूर करने के लिए अल्लाताला ने चांद और सूर्य बनाए। इसके विपरीत हमारे यहाँ ज्योग्राफी के लिए भूगोल नाम वेदों तक में मिलता है। इस नाम से ही स्पष्ट ज्ञात होता है कि धरती गोल है। संसार में सबसे पहले भारत ने धरती के सूर्य से उत्पन्न होने और परिक्रमा करने के बारे में घोषणा की थी। आज तक भारत के चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण की गणना अन्तिम पल तक ठीक निकलती है।

गणित के अंक सबसे पहले भारत ने खोजे, बाद में अरबों ने भारत से सीखे। अंक के लिए अरबी नाम हिन्दसा यह साबित करता है कि वे हिन्दुओं से उधार लिए गए हैं। साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत सब देशों का सिरमौर रहा है। इसके अविनश्वर गौरव के कारण ही यह समस्त भूमण्डल में सम्मानित हुआ है और विकराल काल की कठोर क्रूरताओं के बावजूद मृत्युंजय बना हुआ है।

भारत की विश्व को देन के विषय में बोलते हुए आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी में डॉ. राधाकृष्णन ने पश्चिम के लोगों को कहा था—'यह सच है कि तुम ने आकाश में पक्षी के समान उड़ना और पानी में मछली के समान तैरना सीख लिया है पर धरती पर इनसान के समान चलना तुम ने अभी तक नहीं सीखा। यह तुम्हें भारत से सीखना होगा।'

वह संस्कृति बिना किसी राजनीतिक उद्देश्य से बढ़ सकती है, वह व्यापार आगे बढ़ सकता है बिना किसी साम्राज्यवादी रूपरेखा के, बस्तियाँ बन सकती है बिना उपनिवेशिक प्रयास के, वह साहित्य, धर्म तथा भाषा का प्रसार विदेशी को नकार के या युद्ध तथा जाति विषमता के बिना, यह सब भारत के पड़ोसियों के सम्बन्ध के इतिहास से प्रमाणित है।

—**अरुण भट्टाचार्य**

दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार

संस्कृति के क्षेत्र में भारत एशिया का हृदय एवं जगत् का गुरु रहा है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में, 'भारतीय संस्कृति एक पूर्ण-प्रस्फुटित पुष्प के समान है, जिसके पराग के बीज अनुकूल पवनों द्वारा दूर-दूर देश-विदेशों में ले जाये गये तथा कालांतर में उन देशों में भी भारतीय संस्कृति के सुन्दर पादप लहराने लगे एवं इस प्रकार सारा भूमंडल भारतीय संस्कृति की पावन सुगंधि से सुवासित हो उठा।'

भारत के प्राचीन ऋषियों ने जो वेदों में उद्घोष किया था, **'कृण्वन्तो विश्वनार्यम'**, उसके पीछे विश्वकल्याण की भावना ही निहित थी। सारे विश्व को आर्यत्व सिखाने का अर्थ संसार के मानव-मात्र को अपने जीवन का माधुर्य, सौन्दर्य, ज्ञान एवं शाश्वत शान्ति का सुख बाँटना है। जहाँ मध्यकाल के पश्चिमी कट्टरपंथी धर्मप्रचारकों ने अपने-अपने सम्प्रदाय के विस्तार हेतु रक्तरंजित सर्वसंहार किये, अन्य मतावलम्बियों को जीवित जलाया तथा अनेक वर्ष पहले मरे हुए अन्य मतावलम्बियों की कब्रें खुदवा कर उनके कंकालों को टॉवर ऑफ लंदन पर फांसियाँ दी, जहाँ तबलीग के नाम पर अन्य देशों के लोगों को अपने मत के झंडे के नीचे लाने के लिए मानव जाति की ग्रीवा पर अंधे मजहबी जुनून की नंगी तलवार कई शताब्दियों तक नाचती रही, वहीं भारत ने अपनी महान् संस्कृति की सुवास बांटने के लिए त्याग, तपस्या, तितिक्षा एवं जीवनव्यापी अहिंसक साधना का मार्ग अपनाया। अपने मन के गुने हुए ज्ञान तथा साधी हुई सुख-शान्ति को समूचे मानव-परिवार में बांटने के पवित्र संकल्प से प्रेरित हो अनेक संस्कृति के ज्योतिधर ऋषि-मुनि तथा अहिंसाव्रती बौद्ध भिक्षु तिब्बत-चीन आदि उत्तरी एशिया के देशों में पैदल जाते हुए हिमालय पर्वत की हिमानी चोटियों में गल गये, किन्तु उनके शिष्यों ने ज्ञान का प्रकाश बाँटने का यह महान् यज्ञ खण्डित नहीं होने दिया तथा एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी उसी बलिदानपूर्ण साधना के पथ पर आगे बढ़ती रही तथा अनेकों के धीरज, साहस एवं बलिदान

के प्रताप से सारा उत्तर एशिया भारत का शिष्य बन गया। हिमालय की बाधा के समान दक्षिण-पूर्व के देशों एवं द्वीपों में अपनी संस्कृति के महायज्ञ का प्रकाश बाँटने हेतु जाने में महासमुद्रों की विकराल सर्वग्रासी लहरों की चुनौती थी किन्तु अगस्त्य जैसे ऋषियों के सामने महासमुद्रों की बाधाएँ न टिक सकीं। संस्कृति के अनेक संदेशवाहक लकड़ी के बंधे हुए तख्तों पर, खोखले ताड़ के तनों पर, पोपले बाँस के लट्ठों पर, छोटी-छोटी डोंगियों और नावों पर, समुद्री तूफानों से जूझते हुए सुदूर द्वीपों में संस्कृति का प्रकाश पहुँचाने हेतु इस जोखिम भरे महाअभियान पर निकल पड़े। अनेकों को महोदधि के तल में जल-समाधि लेनी पड़ी, अनेकों अहिंसक संस्कृति दूतों को सागर के विकराल हिंस्र-जंतुओं ने लील लिया। किन्तु इस महान् संस्कृति के सपूतों ने साहस नहीं त्यागा तथा एक दिन समूचे दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति के मंगल गीत गूंजने लगे।

महाकवि कालिदास ने हिमालय पर्वत को न्याय की तुला का विशाल दंड कहा है। हिमालय से ऊपर, उत्तर एशिया के देश हैं। हिमालय से नीचे दक्षिण एशिया के देश हैं। ब्रह्मदेश से लेकर इन्दोनीजिया तक के देश दक्षिण-पूर्व एशिया में गिने जाते हैं।

ब्रह्मदेश—भारत के असम, मणिपुर, नागालैंड प्रदेशों को स्पर्श करता हुआ ब्रह्मदेश सन् 1936 तक तो भारत का अंग ही था। उससे पूर्व भी सहस्राब्दियों तक वह भारतीय संस्कृति से परिपूर्ण देश रहा है। भगवान बुद्ध के काल से पूर्व ही भारतीय बर्मा में बस चुके थे। बर्मा का प्राचीनतम राज्य श्रीक्षेत्र कहलाता था। इसकी राजधानी 'विष्णोमिया' अर्थात् विष्णुपुरी थी। इसको आजकल प्रोम कहा जाता है। बौद्धकथाओं के अनुसार इसका निर्माण भगवान विष्णु ने विश्वकर्मा की सहायता से किया था। बुद्ध-पूर्व काल में ही कपिलवस्तु के शाक्य वंश का राजकुमार अभिराज उत्तरी ब्रहादेश में आया तथा इरावती नदी के उत्तरी भाग पर उसने सेकिस्सा (तगौंग) नामक नगर बसाया।

ब्रह्मदेश में निम्नलिखित हिन्दू राज्य स्थापित हुए—

1. धन्यावती—अराकान
2. बसीन—बसीन
3. रामावती—रंगून
4. हंसावती—पेरू
5. सुधम्भावती—शदान

बुद्ध के समय में ही क्षत्रियों का एक दूसरा दल गंगा की घाटी से उत्तरी ब्रह्म आया। यह बहुत ही रोचक तथ्य है कि ब्रह्मदेश की वर्तमान राजधानी रंगून का नाम

ही रामावती अर्थात् राम की नगरी था। रामावती से रम्मनवती, रंगनवती इत्यादि नाम परिवर्तित होते-होते रंगून नाम हो गया है। वहाँ रामलीला 'यामाप्वे' के अत्यंत सुन्दर चित्र से संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। वहाँ की लीला में अभिनीत शेफालिका नृत्य भी भारत की देन है, जिसमें नर्तक गिरते हुए शेफाली के श्वेत पुष्प के समान दिखाई देता है।

मध्यकाल में एक भारतवंशी राजा अनिरुद्ध द्वारा सन 1044 में संस्थापित राजधानी अनोरथपुर (पगान) के ध्वंसावशेषों को देखकर दर्शक मुग्ध हो जाता है। 16 वर्गमील में 5000 स्तूप अभी तक विद्यमान हैं। राजा मिन्दोन द्वारा निर्मित 'कथोदा पेगोडा' माण्डत्वे में 729 संगमरमर पट्टिकाएं सुसज्जित हैं, जिन पर समूचे बौद्धग्रन्थ उत्कीर्ण हैं।

हैलांग में भगवान विष्णु का लगभग 1 हजार वर्ष पुराना मंदिर विद्यमान है, जहाँ की प्रधानमूर्ति गरुडवाहन विष्णु बर्लिन म्यूजियम में ले जाई जा चुकी है, किन्तु दशावतार की मूर्तियाँ अभी तक विद्यमान हैं, जैसे भूदेवी के साथ वाराह, हिरण्यकशिपु का संहार करते हुए नरसिंह, त्रिभंग मुद्रा में श्रीराम, परशु खड्ग एवं धनुष धारण किए परशुराम, भगवान कृष्ण, बुद्ध, कल्कि आदि सभी विष्णु अवतारों की बहुत सुन्दर मूर्तियाँ खण्डित हैं। इस मंदिर में सूर्य भगवान की मूर्ति भी है। ब्रह्मदेश में गणेश की उपासना 'महापिसेन' के नाम से अभी भी प्रचलित है।

पगान का श्वेत रंग का आनन्द मंदिर बर्मा का दुग्ध धवल स्थापत्य चमत्कार ही है। कुछ दृष्टियों से वह भारत के ताजमहल से भी अधिक कलात्मक है। इस मंदिर के चारों ओर 1500 मूर्ति पटलों पर भगवान बुद्ध की पूर्वजन्म की जातक कथायें चित्रित हैं, जिनका विवरण पाली अथवा मोन भाषा के शिलालेखों में दिया गया है। पगान के धर्मप्रवण राजा किन्जिथा ने मणियों का एक विशाल संग्रह भारत में बौद्धगया के स्तूप के पुनरुद्धार के लिए जलयान से भेजा था। चीनी यात्रियों के वर्णन के अनुसार श्रीक्षेत्र में व्यू राज्य में एक हजार (1000) बौद्ध मंदिर थे।

बर्मा का सबसे महान् ऐतिहासिक मंदिर है रंगून का 2500 वर्ष पुराना द्वितीय डैमॉन पेगोडा, जो सोने से मढ़ा हुआ संसार का सर्वाधिक मूल्यवान मंदिर है। यह रंगून नगर के एक कोने में सिगुत्रा पहाड़ी पर निर्मित है। इसके चारों ओर चौसठ पेगोडा हैं। जिसके चौसठ शिखर हैं। केन्द्रीय शिखर 368 फुट की ऊँचाई तक उठा हुआ सूर्य प्रकाश में इतना चमकता है कि दृष्टि चौंधिया जाती है। चारों ओर 166 विशाल सीढ़ियाँ है, जिन पर हाथी भी सुगमता से चढ़ सकता है। पेगोडा में 40 टन तथा 16 टन के दो बड़े घंटे लगे हुए हैं। गर्भगृह में ठोस सोने की भगवान बुद्ध की मूर्ति है। कई टन सोने के अतिरिक्त इस मंदिर में 5448 हीरे तथा 3000 बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं। सोने की इतनी अधिकता के कारण ही दक्षिणी बर्मा को

स्वर्णभूमि कहा जाता था। महाजनक जातक के अनुसार राजकुमार महाजनक भारत से व्यापारियों के साथ समुद्र मार्ग से सुवर्ण भूमि की यात्रा पर जाते हैं। कौटिल्य ने भी सुवर्ण भूमि की महिमा लिखी है।

कम्बुज—कम्बुज देश राजर्षि कम्बुज द्वारा संस्कारित देश है। भारत की सांस्कृतिक दिग्विजय संपादित करने वाले महापुरुषों में निम्नलिखित का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है।

अगस्त्यः कम्बु कौण्डिन्यः राजेन्द्रश्चौलभूषणः।
सर्वे दिग्जियिनाः ख्याताः शैलेन्द्रो बपा रावलः।।

अगस्त्य ऋषि, जो पुराणों के वर्णन के अनुसार सागर को तीन चुल्लू में पान कर गये थे, वे वास्तव में समुद्र पार कर मलाया या इन्दोनीजिया में भारतीय संस्कृति के सर्वप्रथम संदेशवाहक बनकर पहुँचे तथा मलाया एवं जावा में अभी तक उनके मंदिर हैं जिनमें उन्हें शिवगुरु के नाम से पूजा जाता है। राजर्षि कम्बु कम्बुज के आदिपुरुष माने जाते हैं। कौटि नामक दक्षिण भारत के एक ब्राह्मण प्रचारक ने चम्पा (वियेतनाम) में वहाँ की राजकुमारी सोमा को भारतीय संस्कृति में दीक्षित कर वहाँ सांस्कृतिक साम्राज्य का विस्तार किया था। चोलवंश के महाराजा राजेन्द्र चौल ने लगभग सारे दक्षिण-पूर्व एशिया पर शासन किया। शैलेन्द्र साम्राज्य सुमात्रा एवं हिन्दूचीन तक फैला हुआ था। बप्पा रावल ने अफगानिस्तान एवं अरब तक सांस्कृतिक विजय सम्पादित की।

कम्बुज में संसार का सबसे बड़ा विष्णु मंदिर अंकुरवट स्थित है। अंगकोरवट् एक महान् विष्णु मंदिर है, जिसका घेरा 211 मील लम्बा है। इसके चारों ओर ८०० फुट चौड़ी खाई है। मंदिर की पीठिका में हजारों गरुड अंकित हैं, जिन्होंने मंदिर के विमान को अपने शीश पर उठाया हुआ है। उस विमान के सात सोपान हैं, अर्थात् सात एक-दूसरे के ऊपर उठती परिक्रमाएं हैं जो भूलोक, भूवःलोक, स्वःलोक, महालोक, जनःलोक, तपलोक, सत्यलोक के नाम से प्रसिद्ध हैं। चारों ओर ऊँचे शिखर हैं तथा सातों परिक्रमाओं में सुन्दर जगत्-विख्यात चित्रशालाएँ हैं। इनमें रामायण, महाभारत एवं हरिवंश के कथानक चित्रित हैं।

अंगकोरवट् के समान अङ्कोरधाम एक महान् शिवमन्दिर है, जिसमें 54 शिखरों के प्रत्येक कोने पर लोकेश्वर शिव की मूर्तियाँ अंकित हैं। उक्त मन्दिर में समुद्रमंथन का मूर्तिशिल्प बड़ा अलौकिक है। वहाँ दक्षिण भारत जैसी नटराज की मूर्तियाँ भी बहुत मिली हैं। राजा जयवर्मन, यशोवर्मन, धरणीन्द्र वर्मन, भववर्मन इत्यादि ने अनेक शैव, वैष्णव एवं बौद्ध मन्दिर बनवाये। वहाँ के संस्कृत शिलालेख भी महान् ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। वहाँ हरिहर की मूर्तियाँ भी मिली हैं

जिनमें शिव एवं विष्णु का समन्वय किया गया है। दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार लवदेश, लाओस देश का नाम वहाँ के निवासी अभी तक लव-देश ही लिखते हैं। थाई देश के लवपुरी नामक नगर के समान ही इस देश का नामकरण हुआ। वहाँ लव भाषा में लिखी रामायण बहुत लोकप्रिय है। राम का धनुषभंग, सीता की अग्निपरीक्षा, बाली वध, उड़ते हुए गरुड आदि की मूर्तियाँ बड़ी चित्ताकर्षक हैं।

सहस्र बुद्ध मन्दिर तथा रक्त मन्दिर बहुत सुन्दर हैं। भाषा पर संस्कृत एवं पाली का प्रभाव बहुत अधिक है। इन्द्र, ब्रह्मा, देवी, धरणी देवी, मेखला ऋषि इत्यादि शब्द लव भाषा में आज तक गूंज रहे हैं।

वियेतनाम (चम्पा)—जिस चम्पा देश में कौण्डिन्य नामक प्रचारक ने भारतीय संस्कृति की लौ जलायी वहाँ महाराजा भद्रवर्मा, राजा सत्यवर्मा, राजा इन्द्रवर्मा, हरिवर्मा आदि बड़े प्रतापी हिन्दू राजा 1500 वर्षों तक राज्य करते रहे। वे शैव और वैष्णव धर्म को मानते थे। चौथी शताब्दी में राजा भद्रवर्मा प्रथम द्वारा बनाया हुआ भद्रेश्वर स्वामी नामक शिव मन्दिर चम्पा की राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रतीक बन गया। चम्पा में सौ से भी अधिक शिलालेख ब्राह्मी लिपि में मिले हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि वहाँ की राज्यभाषा संस्कृत रही है। आज भी वहाँ 8000 से भी अधिक बौद्ध भिक्षु हैं। किन्तु अमरीका और चीन के संघर्ष में उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वाधीनता प्राप्त नहीं है, जिसके कारण अनेक बौद्ध भिक्षुओं ने आत्मदाह करके अपनी स्वाधीनता का संकल्प दोहराया है।

मलयदेश—ईसा की प्रथम शताब्दी में यूनानी इतिहासकार मलय प्रायद्वीप को स्वर्ण भूमि कहते थे। उड़ीसा तथा दक्षिण भारतीय लोगों के प्रभाव के कारण भारतवंशी लोगों को अभी तक वहाँ ओरांग कालिंग कहा जाता है, जिसका अर्थ है उड़ीसा (कलिंग) से आये हुए लोग। मलय नाम दक्षिण भारत के मलय पर्वत के नाम पर ही पड़ा। मलय की भाषा में अनेक प्राकृत रूपी तमिल शब्द प्रचलित हैं। इसकी पुरानी लिपि भी भारत की पल्लवकाल की लिपि है। 15वीं शताब्दी में लंका के शासक की उपाधि परमेश्वर थी। उसके सेनापति को दत्तश्री विजयाधिराज कहा जाता था। सातवीं शती में मलय देश में शैलेन्द्रों का प्रतापी श्रीविजय साम्राज्य था। सिंगापुर में एक राजकुमार नित्य उत्तम प्रवास पर गया था। उसने सतह पर उतरते ही सामने एक सिंह देखा जिसके कारण उसका नाम सिंहपुर हो गया। मलयदेश की राजधानी कुआलालुम्पुर का नाम कैवल्यम्पुर था। प्रधानमंत्री तुंकु अब्दुर्रहम के छोटे भाई का नाम तुंकु लक्ष्मण है। तुंकु उपाधि भी संस्कृत के तुंग शब्द से है, जिसका हिज हाइनेस के समान ही अर्थ है 'ऊँचा'। मलाया, मलका, सिंगापुर, सारावाक, वरुणीय द्वीप (बोर्नियो) के मुस्लिम सुल्तानों के गले में भी एक सोने

की कंठी रहती है, जिसमें गणपति की मूर्ति बनी होती है। सुल्तानों की उपाधियाँ भी संस्कृत के मन्त्रों द्वारा ब्राह्मण ही करवाते हैं। मलय देश की रामकथा 'हिकायत सेरी राम' बहुत रोचक तथा आज तक लोकप्रिय है।

इन्दोनीजिया—इन्दोनीजिया नाम दो यूनानी शब्दों के योग से बना है। 'इन्दो' अर्थात् हिन्दू और नैसेस अर्थात् द्वीप। अतः इन्दोनीजिया का अर्थ है द्वीपों का भारत अथवा हिन्दू द्वीपसमूह।

भारत के प्राचीन साहित्य में इसे द्वीपस्थ भारत, द्वीपान्तर भारत, वृहत्तर भारत इत्यादि नामों से पुकारा जाता था। तब यहाँ डच लोगों का अधिकार था। तब इसे डच ईस्ट इण्डीज कहा जाता था। जिसका अर्थ है डच जाति के अधिकार में पूर्व में बसे हुए हजारों छोटे-छोटे भारत।

मलय देश तथा आस्ट्रेलिया के बीच में समुद्र में 3 हजार मील लम्बाई में फैले हुए लगभग 3000 द्वीपों में भारतीय संस्कृति अपने अविनश्वर गौरव से आज भी जगमगा रही है। महर्षि अगस्त्य के पश्चात् उत्कल के प्रचारकों एवं व्यापारियों ने यवद्वीप (जावा) में प्रवेश किया तथा वहाँ जौ की खेती देखकर उसे यवद्वीप नाम दिया।

वाल्मीकि रामायण में वर्णन है कि जब सुग्रीव ने वानरों को सीता की खोज के लिए भेजा तो उन्हें यवद्वीप तथा स्वर्णद्वीप (सुमात्रा) भी जाने के लिए आदेश दिया। इन्दोनीजिया की प्राचीन राजधानी का नाम जोग्जाकर्ता (अर्थात् अयोध्याकर्ता) था। नई राजधानी जर्काता के मुख्य रेलवे स्टेशन के सामने एक गोलाकार उद्यान में चारों ओर जलक्रीड़ा करते हुए फव्वारों के बीच में ऊँची पीठिका पर भगवान गणपति की स्वर्णिम प्रतिमा विराजमान है।

'प्रम्बनम' राम कथा पर उत्कृष्ट मूर्तिकला का अद्वितीय पुण्यस्थल है। मूर्तिशिल्प तीर्थ में रामचरित पर हजारों मूर्ति पटल इस सुन्दर शैली में उत्कीर्ण किए गये हैं कि उसकी भारत में भी किसी वस्तु से तुलना नहीं हो सकती। इन्दोनीजिया का राष्ट्रीय महोत्सव है तेरियन सेन्दरात्रि रामायण, जिसका अर्थ है नृत्यमय नवरात्रि रामायण।

सर्वप्रथम इन्दोनीजिया ने अपने देश में अंतर्राष्ट्रीय रामायण महोत्सव आयोजित कर विश्व भर में अपनी सांस्कृतिक निष्ठा की प्रबल उद्घोषणा की।

जावा का प्रसिद्ध बोराबुदूर (बृहद् बुद्ध मंदिर) भी विश्व में बेजोड़ है। यह पहाड़ी को काटकर बनाया गया। इसमें गोलाकार परिक्रमा में ही उत्तरोत्तर उठते हुए 9 खण्ड हैं। 12 स्तूप हैं। इन्दोनीजिया की हर धर्मपुस्तक इस प्रार्थना से प्रारम्भ होती है, 'ओम अविघ्नमस्तु' अर्थात् हमारे कार्य में कोई विघ्न-बाधा

न आवे। रामायण तथा महाभारत को आज तक राष्ट्रीय महाकाव्य का सम्मान प्राप्त है।

राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन आदि राष्ट्रीय महापुरुष के रूप में सम्मानित हैं। भूतपूर्व राष्ट्रपति सुकर्ण का नाम महाभारत महारथी कर्ण के नाम पर था। इन्दोनीजिया का बाली द्वीप तो शत-प्रतिशत हिन्दू धर्मावलम्बी है। बाली में हर घर के दो भाग हैं नरगृह, और देवगृह। नरगृह में लोग रहते हैं तथा देवगृह में दैनिक पूजा-उपासना करते हैं। वहाँ अभी तक वर्ण व्यवस्था, गो पूजा, शिव-विष्णु उपासना, अंत्येष्टि संस्कार, श्राद्ध आदि सभी प्रथाएं प्रचलित हैं।

जब सन् 1945 में इन्दोनीजिया स्वाधीन हुआ तो बाली निवासियों ने भगवत्गीता की सौगन्ध खाकर स्वाधीनता की रक्षा के लिए संकल्प किया।

इस प्रकार सारे दक्षिण-पूर्व एशिया के अनेकों देशों तथा सहस्रों द्वीपों में भारतीय संस्कृति का प्रकाश आज तक जगमगा रहा है।

विश्व का आध्यात्मिक गुरु होने का गौरव भारत को ही प्राप्त है। भारत ने एशिया के समस्त देशों को आध्यात्मिक ज्ञान की अखण्ड ज्योति दी है और वह आज भी बर्मा और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों को उनके राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय जीवन में आलोक प्रदान करती है।

—श्री द्दान-ठून

× × ×

आज संसार संघर्षमय है, क्योंकि तरह-तरह के विभेद संसार में हैं, इस संसार को सुख का, शांति का रास्ता यदि दिखाना होगा तो वह हिन्दुस्तान ही दिखा सकता है, क्योंकि अलग-अलग कारणों से इस देश में इतनी विविधतायें हैं कि इन सब विविधताओं के रहते हुए यदि एकात्मकता का सूत्र यहाँ बतलाना हो सका और विविधता में एकात्मकता का सूत्र रखने वाला समाज यदि यहाँ मॉडल के रूप में निर्मित हो सका तो फिर उसी का अनुकरण करके सम्पूर्ण संसार किस तरह विविधता के अन्तर्गत एकात्मकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है, यह प्रयोग करने की प्रेरणा प्राप्त हो सकती है।

—आरनाल्ड टायनबी

श्याम देश में रामचरित्र का पवित्र प्रकाश

रामायण की महागाथा विश्व की सर्वप्रसिद्ध इतिहास गाथा है जिससे मानव जगत् के अधिक से अधिक प्राणी सुपरिचित हैं। इसी कारण इन्डोनीजिया के तेरियन-तेरियन सेन्दरात्रि रामायण महोत्सव तथा विगत वर्ष के अन्तरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन से लेकर मैक्सिको (अमरीका) में अभी तक प्रचलित रामसीता महोत्सव तक सारे विश्व में, भूमंडल के पूर्वी छोर से पश्चिमी छोर तक सर्वत्र रामकथा गूँज रही है।

भारत के पूर्व में ब्रह्मदेश है, जो सन् 1936 तक भारत का ही अंग था। उसके पूर्वी सीमान्त को स्पर्श करता हुआ एक अन्य देश श्याम (थाई देश) है। जो कुछ दृष्टियों से वर्तमान भारत से भी अधिक भारतीय संस्कृति में रंगा हुआ है।

राम-राज्य आदर्श-विभूषित देश

थाई देश संसार का एकमात्र धन्य देश है, जिसने राम-राज्य के अलौकिक आदर्श को अपने देश में साकार करने का सबसे प्रामाणिक प्रयास किया है। यह इतिहास की एक विचित्र विडम्बना ही है कि राम के अपने देश भारत में राम-राज्य उतने अलौकिक रूप में साकार नहीं हुआ जितना पड़ोसी देश श्याम में। आंग्ल भाषा में जिसे थाईलैंड पुकारा जाता है, उसे वहाँ के निवासी श्याम या थाई देश कहकर ही संबोधन करते हैं। थाई एक जाति का नाम है, जो लगभग दो हजार वर्ष पूर्व चीन से निर्वासित होकर इस क्षेत्र में आ बसी थी। अतः थाई देश, जाति से चीनी नृवंश का होते हुए भी हृदय से इतना अधिक भारतीय है कि उसकी राम-राज्य निष्ठा के सम्मुख स्वयं भारतीय भी लज्जित हो जावें।

श्याम देश का संकेत हमारे रामायण महाकाव्य में भी मिलता है। सुग्रीव ने जब सीता की खोज के लिये वानरों को भिन्न-भिन्न दिशाओं में भेजा तो उसने मलय, यव द्वीप तथा श्याम देश की ओर जाने का भी संकेत किया। श्याम 1350 ई. तक कम्बोडिया (कम्बुज देश) का अंग था, जिसे भारत के प्रातःस्मरणीय ऋषि कम्बु ने नाम संस्कार देकर भारतीय संस्कृति की दीक्षा दी।

राम ही राजा

महर्षि वाल्मीकि ने कहा—'न हितद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपति।' अर्थात् वह राष्ट्र राष्ट्र ही नहीं जहाँ राम राजा नहीं। थाई देश ने इसी कथन को मानो जीवन का आदर्श स्वीकार कर लिया है। इसलिए वहाँ के राजाओं के नाम राम नाम से विभूषित हैं। यथा—रामखम्हेङ् (राम राजा) सन् 1283, श्री सूर्यवंश राम—सन् 1355, रामाधिपति—सन् 1350, रामराजा—सन् 1394, देवनगर के राम— सन् 1767, महवज्र बुद्धराम, महामतंक राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामाधिपति, रामसुवन, रामपुत्र इत्यादि।

अयोध्या तथा भारतीय तीर्थों की गरिमा

थाई देश में भारतीय तीर्थ धामों को भी उचित सम्मान मिला है। श्याम देश की प्राचीन राजधानी द्वारावती नामक नगर में थी। इसी के समीप सन् 1350 में श्याम के नरेश रामाधिपति ने जो षष्ठ राम कहलाते थे अयोध्या नामक नगरी बसायी, जो श्याम देश की सर्वप्रसिद्ध राजधानी बन गई। सन् 1369 में रामाधिपति के स्वर्गवास के पश्चात् उनका पुत्र रामसुवन (जो लवपुरी में शासक था) सिंहासन पर बैठा। अयोध्या तथा लवपुरी श्याम देश के अब तक समृद्ध नगर हैं। थाई देश की प्राचीन राजधानी अयोध्या वर्तमान राजधानी बैंकाक से लगभग पचास किलोमीटर उत्तर में स्थित है तथा लवपुरी बैंकाक से लगभग 155 किलोमीटर की दूरी पर श्याम देश के मध्य में स्थित है। अयोध्या नगर जिस प्रान्त में स्थित है उसका नाम विष्णु लोक है। इससे पूर्व की राजधानी सुखोदय है जिसे आजकल सुखोथई उच्चारण किया जाता है।

इसी प्रकार श्याम देश में स्वर्ग लोक, इन्द्रपुरी, राज्यपुरी, प्राचीनपुरी, सुरेन्द्रपुरी, महाराष्ट्र, स्वराष्ट्र, धर्मराज्य आदि नगर आज तक प्रसिद्ध हैं। श्याम देश की प्राचीन राजधानी अयोध्या के समान ही इण्डोनीजिया की राजधानी का नाम भी अयोध्याकर्ता रखा गया था जो रूपान्तरित होकर जोगजाकर्ता तथा जकार्ता (वर्तमान राजधानी) बन गया। अठ्ठारहवीं शताब्दी में श्याम देश की राजधानी समुद्र तट पर स्थित एक नये नगर, वर नगर में स्थापित की गयी जिसका उच्चारण परिवर्तित होते-होते आजकल बैंकाक हो गया है।

रामायण का जीवन्त रूप (राजा राम का प्रतिनिधि)

श्याम देश ने रामायण को इतनी आत्मीयता से अपना लिया है कि राम शत-प्रतिशत उनके अपने हो गये हैं।

थाई देश के राजा के सिंहासन के पीछे ऊँचा सोने के पत्र पर खचित राम के सिंहासन का चित्र है जिसे मारुति (हनुमान) ने शीश पर उठाया हुआ है। मूल चित्र

सोने का है जिस पर कीमती मणियों द्वारा नक्काशी का काम किया गया है। राजा का सिंहासन आगे, उक्त सिंहासन के चरणों में स्थित है। राजा अपने आपको राम का प्रतिनिधि मानता है। वह कहता है जैसे भगवान श्रीराम के वनवास जाने पर पीछे उनकी पादुका राज्य करती थी वैसे ही मैं उनकी पादुका के स्थान पर बैठा हूँ। राम सिंहासन के उक्त सुवर्ण चित्र की प्रतिकृति संस्कृत विहार संग्रहालय में सुरक्षित है।

राजपुरोहित वामदेव

थाई देश में आज तक राजपुरोहित का उपनाम वामदेव ही प्रचलित है। वामदेव वसिष्ठ के साथ महाराज दशरथ के दूसरे पुरोहित थे। चाहे आज श्याम देश में बौद्ध धर्म ही राज धर्म है फिर भी आज तक थाई देश के राजा भूमि बलराम का राज्य-तिलक राजपुरोहित वामदेव वेदमंत्रों के साथ उसी प्रकार सम्पन्न करवाता है जिस प्रकार कभी त्रेतायुग में भगवान राम का राज्याभिषेक वसिष्ठ-वामदेव ने वेद मन्त्रोच्चार सहित करवाया होगा।

धनुर्धारी राम की ओजस्वी मूर्ति

थाई देश के राष्ट्रीय संग्रहालय के मुख्यद्वार पर धनुर्धारी भगवान श्रीराम की ऐसी अलौकिक एवं ओजस्वी मूर्ति स्थापित है जिसकी तुलना की दूसरी मूर्ति सम्भवतः विश्व में दुर्लभ ही है। 18 फुट ऊँची ओजपूरित, विश्व को चुनौती देती हुई यह कांस्य मूर्ति देखते ही मन ओज से ऊर्जस्वित हो उठता है। इस अलौकिक प्रतिमा के चित्र अभी तक थाई देश के डाकटिकटों तथा दस टिक्कल के मुद्रा-पत्रों (नोटों) पर छपते हैं। उक्त मूर्ति के रंगीन चित्र संस्कृति विहार संग्रहालय में सुसज्जित हैं।

रामकीर्ति : रामाकिएन (थाई देश की राम कथा)

थाई भाषा में रामकथा को रामकिएन कहते हैं जिसका अर्थ रामकीर्ति ही होता है। यह थाई देश के कोटि-कोटि रामभक्तों की श्रद्धा का ही चमत्कार है कि थाई लोग राम को अपने देश का तथा रामायण की घटनाओं को साक्षात् अपने देश की घटनाएँ ही मानते हैं।

थाई देश की रामलीला

थाई देश में रामलीला कई प्रकार से होती है। मुखौटा लीला जिसमें नर्तक खोन (मुखावर्त) पहन कर नृत्य करते हैं। भिन्न-भिन्न पात्रों के लिए भिन्न-भिन्न मुखौटे होते हैं। पात्रों के स्थान पर मंच निदेशक बोलता रहता है। पात्र ऊँची कुदान लेने में अभ्यस्त हैं। अभिनय के लिए दो रामकिएन लिखे गये—एक महाराजा राम प्रथम द्वारा और दूसरा महाराजा राम द्वितीय द्वारा।

छायाचित्र लीला

थाई देश में छायाचित्रों द्वारा रामलीला भी अत्यन्त रोचक एवं प्रभावोत्पादक रहती है। रामायण के भिन्न-भिन्न पात्रों के चलते-फिरते कठपुतली चित्र बड़ी सुन्दर लीला प्रस्तुत करते हैं। दो दण्डों के द्वारा छाया-चित्र को चलाया जाता है। इसे थाई देश में नाङ् कहा जाता है।

इस प्रकार थाई देश में राजा से लेकर प्रजा तक, अतीत से लेकर वर्तमान तक, राजनीति से लेकर व्यवहार नीति तक, साहित्य कला से लेकर लोक कला तक, मूर्ति-शिल्प से लेकर कठपुतली नृत्यों तक जनजीवन के रोम-रोम में रामचरित्र की पवित्र सुवास सर्वत्र, सर्वव्यापक तत्त्व के रूप में आज तक विद्यमान है। श्याम देश के हृदय में प्रतिष्ठित उस राम को हमारी शत-कोटि वन्दनाएँ समर्पित हो।

'भारतीय इतिहास के महान् तथा घटनापूर्ण-काल में अपने व्यस्त जीवन की संध्या-बेला में मैंने रामायण की जो कहानी कही है, मेरी राय में, भारतवासियों के प्रति की गयी यह मेरी सर्वोत्तम सेवा है। इस कार्य से मुझे मन की शांति और तृप्ति मिली है।'

—च. राजगोपालाचारी

× × ×

'...हालांकि मध्य तथा दक्षिण-पूर्व एशिया के अधिकांश भूभाग भारतीय सभ्यता के (उत्कर्ष) समृद्ध केन्द्र थे परन्तु वे स्थान कभी भी भारत के राजाओं द्वारा आधिपत्य नहीं थे न ही वे स्थान भारत द्वारा किसी सैनिक योजना के द्वारा भयानकता व डर का गवाह बने। (वे पूर्णतः स्वतंत्र थे, राजनीतिक तथा आर्थिक दृष्टि से) और उनके लोगों ने भारतीय तथा स्थानीय तत्त्वों के मध्य एकात्मता का प्रतिनिधित्व किया। उनका किसी भारतीय राज्य से सम्बन्ध नहीं था, भारत भूमि को पवित्र भूमि के रूप में देखते थे...'

—अरुण भट्टाचार्य

× × ×

सांस्कृतिक दृष्टि से भारत ने चीन पर विगत 20 शताब्दियों से न केवल विजय प्राप्त की है अपितु उस पर वर्चस्व भी बनाया। जबकि इस सफलता के लिए उसने एक भी सैनिक नहीं भेजा।

—हू शिह, अमरीका में पूर्व चीनी राजदूत

बालि द्वीप

सौन्दर्य

बालि द्वीप रंग-बिरंगे फूलों, धान के लहराते पौधों, अलंकृत देवपीठों और नृत्य-नाटिकाओं की झनकारों से युक्त इस धरती से अतीत किसी माया-लोक का टुकड़ा प्रतीत होता है।

हिन्दुत्व

वहां का वातावरण पूर्णतया हिन्दू है और इसलिए और भी विशिष्ट लगता है कि विश्व भर में वहीं ऐसे हिन्दू हैं, जो भारतवंशी नहीं हैं। वैदिक और तांत्रिक परम्पराओं के मिश्रण के परिणामस्वरूप वहाँ का हिन्दू धर्म कुछ अलग-सा लगता है।

तंत्र

तांत्रिक प्रभाव के कारण ही शायद वहां की जीवन पद्धति पूर्णतया अनुष्ठानमयी है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश के सम्मिलित रूप अनंत की उपासना की जाती है, अनंत की मूर्ति नहीं बनायी जाती वरन् पत्थर का एक ऊँचा-सा रिक्त सिंहासन अनंतपीठ के रूप में मन्दिरों में और प्रत्येक गृह में भी होता है।

मन्दिरों में खुदाई (देव मूर्तियां)

मन्दिरों में खुदाई के सुन्दर अलंकरण होते हैं, सबसे अधिक मूर्तियाँ देवताओं के पहरेदार एक वामनरूपी अर्धदेवता की होती है। इन मूर्तियों से बालि में चौराहे और सभी सार्वजनिक स्थान अलंकृत होते हैं तथा अभिनय स्थल भी।

पूजा-पद्धति

सुबह से संध्या तक पाँच बार उपासना और बालि (नारियल की पत्तियों से बने टोकरीनुमा दोने में कुछ फूल, पके हुए चावल, चीनी और धूप) घरों के प्रत्येक कमरे, द्वारों, चौराहों यहाँ तक कि स्कूटरों और कारों पर भी रखे जाते हैं। बालि में राम को विष्णु का अवतार मानकर रामायण पर धार्मिक दृष्टि से आस्था और श्रद्धा है।

रामायण

सुबह से लेकर रात तक बालि के गाँव-गाँव में अनेक-अनेक रूपों में रामायण के प्रस्तुतीकरण होते रहते हैं। रामायण कथा का समावेश प्राचीन अनुष्ठान परक नृत्यों जैसे केचक और लेगांग आदि में भी कर दिया गया है। इन अनुष्ठान-नृत्यों में प्रारम्भिक पूजा-अनुष्ठान उसी प्रकार प्रस्तुत होते हैं। केचक में नृत्य के पहले ओझा आकर बीच में रखे प्रकाशित दीपस्तंभ के पास पूजन करता है और एकत्र अभिनेताओं पर अभिमंत्रित जल छिड़कता है, उसके बाद नृत्य प्रारम्भ होता है। लेगांग के अंत में पूजन-प्रक्रिया में नर्तकियाँ आपस में और दर्शकों पर फूलों की पंखुड़ियां बरसाती है। इस प्रकार इन नृत्यों के आनुष्ठानिक रूप की रक्षा बराबर की जाती है।

मुक्ताकाशी रंगस्थली

बालि के इन नृत्यनाट्य प्रदर्शनों के लिए एक विशेष प्रकार की मुक्ताकाशी रंगस्थली का निर्माण किया जाता है। पृष्ठभूमि में खुदाई से अलंकृत एक विशाल भित्ति होती है, उसके बीच में एक द्वार ऊँचे कपाटों वाला, और एक बड़ा-सा प्रांगण। द्वार कुछ ऊँचाई पर होता है, जिससे अभिनय स्थल तक आने के लिए मुंडेरदार सीढ़ियां होती है, उनकी मुंडेरों पर सुन्दर मूर्तियाँ अंकित होती है। प्राचीन-काल में मन्दिरों के प्रांगण में रंगमंच की यही व्यवस्था रहती होगी, जिसका उपयोग अब सभी नाट्यरूपों के लिए किया जाता है।

केचक

केचक बड़ा ही प्रभावी नाट्यरूप है, विश्व में वह अकेला ही नाट्यरूप होगा जिसमें किसी भी प्रकार के मौखिक अथवा वाद्यसंगीत का प्रयोग नहीं होता। उसके दसियों पुरुष अभिनेता केचक-केचक की ध्वनि करते हुए मंच पर अनेक आकृतियों के नृत्य-मंडल बनाते हैं। कभी पृष्ठभूमि में ध्वनि के रूप में प्रभावी होते हैं और कभी नाटक के पात्र भी बन जाते हैं। सीताहरण के दृश्य में रावण द्वारा खींची जाती बिलखती सीता को ऊँचे हाथ उठाए केचक-केचक करते हुए नर्तक समूह में ढक लेते हैं, कभी रावण की उग्र आक्रामक गति से डरकर पीछे हट जाते हैं और डरी-सहमी सीता दिखायी देती कि सब उन्हें फिर चारों ओर से घेरकर पर्दा सा बन जाते। सीताहरण का दृश्य केचक में जितना प्रभावशाली लगता है, उतना किसी अन्य नृत्यनाट्य रूप में नहीं लगता। इस प्राचीन अनुष्ठान नृत्य में रामकथा का समावेश बड़ी ही कुशलता और प्रभाववत्ता के साथ किया गया है, जिससे वह इसमें बड़ी स्वाभाविकता से समाविष्ट हो गयी है।

वायांगवांग

बालि के वायांगवांग में प्रमुखतः रामकथा ही प्रस्तुत होती है, वायांगवांग पर आधारित रामायण बैले आधुनिक सृष्टि है। इसमें दो घंटे में, सीताहरण से लेकर रावण वध तक की पूरी कथा दिखा दी जाती है। यह बड़ा ही लोकप्रिय है और प्रतिदिन उसका प्रस्तुतीकरण कहीं-न-कहीं होता रहता है। बालि की नृत्यनाट्य की सरकारी अकादमी में परम्परागत नृत्य और संगीत पद्धतियों के साथ रामायण नृत्यनाट्य भी प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें परम्परागत प्रदर्शनों की गतियों और मुद्राओं का प्रभाव व्यंजित होता है।

रामायण पाठ

बालि में रामायण ककाविन के पाठ की भी शताब्दियों पुरानी रोचक परम्परा है। ककाविन के विशेषज्ञ पाठकर्ताओं के दो दल परम्परागत पोशाकों में मंडप में आमने-सामने बैठ जाते हैं। एक दल की ओर से रामायण ककाविन के छंदों का पाठ किया जाता है, और दूसरे दल का नायक उन छंदों की आधुनिक बालि भाषा में व्याख्या करता है। रामायण ककाविन की रचना संस्कृत के वर्णवृत्तों में की गयी है, अतः बसंततिलका, सुमधुर मालिनी और शार्दूल विक्रीड़ित छंदों की विभिन्न लयों के अनुसार पाठ बड़ा ही आकर्षक लगता है।

कलाएं

सभी प्रमुख मन्दिरों अथवा दर्शनीय स्थलों पर रामायण-कथा के अंकित पट बिकते हैं—इन पर बड़ी कलात्मकता से राम-रावण युद्ध अथवा सीता की अग्नि-परीक्षा आदि के प्रसंग अंकित रहते हैं। इसके अतिरिक्त हड्डियों पर खुदाई करके विष्णु के विभिन्न अवतारों की मूर्तियों का निर्माण अथवा काष्ठपटों में राम-सीता और अन्य देवी-देवताओं की प्रतिमाओं का अंकन बालि की प्रमुख कलाएं हैं।

महर्षि वाल्मीकि विश्व के आदिकवि होने के नाते सारे विश्व वाङ्मय के पूज्यतम पूर्व पुरुष हैं। उन्होंने जो अमर रामचरित्र दिया उससे न केवल भारत का वरन् सारे विश्व का मुख समुज्ज्वल हुआ तथा साहित्य भण्डार समृद्ध हुआ।

—प्रो. ओबराय

क्या प्राचीन इंग्लैण्ड भारत का एक उपनिवेश था? (भाग-एक)

राँची एक्सप्रेस, दिनांक 20 जून, 1971 के अंक में जो इस लेख का पूर्वांश प्रकाशित हुआ है उसमें निम्नलिखित बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

1. श्री अमरनाथ का यह मत कि सहस्राब्दियों पूर्व इंग्लैण्ड भारत का उपनिवेश था। इतिहास, पुरातत्त्व, पुराण-गाथा किसी से प्रमाणित नहीं होता।
2. भारतीय संस्कृति का प्रसार करने वाले दिग्विजयी वीर प्रशान्त महासागर के मार्ग से इण्डोनीज़िया होते हुए, कोलम्बस से लगभग 1500 वर्ष पूर्व, मैक्सिको में जा पहुँचे थे।
3. ईसा से लगभग एक सहस्राब्दि पूर्व आर्यों की एक शाखा ईरान, अजरबेजान (आर्याणांबिजम्), आर्मेनिया, रूस, जर्मनी, रोम, फ्रांस होती हुई इंग्लैण्ड जा पहुँची। इन्हें यूनानी इतिहासकारों ने कैल्ट (Celts) कहा। इटली, फ्रांस तथा स्विटजरलैण्ड की सीमाओं पर स्थित एल्पस् पर्वत के उत्तर की आर्यभाषा बोलने वाली जनता को कैल्टिक बोला जाने लगा।
4. ईसा पूर्व प्रथम शती से चौथी शती तक ब्रिटेन रोम का गुलाम रहा। पाँचवीं तथा छठी शती में जर्मनी से एंग्लो तथा सेक्शन कबीलों ने आक्रमण किया। एंग्लो जनजाति के सर्वाधिक प्रभाव के कारण छठी शती के बाद ब्रिटेन का इंग्लैण्ड नाम रूढ़ हो गया। छठी शती में ही ब्रिटिश द्वीपसमूह में ईसाइयत का भी प्रवेशारम्भ हुआ।
5. सारे यूरोप तथा अमेरिकावासी बुद्धिजीवी अपने आर्य मूलत्व पर गर्व करते हैं।
6. ईसाइयत से पूर्व आर्यावर्त्त से आयरलैण्ड तक मित्र (सूर्य) पूजा प्रचलित थी। अर्नेस्ट रेनन (Ernest Renan) ने कहा है, 'यदि ईसाइयत का विकास इसके इतिहास के प्रारम्भिक काल में ही रुक जाता तो आज सारा विश्व मित्रपूजक होता।'

ईसाइयत पर मित्र पूजा का प्रभाव

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित तथा H. A. Davies द्वारा लिखित संसार के इतिहास में स्वीकार किया गया है, 'जब ईसाइयत रोमन साम्राज्य का राजधर्म बन गया तो उस में बिना समझौते के सन्देह की चिन्ता किए, यथासम्भव बहुत से पुराने सूर्यपूजक (Pagan) विश्वासों को आत्मसात् कर लिया गया। इस प्रकार क्रिसमस के समय उपहार देने की प्रथा एवं प्रेम-सद्भावना के सामान्य भाव, ये सब किसी ईसाई प्रथा से नहीं उपजे, वरन् सेटरनेलिया (Saturnalia) के महान् सूर्यपूजक शीतकालीन महोत्सव से ही अपना लिए गये हैं।' ब्रिटेन के विश्वकोश के अनुसार शनैश्चर देवता का यह महान् उत्सव सेटरनेलिया ईसा पूर्व सन् 45 में महान् रोमन सम्राट् जुलियस सीजर द्वारा संवत्सर में सुधार के बाद 17 दिसम्बर से 19 दिसम्बर तक सारे रोमन साम्राज्य में अपार हर्ष एवम् स्वच्छंदता के साथ मनाया जाता था। Davies के मतानुसार ईसाई-पादरियों ने चौथी शती में रोमन साम्राज्य में सूर्यपूजकों के शनि महोत्सव को ही क्रिसमस के रूप में स्वीकार कर लिया। शनि सौरमण्डल का सबसे बड़े ग्रह-पथ वाला ग्रह है। शनि ग्रह सूर्य से जन्म लेने के कारण सूर्य की संतति तुल्य है। शनि ग्रह सूर्य के चारों ओर अपनी परिक्रमा धरती की अपेक्षा 29.46 गुणा अधिक समय में पूरी करता है। शनैः-शनैः चलने के कारण उसे शनैश्चर कहा गया । उसी शनैश्चर शब्द से लैटिन भाषा में Saturn शब्द बना। शनि को रविनन्दन (सूर्य का पुत्र) माना जाता है।

मित्र-पूजा से ईसाइयत ने निम्नलिखित बातें भी उधार ली।

मित्र-पूजा	**ईसाई-मत**
(क) मित्र, मनुष्य और ईश्वर के बीच मध्यस्थ और ईश्वर का पुत्र है।	ईसा, मनुष्य और ईश्वर के बीच मध्यस्थ और ईश्वर का पुत्र है।
(ख) वसंत संपात में सूर्य की विजय की शोभायात्रा	ईस्टर (वसंत-संपात) पर ईसा के पुनर्जीवित होने की शोभायात्रा
(ग) सांस्कारिक भोज की प्रथा	ईसाई धर्म में संस्कार देने पर भोज की प्रथा
(घ) सूर्य का एक पवित्र वृक्ष पर अस्त होना	ईसा का पवित्र क्रूस पर बलिदान होना
(ङ) सूर्य का अस्ताचल गुफा में छिप जाना	ईसा के मृत शव का एक गुफा में गाड़ा जाना
(च) सूर्य का पुनरोदय	ईसा का कब्र से पुनरुत्थान

(छ) वर्ष भर के लिए नियत उत्सव सूची	वर्ष भर के लिए नियत उत्सव सूची
(ज) वसंत संपात पर बलिदानोत्सव एवं हर्षातिरेक	वसंत-संपात पर बलिदानोत्सव एवं हर्षातिरेक
(झ) आदित्यवार (एतवार) पूजा के लिए पवित्र	आदित्यवार (एतवार) पूजा के लिए पवित्र माना गया है।

सूर्य (मित्र) ज्योति का देवता है। उसे वेदों में हिरण्यगर्भ, सविता, हेममालि, स्वर्णभाज आदि कहा गया है। सुवर्ण शब्द, स का ह हो जाने के कारण प्राचीन फारसी (अवेस्ता) में ह्वेर्ण हो गया है जिसका अर्थ सोना, सूर्य का प्रकाश मण्डल तथा राजा का तेज माना गया। ईरान के प्राचीन राजा सूर्योपासक होने के कारण यह मानते थे कि उन पर सूर्य का सुनहला तेजमण्डल अवतरित हुआ है अतः उसे राजाओं के मुख के चारों ओर तेजमण्डल के रूप में दर्शाया जाता था। ईरान के वर्तमान बादशाह भी आर्यमिहिर (आर्यों का सूर्य) की उपाधि धारण करते हैं। सूर्य का यही तेजमण्डल सूर्यपूजा के प्रभाव से ईसा के मुखमण्डल के चारों ओर दिखाया जाता है जिसे Helio (सूर्य) से व्युत्पन्न Halo (प्रकाश मण्डल) कहा जाता है।

सूर्यपूजा का मकर संक्रांति पर्व ही क्रिसमस बना

रोमन साम्राज्य में जब सूर्यपूजा राजधर्म था तब मित्रपूजकों का सब से बड़ा पर्व मकर संक्रांति था। जिस दिन सबसे ठंडे एवं सबसे छोटे दिन के पश्चात् दिन पुनः बढ़ने लगते हैं तथा उष्णता एवं प्रकाश की वृद्धि होने लगती है। रोमन साम्राज्य के (इंग्लैण्ड सहित) मित्रपूजक उस दिन सूर्य की उत्तरायण यात्रा के शुभारम्भ पर सूर्य देवता के नये जन्म जैसा उत्सव मनाते थे। सूर्य की शिशु प्रतिमा का पूजन कर पकवान बांटते थे। रोम में ईसाइयत के प्रवेश के बाद ईसाई पादरियों ने मित्रपूजकों के मकर संक्रांति (Winter Solstice) पर्व को ही क्रिसमस के रूप में मान लिया। Chambers Encyclopaedia में स्वीकार किया गया है कि ईसा की वास्तविक जन्मतिथि (तथा मास) के विषय में कोई प्रामाणिक परम्परा नहीं है तथा जन्म के वास्तविक वर्ष के विषय में भी सन्देह है। संसार में सबसे पहला क्रिसमस का उत्सव रोम में 336 ई. में मनाया गया किन्तु संत जेरोम (Jerome) ने 5वीं शती तक जो लेख लिखे उनसे ज्ञात होता है कि ईसा की जन्मभूमि यरुशलम में 5वीं शती के प्रारम्भ तक ईसा की जन्मतिथि (क्रिसमस) को कोई जानता ही नहीं था। Edwyn Bevan ने अपने ग्रंथ (Christianity in the light of modern knowledge 1929 A.D., P. 103) में इस तथ्य की पुष्टि की है, 'इस बात में कोई सन्देह नहीं कि ईसाई चर्च ने 25 दिसम्बर के दिन क्रिसमस मनाने की प्रथा मिथ्राइज्म (मित्र पूजा) से उधार ली जो कि सूर्य का जन्म दिवस माना जाता था।'

इस तथ्य को डॉ. राधाकृष्णन ने अपने ग्रंथ 'रिकवरी ऑफ फेथ' के पृ. 14 पर भी उद्धृत किया है। डॉ. एम. एन. ढल्ला ने History of Philosophy, Eastern & Western में अपने लेख 'Mithraism' में इसी तथ्य की पुष्टि की है कि सूर्योपासकों द्वारा 25 दिसम्बर के दिन मनाये जाने वाले शीत अयनान्त को ही ईसाइयों ने क्रिसमस के रूप में अपना लिया।

25 दिसम्बर कृष्णायन नहीं, उत्तरायण-पर्व

श्री अमरनाथ ने अपने जिस आलोच्य निबंध में प्राचीन इंग्लैण्ड को भारत का एक उपनिवेश सिद्ध करने का प्रयास किया है उसमें यह भी प्रमाण एवं तर्क विहीन मत प्रस्तुत किया है कि 25 दिसम्बर (क्रिसमस) 'वस्तुतः प्राचीन हिन्दू कृष्णायन समारोह है।' उनके मत में इसी दिन भगवान् कृष्ण ने महाभारत युद्ध के प्रारम्भ में यान पर सवार होकर अपना प्रसिद्ध गीता-संदेश दिया था।' यह बड़ी विचित्र व्युत्पत्ति एवम् निराली कल्पना है। भगवान् कृष्ण के गीतोपदेश की तिथि गीता जयन्ती है—मार्गशीर्ष शुक्ला एकादशी, जो चान्द्र तिथि के परिवर्तन के कारण कभी दिसम्बर के प्रथम सप्ताह में पड़ती है, कभी द्वितीय एवं तृतीय में, कभी चतुर्थ सप्ताह में तथा कभी जनवरी में भी पड़ सकती है। वर्ष 1971 में गीता जयंती 28 नवम्बर को पड़ती है। इसके विपरीत 25 दिसम्बर एक सौर पर्व मकर संक्रांति का दिन था। छः मास के लिए सूर्य भू-मध्य रेखा से नीचे, दक्षिणी गोलार्द्ध की ओर चला जाता है। इसे दक्षिणायन कहते हैं। मकर-संक्रांति के पश्चात् सूर्य की उत्तरायण यात्रा प्रारम्भ होती है। आज भी शीत अयनान्त की ऋतु परिवर्तन की तिथि 23 दिसम्बर के लगभग पड़ती है। उसके बाद दिन लम्बे एवम् उष्णताप्रधान होने प्रारम्भ होते हैं। किन्तु भारत में मकर संक्रांति का पर्व 13 अथवा 14 जनवरी को मनाया जा रहा है। इसका कारण यह है कि अयनों के चलन के कारण लगभग 100 वर्ष में ऋतु-परिवर्तन की भौगोलिक तिथि तथा पर्व की तिथि में एक दिन का अन्तर पड़ जाता है। उदाहरणार्थ, 108 वर्ष पहले 12 जनवरी 1863 के दिन विवेकानन्द का जन्म हुआ। उस दिन मकर संक्रांति पर्व था। 100 वर्ष बाद मकर संक्रांति 13 जनवरी को पड़ने लगा तथा अब 14 जनवरी की ओर बढ़ रहा है। इसी प्रकार (300 वर्ष पूर्व) गुरु गोविन्दसिंह ने वैशाखी के पर्व (मेष संक्रांति) पर जब खालसा पंथ की स्थापना की तब अंग्रेजी तिथि 10 अप्रैल थी। आजकल वही वैशाखी पर्व 13 अप्रैल (कभी-कभी 14 अप्रैल) को पड़ रहा है।

उक्त गणना के अनुसार आज से 19 शती पूर्व मकर संक्रांति पर्व 25 दिसम्बर को पड़ता था तथा पिछले उन्नीस सौ वर्षों में ऋतु-परिवर्तन की तिथि वही 23-24 दिसम्बर रहते हुए पर्व की तिथि 19 दिन आगे बढ़कर आजकल 13-14 जनवरी को पड़ने लगी है। इस उत्तरायण के पर्व को कृष्णायन या कृष्णयान कहना यथोचित नहीं है।

ऐक्समस (X-mas) यानी क्रिसमस

श्री अमरनाथ ने अंग्रेजी के 'ऐक्समस' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है, 'ऐक्समस का वास्तविक अर्थ दसम मास है। रोमन में दस का अंक (X) के रूप में लिखा जाता है और संस्कृत में मास शब्द का अर्थ महीना है।' यह भी श्री अमरनाथ की निराधार खींचतान है। ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार क्रिसमस का अर्थ है—क्रॉइस्ट का उत्सव (The Mass of Christ)। इसी क्रिसमस शब्द को संक्षिप्त लिखने के लिए यूनानी लोगों ने ऐक्समस शब्द प्रयोग किया। क्रॉस (क्रूस) जिस पर ईसा को लटकाया गया था उसका प्रतीक + धीरे-धीरे X लिखा जाने लगा तथा क्रॉइस्ट का प्रतीक बन गया। इसलिए ऐक्समस शब्द को दिसम्बर का पर्याय मानना तथा लैटिन शब्द Mass (उत्सव भोज) को संस्कृत मास (महीना) का पर्याय मानना अंग्रेजी, लैटिन, ग्रीक, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या सभी के साथ अन्याय है।

कृष्ण, बुद्ध तथा क्रॉइस्ट

कृष्ण, बुद्ध तथा क्रॉइस्ट के चरित्रों में आश्चर्यजनक समानता को देखकर कई शोधकर्ताओं ने क्रॉइस्ट नाम को कृष्ण से ही व्युत्पन्न माना है। लोकमान्य तिलक, डॉ. राधाकृष्णन, स्वामी विवेकानन्द आदि ने यह सिद्ध किया है कि ईसा के जन्म से पूर्व फिलस्तीन के क्षेत्र में तीन प्राच्य दर्शन धाराओं का प्रचार था।

(क) ऐसीन लोग संन्यासी थे।

(ख) सेदूस लोग जैन साधु थे।

(ग) थेरापुट (स्थविर पुत्र) बौद्ध भिक्षु थे।

ईसा का वास्तविक नाम जीसस था। क्राइस्ट उनको उपाधि मिली थी। ईसा को जल-दीक्षा (बपतिस्मा) देने वाले जॉन John the Baptist स्वयं ऐसीन संप्रदाय के थे। उन्होंने जनता को कह रखा था कि क्रिस्टोस (अवतार, संभवतः कृष्ण) आने वाला है। जीसम के मिलने पर उन्होंने कहा, यही क्रिस्टोस (कृष्ण) है। ईसा के उपदेशों में गीता एवं बौद्ध सिद्धांतों का स्पष्ट सम्मिश्रण है।

'भूल में मत रहो, ये आयरलैंड वास्तव में आर्यलैंड ही है। आर्यावर्त्त से आर्य जाति के लोग ही सारे यूरोप में फैलते हुए आयरलैंड तक पहुँचे थे।' एवं आर्यावर्त्त एवं आयरलैंड दोनों को अंग्रेजों की दासता से मुक्त होना है।

—**पी.डी. वलेरा,** राष्ट्रपति आयरलैंड

क्या प्राचीन इंग्लैण्ड भारत का एक उपनिवेश था? (भाग-दो)

श्री अमरनाथ ने अपने विवादास्पद लेख में इंग्लैण्ड की प्राचीन बस्तियों के नामों के विषय में एक अन्य विलक्षण तर्क दिया है। उनका कथन है कि इंग्लैण्ड में कुछ बस्तियों के नाम 'बरी' के साथ समाप्त होते हैं जैसे कि वाटरबरी, मेड्सबरी और ऐन्सबरी और 'बरी' शब्द संस्कृत का पुरी प्रत्यय ही है जैसे भारत में सुदामापुरी, मुम्बापुरी और जगन्नाथपुरी। यह भाषा विज्ञान तथा सभ्यता के इतिहास द्वारा पुष्ट नहीं होता।

'बरी' बनाम पुरी

अंग्रेजी में 'बरी' का अक्षर विन्यास Bury है जबकि पुरी शब्द का रोमन लिपि में लेखन Puri होता है। अंग्रेजी अथवा संस्कृत के किसी भी कोश में बरी शब्द की व्युत्पत्ति पुरी शब्द से नहीं मानी गई। आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार बरी शब्द के दो अर्थ हैं :

(क) गाड़ना, कब्र में रखना, ढकना, सुरक्षित करना।

(ख) चारों ओर से सुरक्षित अथवा घेरा हुआ स्थान, शवाधि (कब्र) अथवा कब्र वाला गांव।

पुरानी जर्मन भाषा में Begraben (गाड़ना) से पश्चिम जर्मन में Burgzan शब्द बने, उससे पुरानी अंग्रेजी Byrzan, पुरानी ट्यूटनिक में Burg शब्द बने। इससे आधुनिक डेनिश में Begrave, स्वीडिश में Begrava तथा अंग्रेजी में Burie, Bury धातु बने जिनका अर्थ गाड़ना, सुरक्षित करना है। दूसरी ओर इसी शब्द के Burh, Burgh, Borough, Bury, Berry शब्द बने जिनका रूढ़ अर्थ घिरा हुआ स्थान (कब्र के समान), गांव, पुर, नगर, न्यायालय आदि बन गया। कैण्टरबरी Canterbury नगर का नामकरण इसलिए प्रसिद्ध हुआ कि वहाँ पर 29 दिसम्बर 1170 ई. को सेंट टामस आफ कैण्टर की हत्या कर दी गयी थी तथा वहाँ पर उसकी शवाधि (कब्र) अभी तक बनी हुई है। इस प्रकार बरी शब्द

का संस्कृत के पुरी शब्द से कोई सीधा सम्बन्ध प्रमाणित नहीं होता। संस्कृत में पुर अथवा पुरी देवता के वास-स्थान के अर्थ में प्रयुक्त होता है जबकि अंग्रेजी का Bury शब्द शवाधि (कब्र) या मृतक-स्थान के शब्द से प्रचलित हो गया।

थाई देश में 'पुरी'

थाईदेश में रजाबुरी और चोलबुरी नामक नगरों के नाम से समानता दिखाते हुए श्री अमरनाथ ने यह खींचतान की है कि जिस प्रकार थाई भाषा में पुरी शब्द आजकल बरी उच्चरित होता है उसी प्रकार इंग्लैण्ड में पुरी शब्द से बरी शब्द बन गया होगा। यह तर्क भी थोथा है। संसार के भिन्न-भिन्न देशों की यात्राओं में लेखक ने पाया कि थाईदेश स्पष्टतः भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित है तथा वहाँ लवपुरी को लवबुरी, इन्द्रपुरी को इन्द्रबुरी, राजपुरी को राजबुरी उच्चारण किया जाता है। इसका अंग्रेजी के बरी, बैरी, बर्ग इत्यादि से कोई संबंध नहीं। मात्र शब्द साम्य से थाईभाषा के बुरी (पुरी) शब्द को अंग्रेजी Bury शब्द से जोड़ देना भी वैसा ही हास्यास्पद होगा जैसा लंका के रावण को लंकाशायर (इंग्लैण्ड) में भी खोजना।

महात्मा गाँधी ने कहा है, 'अंग्रेज हमें यह सिखाने की कोशिश करते रहे हैं कि हम कभी एक राष्ट्र नहीं रहे और अभी शताब्दियाँ लगेंगी हमें एक राष्ट्र बनने में। यह प्रचार झूठा है। इसका कोई आधार नहीं है। हम विदेशियों के भारत आने से पहले से एक राष्ट्र रहे हैं। हमारे मूलभूत विचार पूरे राष्ट्र में एक ही थे। हमारी जीवन शैली एक ही थी। आपसी मतभेद तो हर राष्ट्र में होते हैं, परन्तु परस्पर एक-दूसरे की भाषा, विचार, रीति-रिवाज और बुद्धि (जानने-समझने की), हमारी पूर्वजों की प्रवृत्ति एक थी। इसलिये हरिद्वार, सेतुबन्ध रामेश्वर, जगन्नाथपुरी आदि चारों धामों एवं विविध तीर्थों की प्रतिष्ठा उन्होंने की। हिन्दुत्व ही हमारी राष्ट्रीयता का आधार था।

'यह हमारी सभ्यता विश्व में बेजोड़ है। हिन्दुस्तान आज भी अपनी नींव पर अटल है। अटल रहना ही भारत का गौरव है। वे इसे ही हमारे दोष-दुर्गुण की तरह पेश करते हैं। उनकी सब सलाहें भारत चुपचाप सुनता रहता है और आत्मस्थ, ध्यानस्थ रहता है। यही उसका सौन्दर्य है।

सूर्योदय से एवं मध्यरात्रि से दिवसारंभ की प्रथाएँ

श्री अमरनाथ ने अपने लेख में प्राचीन इंग्लैण्ड पर भारतीय शासन होने के प्रमाण में सबसे विस्मयजनक तर्क यह दिया है, 'अंग्रेजों द्वारा मध्यरात्रि के अलौकिक क्षण में अपने तिथि परिवर्तन की यह विस्मयजनक प्रथा भी उसके अतीत में भारत का ही एक उपनिवेश होने का प्रमाण है।...क्योंकि भारतीय तथा ग्रीनविच रेखांश समय के मध्य साढ़े पाँच घण्टे का अन्तर है अतः जब भारत में सूर्योदय होता है तो इंग्लैण्ड में रात्रि के 12 बजे होते हैं।' वे आगे लिखते हैं कि भारत से संदेश पा कर इंग्लैण्ड के निवासियों को मध्यरात्रि में अपने बिस्तरों से उठ कर तिथि बदलनी पड़ती थी।

वास्तव में दिवसारंभ की तीन प्रथाएँ संसार में प्रचलित हैं—

(क) भारत में जन्म-पत्रादि कार्यों के लिए सूर्योदय से दिवसारंभ माना जाता है। विश्व की उत्पत्ति (सृष्टि संवत् के अनुसार) सूर्योदय से मानी गई है। सूर्य दर्शन का नाम ही दिन है।

(ख) मुसलमान लोग सायंकाल से वार प्रवेश मानते हैं (चान्द्र वर्ष का प्रभाव)।

(ग) भारत में ही व्याकरण शास्त्र में अद्यतनकाल का प्रयोग मध्यरात्रि से दूसरी मध्यरात्रि तक के लिए होता है। सिद्धान्त शिरोमणि (लेखक भास्कर द्वितीय, जन्म 1114 ई.) तथा केशवार्क के अनुसार देवताओं का अहोरात्र भी मध्यरात्रि से बदलता है, क्योंकि उत्तरायण देवताओं का दिन तथा दक्षिणायन रात्रि है। इसी प्रकार पितृ-अहोरात्र भी मध्यरात्रि से बदलता है। सूर्योदय से पूर्व होने वाले धार्मिक कृत्यों में भी अर्धरात्रि से वार-प्रवेश माना जाता है। निम्बार्क सम्प्रदाय भी उसी एकादशी को शुद्ध मानता है जो अर्धरात्रि के समय अवश्य हो। आर्यभट्ट (चौथी शती) ने भी सूर्योदय तथा मध्य रात्रि दोनों से वार-प्रवेश माना है।

अंग्रेजों के प्रभुत्वकाल में ग्रीनविच (इंग्लैण्ड) के औसत समय को विश्वव्यापी समय (Universal Time) मानकर सभी घड़ियों के प्रथम घंटे का रात्रि 12 बजे के बाद से गिना जाने लगा। वास्तव में दिन का प्रथम घंटा 1 a.m. (एक बजे) ही होना चाहिए, 5 बजे नहीं। घण्टों (होरा=Hour की गिनती एक से प्रारंभ होती है। 5 या 5 1/2 से नहीं। यदि भारत का प्रभाव पुनः विश्वव्यापी बन सका तो काशी या

उज्जैन के समय को विश्वव्यापी समय घोषित करके दुनियाभर की घड़ियों में भारत के वार-प्रवेश के घण्टे को 1 बजे (1 a.m.) घोषित किया जा सकता है।

पाश्चात्य कालगणना पर भारतीय प्रभाव

श्री अमरनाथ ने अपने लेख में इंग्लैंड पर भारतीय शासन होने के प्रमाण में यह तर्क दिया है कि 1752 ई. तक इंग्लैण्ड का नववर्ष 25 मार्च से शुरू हुआ करता था। वे अपने मत के प्रमाण में आगे लिखते हैं कि वर्ष के ठीक उसी समय पर ही भारतीय नववर्ष का शुभारम्भ भी होता है। चाहे इंग्लैंड में 1752 ई. तक तथा रूस के ग्रीकचर्च तथा बलकान राज्यों में 1923 तक मार्च से नव वर्षारंभ माना जाता रहा किन्तु इससे यूरोप के इन सभी प्रदेशों का प्राचीनकाल में भारत का उपनिवेश होना सिद्ध नहीं हो सकता।

आकाशवाणी रांची से प्रसारित अपनी वार्ता तथा अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन में प्रस्तुत अपने शोध-प्रबन्ध में मैंने 'आधुनिक कालगणना में भारत की देन' की विस्तृत व्याख्या की है। भारत में वर्षारंभ को संवत्सर कहते हैं जिसका अर्थ है सम्+वत्सर अर्थात् सारे भू-मंडल में दिन-रात समान होने का दिवस। यह वसंत सम्पात (23 मार्च) पर ही सम्भव है। रोम के सम्राट् जुलियस सीज़र (45 ई. पूर्व) तथा सम्राट् ऑगस्टस (27 ई. पूर्व) के समय, जो भारत के सम्राट् विक्रमादित्य के समकालीन थे, सारे रोमन साम्राज्य में भारतीय संवत्सर ही प्रचलित था जो वसन्त संपात (23 मार्च) से प्रारम्भ होता है। इसी कारण दिसम्बर (दश+अम्बर) दसवां मास, नवम्बर नवां मास, अक्टूबर (अष्ट=अक्ट+अम्बर) सितम्बर (सप्तम्बर) आदि क्रमशः आठवाँ तथा सातवाँ मास माने जाते थे। जुलियस सीजर का जन्म पाँचवें मास (Quintilis) में होने के कारण उसका नाम जुलाई प्रसिद्ध कर दिया गया। इसी प्रकार आगस्टस का जन्म छठे मास (Sextilius) में होने के कारण उसका नाम अगस्त रख दिया गया। सन् (1582 ई.) में रोम के पोप ग्रेगरी ने रोम के प्राचीन कैलेण्डर को बदल कर वर्ष का आरंभ 23 मार्च के स्थान पर 1 जनवरी से घोषित करवा दिया। किन्तु इंग्लैंड में 1752 ई. तक तथा रूस में 1923 तक पुराना संवत्सर (23 मार्च, वसन्त संपात से आरंभ होने वाला संवत्) चलता रहा। इससे भारतीय सभ्यता का प्रभाव प्रमाणित होता है न कि भारत का यूरोप पर शासन।

अंग्रेजी भाषा पर संस्कृत की छाप

श्री अमरनाथ ने संस्कृत के हन्ता, हन्तारौ, हन्ताराः (हत्या करने वाला) से अंग्रेजी के हण्टर (Hunter) शब्द की व्युत्पत्ति बता कर एक अन्य रोचक कल्पना की सृष्टि कर ली है, 'संस्कृत भाषी हिन्दू नरेश किसी समय इंग्लैण्ड के प्रशासन का संचालन करते थे।'

यह एक विश्वविख्यात भाषा वैज्ञानिक तथ्य है कि संस्कृत अंग्रेजी सहित यूरोप की सभी भाषाओं की आदि-जननी है। इससे श्री अमरनाथ सारे यूरोप पर भारत के प्रशासन की बात कहना क्यों भूल गये। यूरोपीय परिवार की सभी आर्य भाषाएं आर्य संस्कृति की छाप लिए हुए हैं, किन्तु अनिवार्यतः भारतीय शासन का इतिहास लिए हुए नहीं। यदि आज हिन्दी में इटली का कमरा (Camera) शब्द हर घर में प्रचलित है तो इसका यह अर्थ नहीं कि प्राचीन भारत पर इटली का प्रशासन था। संस्कृत के विद् (जानना) शब्द से लैटिन में Uidere, यूनानी में Oida, गाथिक में वितम्, अंग्रेजी में विट, फ्रेंच में Esprit, जर्मनी में Witz, रूमानियन में ज्ञात (Znat) चेक में वेद। इसी प्रकार गौ माता के लिए यूरोप की भाषाओं में शब्द इस प्रकार हैं।

प्राचीन अंग्रेजी = Cu,
आधुनिक अंग्रेजी = Cow Mother
जर्मन = Kui Mutter
रूसी = Govya Mat
चेक = Krava Matka
फारसी = गाव मादर
लैटिन = Vacca वशा Mater

(वेदों में एक वशा गौ का वर्णन है जो यजमान की जब इच्छा हो तभी दूध देती है, उसी प्रकार जैसे मानव माता बच्चे की जब इच्छा होती है तभी स्तनपान करा देती है)।

संस्कृत = जंगल मध्ये, गावाः घास चर्वन्ति, नारंग तरवः प्रफुल्लन्ति, पिक-काकाः कूजन्ति, नव कुट्यान्तरे त्रयः युवानः दिव्याः सन्ताः तिष्ठन्ति प्रार्थयन्ति च।

हिन्दी अर्थ = जंगल के मध्य में, गौएं घास चरती हैं, नारंग वृक्ष फूलते हैं, मोर कूजन करते हैं तथा नई कुटी में तीन दिव्य युवक सन्त रहते हैं और प्रार्थना करते हैं।

अंग्रेजी = In the midst of a jungle, cows are chewing grass, orange trees are flowering, pea-cocks are cooing and three young divine saints are staying and praying in a new cottage.

उपर्युक्त अंग्रेजी वाक्य का प्रत्येक शब्द सीधे ही ऊपर दिए गये संस्कृत के वाक्य के शब्दों से व्युत्पन्न हुआ है।

मध्य	=	Midst	घास	=	Grass
जंगल	=	Jungle	चर्व	=	Chew
गौ	=	Cow	नारंग	=	Orange

तरु	=	Tree	त्रयः	=	Three
(प्र)फुल्ल	=	Flower	युवानः	=	Young
पिक-काक	=	Peacock	दिव्याः	=	Divine
कूजन्ति	=	Cooing	सन्ताः	=	Saints
नव	=	New	स्था (तिसु)	=	Stay
कुटी	=	Cottage	प्रार्थः	=	Pray

भाषा विचारों का वाहन है। भारतीय भाषा भण्डार से आपूरित यूरोपीय भाषाएं भारतीय संस्कृति की सुवास से निश्चय ही सुवासित हैं। संस्कृति के पुष्पदान में उपनिवेशवाद की राजनीति को खोजना संस्कृति का भी अपमान है।

भारतीय संस्कृति के प्रभाव का साक्ष्य

इंग्लैण्ड पर भारतीय संस्कृति के प्रभाव के परिचायक निम्नलिखित बिंदुओं पर भी विस्तार से प्रकाश डाला जा सकता है। यहाँ मात्र संकेत किये जाते हैं।

(क) इंग्लैण्ड के प्राचीन धर्म ड्रुइडिज्म (Druidism) में आत्मा की अमरता का भारतीय सिद्धान्त मान्य था।

(ख) इंग्लैण्ड में प्राचीन एवं आधुनिक बौद्ध-धर्म प्रभाव।

(ग) आयरलैण्ड में प्रचलित आर्य-धर्म प्रथाएं (गौ, यज्ञ एवं वृक्ष-पूजा)

(घ) इंग्लैण्ड में भारतवंशी घुमन्तू जातियाँ तथा उनकी रोमणी भाषा।

(ङ) इंग्लैण्ड में ऋग्वेद का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद।

(च) चार्ल्स विल्किन्ज द्वारा गीता का प्रथम अंग्रेजी अनुवाद।

(छ) इंग्लैण्ड के प्राच्य विद्याशास्त्री, संस्कृतज्ञ तथा भारत-भक्त।

(ज) इंग्लैण्ड में भारतीय कला एवं साहित्य का अमूल्य भण्डार।

(झ) कुछ अंग्रेजी विद्वानों का भारतीयकरण (कार्लायल, एनीबीसेंट, एंड्रूज, मार्गरेट नोबेल (निवेदिता), प्रो. निक्सन, एडविन आर्नाल्ड, पाल ब्रटन।

(ञ) इंग्लैण्ड पर भारतीय विभूतियों की छाप (राममोहन राय, तिलक, सावरकर, मालवीय, गाँधी, हरदयाल, विवेकानंद, टैगोर, रामतीर्थ, राधाकृष्णन)।

(ट) इंग्लैण्ड में हरे कृष्ण आन्दोलन, श्रीकृष्ण मंदिर, रथयात्रा महोत्सव, रामकृष्ण मिशन, भारत सेवाश्रम संघ, विश्व हिन्दू परिषद् आदि का कार्य।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति ने अपनी दिव्य दिग्विजय मानवों के हृदयों पर की, उन्हें अपना ज्ञान एवं माधुर्य बांट कर न कि किसी अन्य देश को अपना राजनीतिक दास बना कर।

पश्चिम का धर्मगुरु, प्राच्य का पुत्र तथा भारत का शिष्य : महात्मा ईसा

विश्व के धर्मों के आंकड़े संकलित करने वाले सुविज्ञ लेखक प्रायः एक ऐतिहासिक भूल के शिकार होते हैं। दुनिया के लगभग अढ़ाई अरब लोगों में से लगभग एक अरब से कुछ कम लोगों को ईसाई, आधे अरब से कुछ अधिक लोगों को बौद्ध, आधे अरब से कुछ कम लोगों को मुसलमान तथा केवल 33 करोड़ लोगों को हिन्दू बताकर वे हिन्दू धर्म के गौरव को बहुत कम कर देते हैं। वस्तुतः, भगवान बुद्ध स्वयं हिन्दू थे। हिन्दू धर्म की सर्वोच्च ज्ञानराशि वेदांत से प्रभावित थे तथा उनका चलाया हुआ बौद्धमत इस विशाल हिन्दू धर्म की एक शाखा है। परन्तु अधिकांश लोगों को संभवतः यह ज्ञात नहीं कि विश्व के शत कोटि ईसाई धर्मावलम्बियों के धर्म-संस्थापक महात्मा ईसा, भगवान बुद्ध तथा वेदांत दोनों से प्रभावित, भारतीयता के भक्त तथा स्वयं भारत के दीक्षित शिष्य रहे हैं।

ईसा हिन्दुओं का शिष्य था

भारत भारती के अमर गायक राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने सन् 1912 में हिन्दी संसार में भूकंप मचा देने वाली निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखीं—

योरप भी जो बन रहा है आजकल मार्मिकमना,
यह तो कहे उसके खुदा का पुत्र कब धार्मिक बना?
था हिन्दुओं का शिष्य ईसा यह पता भी है चला,
ईसाइयों का धर्म भी है बौद्ध सांचे में ढला।

तिलक की घोषणा

लोकमान्य तिलक ने सन् 1915 में अपने 'गीता रहस्य' में भी इस महान् रहस्य का संकेत किया।

'ईसा अपने बारहवें वर्ष से लेकर क्या करता रहा अथवा कहाँ था इस विषय में बाइबिल में कुछ भी लिखा नहीं मिलता। यह समय उसने ज्ञानोपार्जन अथवा धर्म चिंतन और प्रवास में निकाला, ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है। इस अवधि

में उसका बौद्ध भिक्षुओं से संपर्क नहीं हुआ होगा, ऐसा कौन कह सकता है? क्योंकि उस समय बौद्ध भिक्षु यूनान तक पहुँच चुके थे। नेपाल के एक बौद्धमठ के ग्रंथ-संग्रहालय में एक पुस्तक है जिसमें स्पष्ट लिखा है कि ईसा भारत में आया था। इस ग्रंथ को एक रशियन प्रवासी निकल्सन नोटोविश ने देखा था। उसने सन् 1894 में उस ग्रंथ को प्रकाशित किया था।

वासवानी जी का साक्ष्य

साधु स्थाणुदेव लीलाराम वासवानी जी लिखते हैं कि 'हमारे बहुत से भारतवासी ईसा को अपरिचित कहते हैं, परन्तु उसे एक अपरिचित न समझो, वह प्राच्य का ही एक योगी था, अपितु उससे भी कहीं अधिक था। निकोल्स रोरिक को एक बौद्धमठ में पड़ी हुई एक प्रतिलिपि मिली है जिसमें लिखा है कि ईसा भारत में आया था, वह कुछ समय तक तिब्बत में ठहरा और वहाँ पर योग-सम्बन्धी हिन्दू तथा बौद्ध सिद्धांतों का अध्ययन करता रहा। 29-30 वर्ष की अवस्था में वह पैलेस्टाईन लौटा। वह अपने देशवासियों के लिए भारत के विवेक का संदेश लेकर गया। उसने ईश्वर को प्रेम की प्रतिमा बतलाया। उसने उनको अंतर्ज्ञान के विषय में बताया और 'तत्त्वमसि' का संदेश दिया। परन्तु उन्होंने उसके सच्चे स्वरूप को न पहचान कर उस पर पत्थर फेंके और अंत में फांसी पर चढ़ा दिया। योगी ईसा ने उसी प्राचीन सत्य का संदेश दिया, 'ईश्वर ही प्रेम है।'

स्वामी विवेकानंद की उक्ति

भारत के गौरव स्वामी विवेकानंदजी लिखते हैं—

हम जीवन का दिव्य संदेश देने वाले इस महापुरुष के जीवन का मूलमंत्र यही पाते हैं कि 'यह जीवन कुछ नहीं है, इससे भी उच्च कुछ है और उस इन्द्रियातीत तत्त्व को अपने जीवन में परिणत कर उसने यह परिचय दिया है कि वह प्राची का सच्चा पुत्र है।'

नरदेव शास्त्री की युक्ति

गुरुकुल ज्वालापुर के प्रिंसिपल श्री नरदेव शास्त्री ने मार्च 1954 में प्रकाशित गुलदस्ता नामक पत्रिका में विभिन्न मतों के आधार पर यह प्रतिपादन किया है कि ईसा दो बार भारत आया था।

ईसा की प्रथम भारत यात्रा, नोटोविश की खोज

विश्व के इतिहासकारों की प्रज्ञा को प्रथम चुनौती सन् 1865 में मिली, जब प्रसिद्ध रशियन यात्री निकल्सन नोटोविश ने तिब्बत में प्राप्त हुए 'ईसा के जीवन-चरित' का फ्रैंच में अनुवाद प्रकाशित किया।

निकल्सन नोटोविश कहता है कि मैं सुरम्य देशों को देखने की इच्छा से तिब्बत में पहुँचा तब मुझे पता चला कि यहाँ के लामाओं को ईसा का नाम ज्ञात है। ईसा पश्चिम से आया था, यह बात भी परंपरा से लामाओं में प्रचलित थी। मैंने लामाओं से पूछा कि कहीं ईसा का चरित्र मिलेगा? बहुत कुछ पूछताछ करने पर हिमिस नामक बौद्धमठ में ईसा का चरित्र मिला। उसका सारांश यह है—

काशी, पुरी, राजगृह में शिक्षा-दीक्षा

'ईसा का जन्म इस्राइल के एक गरीब, धर्मनिष्ठ कुटुंब में हुआ। बचपन से ही उसकी वृत्ति धार्मिक थी। इसलिए तेरहवें वर्ष में वह घर से निकला और किसी व्यापारी कारवां के साथ सिंध में आया। उसने जगन्नाथपुरी, राजगृह, बनारस में विद्याध्ययन किया। फिर उसने बौद्ध भिक्षुओं के पास रहकर पाली भाषा सीखी और बौद्ध धर्म के तत्त्वों को भली-भांति अवगत किया। फिर इराक के मार्ग से जूडिया गया और वहाँ प्रवचन करने लगा। वहाँ के गवर्नर पायलेट ने उसको कारावास में डाल दिया। उसको क्रूस पर लटका दिया। वह मर गया, पर तीन दिन पश्चात् उसकी कब्र खुली हुई मिली और ईसा का पता न चला कि वह कहाँ गया।'

बाइबिल का अन्तर्साक्ष्य

नोटोविश ने इस पुस्तक को फ्रेंच भाषा में प्रकाशित किया। इस ग्रंथ की खूब चर्चा रही। ईसाई-पंडितों ने जनता को यह बतलाने का प्रयत्न किया कि नोटोविश ने जिस ग्रंथ के आधार पर यह सब कुछ लिखा है वह ग्रंथ बनावटी है। इस प्रकार नोटोविश को मिले हुए ग्रंथ को संशय-युक्त मान लेने पर भी तिब्बत और कश्मीर में ईसा आया था, यह दंतकथा प्रचलित थी।

बाइबिल कहती है कि ईसा का जन्म पैलेस्टाईन में हुआ। ईसाइयों का कथन है कि ईसा ईश्वर का पुत्र था और वह मरियम नाम की कुंवारी लड़की से पैदा हुआ।

न्यू टेस्टामेंट में ईसा के चार शिष्यों ने अपने-अपने शब्दों में ईसा के विषय में काफी कुछ लिखा। ईसा अपने बारहवें वर्ष से लेकर तीसवें वर्ष तक कहाँ रहा, इस बात के विषय में उन्होंने कुछ नहीं लिखा। वे अस्पष्ट शब्दों में यह मानते हैं कि इस अवधि में वह कहीं अध्यात्म-चिंतन में रहा।

ओल्ड टेस्टामेंट में उल्लिखित अनेक स्थानों के नाम कश्मीर में प्रचलित हैं। कश्मीर के एक पहाड़ी प्रदेश में आराबा और हेब्रान—ये हिब्रू नाम प्रचलित हैं। कश्मीरी ब्राह्मणों की मुखाकृति यहूदियों जैसी है और उनके नाम, जाति, उपजाति के नाम ओल्ड टेस्टामेंट में वर्णित नामों जैसे हैं।

न्यू टेस्टामेंट में ईसा कहीं लुप्त हो गया था, ऐसा लिखा है। ईसा इधर आया था, यह बात प्रचलित है।

ईसा की द्वितीय भारत यात्रा—रोरिक का अनुसंधान कार्य

प्रसिद्ध रशियन चित्रकार निकोल्स रोरिक ने सन् 1929 में 'हार्ट आफ एशिया' नामक ग्रंथ प्रकाशित किया है। उसमें वह लिखता है कि—'मैंने कश्मीर में प्रथम बार इस विलक्षण दंतकथा को सुना, फिर हमको पता चला कि भारत, लद्दाख और मध्य एशिया में भी यही दंतकथा प्रचलित है। न्यू टेस्टामेंट में ईसा कहीं बीच में लुप्त हो गया था, ऐसा लिखा है। उस काल में ईसा इधर आया था, यह बात प्रचलित है। श्रीनगर के मुसलमानों ने मुझ से कहा कि ईसा की मृत्यु क्रॉस पर नहीं हुई। उसके शिष्य उसको दूसरी जगह ले गए और उसको अनेक उपायों से अच्छा किया। फिर ईसा श्रीनगर आया और यहीं वह स्वाभाविक मृत्यु से मरा। यहाँ एक मकान है उस घर में यूसफ के पुत्र ईसा की कब्र है। वहाँ इस आशय का खुदा हुआ पत्थर भी लगा है।'

कश्मीर में ईसा की समाधि

रोरिक पुनः लिखता है, 'जब हम लेह (कश्मीर) गए तब हमने वहाँ यही दंतकथा सुनी। लेह के हिन्दू पोस्टमास्टर और बौद्ध लोगों ने हमको एक बाजार के समीप ही एक तालाब दिखलाया और कहा कि पैलेस्टाईन जाने से पूर्व ईसा ने यहाँ प्रवचन किया था, ऐसी दंतकथा बतलाई। ईसा ईसाई व्यापारियों के कारवां के साथ इधर आया था, इस प्रकार की दंतकथा हमने लद्दाख सिकियांग, मंगोलिया आदि भागों में भी सुना। सब दंत-कथाओं में एक बात यही समान थी कि ईसा पैलेस्टाईन से जो गुम हुआ तो वह सीधे भारत, एशिया में आया।

काश्घर से छः मील पर मरियम मझर ईसा की माता की कब्र है। दंतकथा यह है कि जब ईसा को सताया जाने लगा तब मेरी काश्घर आई। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसको वहाँ दफनाया गया।

कश्मीर में यहूदी जाति के चिह्न

एलिस-ई-विशार्ट नामक एक यूरोपियन देवी कश्मीर में बीस वर्ष से रह रही है। वह 'इण्डिया एंड इजराइल' नामक दिसंबर 1951 की एक अंग्रेजी पत्रिका में लिखती हैं—'कश्मीर में भेड़-बकरी पालने वाली एक गूजर जाति अपने आपको 'वानी इजराइल' कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि रूवेन और गैड जाति (ज्यू) के वंशज होंगे। उनमें से बहुत से लोग अपने नाम के अंत में 'जू' उपपद जोड़ते हैं। उनकी मुखाकृति ज्यू जैसी है। 17वीं शती के प्रसिद्ध इतिहासकार फ्रांसिस बर्नियर ने अपनी 'मुगल साम्राज्य की सैर' में यही मत प्रतिपादित किया। निकोल्स रोरिक लिखता है कि जो लोग कश्मीर में जाते हैं उनको एक कब्र दिखलाई जाती है। यहाँ एक घेरा है उसमें सात फुट लंबा, ढाई फुट चौड़ा और एक फुट ऊँचा चौबारा है।

उस पर दो पैरों के निशान हैं। लोग कहते हैं कि यह ईसा की कब्र है। इस कब्र पर फूस का छप्पर है।

ईसा क्रूस पर नहीं मरा

सन् 1908 में सर फ्रांसिस यंग हसवंड ने अपनी 'कश्मीर यात्रा' पुस्तक प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने लिखा है कि 'इस वर्ष (1908 ई.) सितंबर मास में पंजाब के एक विचित्र पंथ का संस्थापक मर गया। उस संस्थापक का कथन है कि मैं यहूदियों का 'मसीहा' और इस्लाम का 'मेहर्दी' हूँ। उसके कथनानुसार ईसा क्रूस अथवा क्रॉस पर नहीं मरा, वह जीवित रहा और श्रीनगर में उसकी कब्र है।

सन् 1929 में प्रकाशित 'ईसा के रहस्यपूर्ण जीवन' में डॉ. स्पेन्सर लिखते हैं कि ईसा सूली पर नहीं मरा। वह 60-70 वर्ष जीवित रहा। वह यह भी लिखते हैं कि ईसा अपनी 12 वर्ष से 30 वर्ष की आयु के मध्य भारत आया तथा उसने योग एवं वेदांत की उच्च शिक्षा प्राप्त की।

भारत की शरण में

मौलाना मुहम्मद अली ने लंदन में अहमदिया पंथ की कुरान का अंग्रेजी अनुवाद किया है। उसमें उन्होंने ईसा के विषय में स्पष्ट लिखा है कि जीसस क्रॉइस्ट (ईसा) सूली पर चढ़ा था, किन्तु वह क्रॉस पर मर गया ऐसा दिखलाने की व्यवस्था की गई थी। उसको और उसकी माता को एक ऊँची हरी झरने वाली जगह में आश्रय दिया गया था।

जीसस क्रॉइस्ट (ईसा) क्रॉस पर नहीं मरा, इस विषय में टिप्पणी करते हुए मौ. मुहम्मद अली लिखते हैं कि बाइबिल की इन बातों की ओर ध्यान देना चाहिए—

1. ईसा क्रॉस पर केवल कुछ घण्टे रहा।
2. जब चोरों को क्रॉस पर चढ़ाया गया तब वे कई घण्टे जीवित रहे।
3. चोरों के पैर तोड़ डाले गए थे परन्तु ईसा के पैर नहीं तोड़े गए थे।
4. जब ईसा को क्रॉस पर से उतारा तब सिपाहियों ने ईसा की बगल में कुछ चुभोया था। तब ईसा का रक्त निकला था जो ईसा के जीवित रहने का चिह्न था।
5. इतनी देर में ईसा मर गया होगा ऐसा पायलेट का विश्वास नहीं था।
6. जिन दो चोरों को क्रॉस पर चढ़ाया था उनके मरने पर उनको गाड़ दिया गया था, किन्तु ईसा के शरीर को उसके एक श्रीमान् शिष्य के सुपुर्द कर दिया गया। उस शिष्य ने ईसा की बड़ी सावधानी से शुश्रूषा की और एक पहाड़ी गुफा में

ले जाकर रखा था। इससे प्रमाणित होता है ईसा क्रूस पर नहीं मरा था तथा उसके कब्र से लुप्त हो जाने या स्वर्ग में उड़ जाने की किंवदंती का अर्थ यही है कि वह माली का भेष बदलकर अपने शिष्यों के साथ पुनः भारत आ गया था। अंत में यहीं के संदेश से अनुप्राणित महात्मा ईसा का प्राण इसी भारत भूमि के अंक में सदा के लिए सो गया। अतः विश्व के शतकोटि ईसाई धर्मावलम्बियों के धर्मगुरु ईसा का भी ज्ञान-गुरु होने के कारण भारत, सदा की भांति, आज भी विश्व का धर्म-गुरु है। आज संसार के करोड़ों ईसाइयों को मैत्री, करुणा एवं दया के मूर्तिमान अवतार जिस महात्मा ईसा की शरण में जाने से परम शांति लाभ होती है, 20वीं शती पूर्व स्वयं अपने ही स्वदेश वासियों द्वारा तिरस्कृत उस सुशील संत ईसा को अपने विशाल अंक में शरण देने वाली इस शरणागत-वत्सला भारत-भूमि की जय! धर्मगुरु ईसा की जय!! जगद्गुरु भारत की जय!!!

'यदि विश्व को परमाणु विध्वंस से बचाना है तो भारत को विश्व की कमान अपने हाथ में लेनी होगी।

—आर्नोल्ड टायन्बी

× × ×

भारत का दान है धर्म, दार्शनिक ज्ञान और आध्यात्मिकता। धर्म-प्रचार के लिए यह आवश्यक नहीं कि सेना उसके आगे-आगे मार्ग निष्कंटक करते हुई चले। ज्ञान और दार्शनिक तत्त्व रक्त से लथपथ घायल मानवों के ऊपर से सदर्प विचरण नहीं करते। वे शांति और प्रेम के पंखों से उड़कर शांतिपूर्वक आया करते हैं और सदा हुआ भी यही है।

—स्वामी विवेकानन्द

यहूदी एवं ईसाई धर्मग्रन्थों में संस्कृत शब्द-भण्डार

अमरीका के विश्वविख्यात विद्वान एवं 6 खण्डों में लिखित विराट् ग्रंथ 'सभ्यता की कहानी' के यशस्वी लेखक डॉ. विल डूरेण्ट ने लिखा है—

'भारत ही हमारी जाति की जन्मस्थली थी तथा संस्कृत ही यूरोप की सब भाषाओं की जननी। भारतमाता हमारे दर्शन की भी जननी थी, अरबों के माध्यम से हमें प्राप्त होने वाले अधिकांश गणित ज्ञान की भी जननी, बुद्ध के माध्यम से हमारे ईसाई आदर्शों की भी जननी, अपनी ग्राम पंचायत परम्परा द्वारा हमारे लोकतंत्र एवं आत्मशासन की भी जननी—भारतमाता अनेक दृष्टियों से सारे विश्व की जननी है।'

यूरोप की समस्त भाषाएँ भारोपीय परिवार की होने के कारण तो संस्कृत की पुत्रियाँ हैं ही, किन्तु हीब्रू (यहूदी) भाषा सेमेटिक परिवार की भाषा होने के कारण संस्कृत के भाषा परिवार से बिल्कुल पृथक् है। फिर भी यहूदी भाषा के प्राचीनतम ग्रंथ Old Testament में संस्कृत भाषा के शब्द-भण्डार की छटा बड़ी मनोहारी एवं ज्ञानवर्धक है।

बाइबिल के दो खण्ड हैं—पुरातन समाचार Old Testament या पुरानी पोथी तथा नूतन समाचार New Testament। पुरानी पोथी यहूदियों का धर्मग्रंथ है और नूतन पोथी ईसाइयों का। पुरानी पोथी Old Testament में ऐसा वर्णन आता है कि टायर (Tyre) के राजा हिरम (Hiram) तथा सॉलमन (Soloman) के नौकरों का जहाजी बेड़ा प्रति तीसरे वर्ष किसी ओफिर नामक देश या स्थान से सोना, कुछ बेशकीमती पत्थर तथा अल्मग (Almug) लकड़ी ले आया करता था। उसी बेड़े पर हाथीदाँत, बन्दर तथा मोर आदि और भी चीजें आती थी। पुरानी पोथी के अध्येताओं के समक्ष यह एक पुराना प्रश्न है कि यह ओफिर किस देश या स्थान का नाम था। यहाँ हम लोगों को भी अपने विषय को स्पष्ट करने के लिए इस प्रश्न को उठाना होगा।

काप्टिक भाषा में भारत का नाम सोफिर (Sofir) मिलता है। इस सोफिर शब्द से ओफिर का निकलना असम्भव नहीं है।

पुरानी पोथी के बहुत से अनुवादकों द्वारा Ophir के स्थान पर Sophir या Sophira शब्द का प्रयोग किया गया है। जोसेफस ने भी यही किया है। और, जोसेफस तो स्पष्ट कहता भी है कि यह भारत का एक अंग था।

पुरानी पोथी का अनुवाद करने वाले पुराने अरब के विद्वानों ने भी कम से कम तीन स्थानों पर 'ओफिर' का अनुवाद 'भारत' किया है।

ओफिर से आने वाली सभी चीजें—सोना, बेशकीमती पत्थर, चन्दन, मोर, बन्दर, हाथीदाँत आदि भारत में उपलब्ध हैं तथा पुराने जमाने में बाहर भेजी जाती रही हैं।

जैसा कि आगे हम देखेंगे, इन चीजों में चन्दन, मोर, बन्दर तथा हाथीदाँत के पुरानी पोथी में पाये जाने वाले नाम हिब्रू के नहीं हैं, अपितु भारतीय भाषाओं के हैं।

भारत के पश्चिमी किनारे पर सिन्धु नदी के मुहाने के आस-पास बहुत प्राचीन काल से आभीर जाति के रहने का वर्णन मिलता है। 'आभीर' शब्द से बिगड़ कर 'ओफिर' होने की सम्भावना है। इसके अतिरिक्त गोआ के पास सुपारा, (Supara) शूपरिक, उपारा (Uppara) नामक कोई पुराना स्थान था। इसका भी अपभ्रंश 'ओफिर' हो सकता है। इसके आस-पास बन्दर मिलते ही हैं। कश्मीर की ओर मिलने वाला सोना सिन्धु नदी के रास्ते इधर आता रहा होगा। यहीं गुजरात में मोरों के पाये जाने का भी पुराना वर्णन मिलता है। मालाबार का चन्दन भी यहाँ से बहुत दूर नहीं है। इस प्रकार इसके पक्ष में सारी सम्भावनाएँ हैं।

अब अफ्रीका, अरब और भारत के तर्कों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। अफ्रीका का जहाँ तक सम्बन्ध है, वहाँ सोना अवश्य अधिक होता है, पर Tukki, जिसे अधिकांश विद्वानों ने तोता न मानकर मोर माना है, वहाँ नहीं मिलता। ओफिर से आनेवाली चीजों में चन्दन प्रमुख है, पर वह भी अफ्रीका में नहीं होता। तीसरी बात यह भी है कि यदि अफ्रीका में ओफिर होता तो वहाँ से आनेवाली चीजों के लिए यदि हिब्रू नाम न रहता, तो अवश्य ही अफ्रीकन नाम लिया गया होता। पर ऐसा नहीं है। वस्तुओं के नामों में एक भी अफ्रीकी भाषाओं का नहीं है, अतः ओफिर का अफ्रीका में होना असम्भव है।

अब अरब का प्रश्न उठाया जा सकता है। खनिज विद्या-विशारदों का कहना है कि अरब में कहीं भी सोना नहीं है और भूतकाल में कभी होता रहा हो, ऐसी भी आशा नहीं है। यदि कभी निकाला गया होता तो खानों के अवशेष अवश्य मिलते। चन्दन, हाथीदाँत, मोर आदि के तो अरब में होने की और भी सम्भावना नहीं है।

अतः 'ओफिर' के अरब में होने की सम्भावना बिल्कुल नहीं है। इसके अतिरिक्त स्वयं अरब के पुराने अनुवादकों ने भी 'ओफिर' का अनुवाद 'भारत' किया है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि ओफिर से आने वाली वस्तुओं के नाम व्युत्पत्ति की दृष्टि से अरबी नहीं है, और यह सम्भव नहीं है कि चीजें तो अरब से लेते और नाम भारत से, जैसा कि हम आगे देखेंगे। अतः अफ्रीका की भाँति ही अरब में भी 'ओफिर' नहीं था।

भारत के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रकार की कोई भी कठिनाई नहीं है। वे सभी चीजें यहाँ उपलब्ध हैं तथा जातकों से सिद्ध है कि उनका व्यापार भी होता था। ओफिर नाम भी 'आभीर' या 'सुपारा' से उद्भूत हो सकता है तथा उन सभी चीजों के हिब्रू या पुरानी पोथी में प्रयुक्त नाम भारतीय भाषा के हैं, अतः यह प्रायः निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि ओफिर भारत में ही था। मैक्समूलर का भी यही मत है।

निष्कर्ष यह है कि ओफिर भारत में था और उस समय यहूदियों का भारत से व्यापार होता था तथा सोना, मोर, चन्दन, बन्दर आदि वस्तुएं भारत से वहाँ जाती थीं।

Ophir ओफिर—भारत के आभीर शब्द का ही विकसित रूप है।

(रिटर, लैस्सेन, मैक्समूलर)

Algum (Bible) अल्मग—हिब्रू के चोटी के विद्वान इसे भारत से आने वाली चन्दन या लाल चन्दन की लकड़ी मानते हैं। संस्कृत में चन्दन के लिए एक शब्द वल्गुम भी है। वल्गुम = वल्गम = अल्गम (लैस्सेन तथा रिटर जैसे विद्वान)

Koph (Bible)—कोफ भी हिब्रू शब्द नहीं है। कपि कोफ। विलियम ड्रेक ने माना है कि अंग्रेजी Ape व जर्मनAffe, Anglo, Somen, Afa—सभी शब्द मूलतः संस्कृत के कपि से बने हैं।

Shenhabbim (Bible)—शेन (हिब्रू शब्द) का अर्थ दन्त है। संस्कृत इभ Eboy (काप्टिक)—Habba (असीरियन)—हैबिम (हिब्रू) मैक्समूलर ने भी हैबिम की व्युत्पत्ति इभ से मानी है। इभःदन्त—इभूरीय-Ivory.

Tukhim Tucciyyim (Bible)—तुखिम शब्द भी हिब्रू का नहीं है। इसका अर्थ मोर है, तोता नहीं है। तमिल शब्द Tokei (तोकी)-तोगी का अर्थ मोर है। मैक्समूलर का मत है शिखिन से तुखिम शब्द बना है।

(Bible)—कर्पस बाइबिल में कपड़ा या रुई के अर्थ में प्रयोग हुआ है।

कर्पास (संस्कृत)—कर्पस (पुरानी बाइबिल में) 'Karpas—the Habbis word, which appears also in Arabic, Greak and Latin

is derived from Poro. KIRPAS and ultimately from Sanskrit KARPASA'—Norman & Turner

आब्रह्म=Abraham;

आत्मा-अत्तःAuto

स्व Sui, Soul, Self सूर्य, सूर, सौर Solar

संन्यासी—एसीन

साधू—Seducee

स्थविर—थेरा Thera

Therapeutea स्थविर पुत्रः—

Therapeutics औषध विज्ञान—

बोधिसत्व—Josaphet

कृष्णः कृष्ट- कृष्टो Christos

न केवल एशियायाः एव, प्रत्युत समग्रस्य अपि योरूपस्य भाषा-जिज्ञासुकानां संस्कृत वाचः अनुशीलनम् आवश्यकम्। मतः संस्कृतेन सह सर्वासां निकटतमः संबंधः।

संस्कृत भाषा न केवल भारतवर्षम् एव अपितु अखण्डं क्षोणी-खण्डंस्त्र वाङ्मय सुधारस-सागर-समुद्भूत-प्रभूत प्रभाव प्रवाहैः पुनाति प्रतिपादम् इति पाश्चात्य विपश्चितः अपि निसंकोचम् अस्याः स्वरूपोद्घाटन-विषयम् अभ्यूपयन्ति

गौरवायच स्पृहयन्ति, ते संस्कृत गुण-निषध-गुरुताम्
गायन्ति, मानयन्ति महामहनीय-महिम महत्ताम
अस्य गीर्वाण-भारतीयम वाणी संस्कृत भाषायाः।
जयतु जय सुरभारती।।

संस्कृत ही हमारी (यूरोप की) सब भाषाओं की जननी है।

—विल डूरेन्ट

अरब पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

(इस शोध पत्र का वाचन प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग एवं पुरातत्त्व विभाग, मद्रास विश्वविद्यालय तथा सरकारी संग्रहालय एग्मोर, मद्रास के संयुक्त तत्त्वावधान में अखिल भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विचारगोष्ठी में किया गया था, जो 12-14 फरवरी, 1982 को आयोजित की गई थी तथा इस पत्र की भूरि-भूरि प्रशंसा भी हुई थी। इस विचारगोष्ठी, जिसमें सम्पूर्ण देश से इतिहास और संस्कृति के 200 विद्वानों ने भाग लिया था, का उद्‌घाटन श्री सी. अरंगनयगम, शिक्षामंत्री तमिलनाडु सरकार ने किया था तथा इसकी अध्यक्षता मद्रास विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. ए. सन्तप्पा ने की थी।)

एनसाक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार स्वयं अरब इस्लाम के पूर्व क्या थे, इस विषय में अज्ञान में हैं। यह काल अज्ञान के अंधकार में डूबा हुआ है। एक देश, जो स्वयं अपने अतीत के विषय में, बीते कल के विषय में अज्ञान में है, नहीं जानता, वह स्वयं अस्वीकृत होता है। वह वर्तमान के विषय में न्याय नहीं कर सकता है न भविष्य को उचित दिशा दे सकता है। सातवीं शताब्दी के पश्चात् सभी प्रमाणों तथा ग्रंथों को नष्ट कर दिया गया, सभी मन्दिरों को तोड़ दिया गया, सभी विश्वविद्यालयों को जला दिया गया, यानी जो भी पूर्व जीवन से, अतीत से सम्बन्ध जोड़ती थी उनको नष्ट कर दिया गया।

अरेबिया शब्द ही ग्रीक भाषा में संस्कृत नाम है। अर्ब घोड़े को कहते हैं वैदिक भाषा में। जिस जगह घोड़े रहते हैं उस स्थान को अर्व या अर्ब स्थान कहते हैं। अरब अच्छे नस्ल के घोड़ों के लिए प्रसिद्ध था।

अरब पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव दिखाने के पूर्व यह बतलाना लाभदायक होगा कि मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रभाव जैसा कि अब अरब, मध्य एशिया के एक बड़े हिस्से, में फैल चुका है। क्योंकि अनेक मध्य एशिया के देश, जो मूलतः अरबी नहीं हैं पर वे धर्मान्तरण के पश्चात् अपने आप को अरब कहने लगे हैं।

सुमेरिया राज्य की दो प्रजाति हिताइत और मितनी में सन्धि होती है। वैदिक

देवता यथा इन्द्र, वरुण, नास्त्यों को साक्षी रखकर ईसा से 1400 वर्ष पूर्व प्राचीन सुमेरिया के राजाओं के नाम है—Artanna, Surtanna and Dasaratta. असीरीया असुरों का राज्य था जिसके राजा असुर बनीपाल Asur Banipal असुर महिपाल Asur Mahipal आदि। सिन्धु घाटी सभ्यता से सुमेरिया का बहुत स्पष्ट सम्बन्ध था। Hindu Kingdoms in Ancient Sumeria by Swami Shankarnanda (Published by M/S K.L. Mukhopadhaya, Calcutta) एक चुनौती वाली पुस्तक है।

कम लोगों को ज्ञात है कि ईसा से दो शताब्दी पूर्व यूफ्रेटीज नदी के ऊपरी तट पर वानझील के पश्चिम में एक हिन्दू उपनिवेश था जिसमें हिन्दू मन्दिर बने हुए थे, जिसमें एक कृष्ण का मन्दिर भी था। चौथी शताब्दी में सेंट ग्रेगरी ने अपने अनुयायियों की सहायता से इस हिन्दू उपनिवेश को पराजित करके हिन्दू मन्दिरों को गिरवा दिया था। इसका उल्लेख आर.सी. मजूमदार ने India's Contribution to world thought and Culture की भूमिका में किया है।

मिस्र देश का नाम ही संस्कृत भाषा का है। यह किसी सेमेटिक या यूरोपीय भाषा का शब्द नहीं है। मंडन मिश्र से लेकर वाचस्पति मिश्र तक भारत में श्रेष्ठ तत्त्ववेत्ताओं, ब्राह्मणों की उपाधि मिश्र रही है। वहाँ की सर्वप्रसिद्ध नदी (मिस्र की गंगा) का नाम नील नदी भी संस्कृत नाम है। गंगा की नीलधारा के समान नील नदी भी मिस्र की सर्वप्रसिद्ध, सर्वपूज्य नदी है। यह शब्द भी संस्कृत के सिवा किसी अन्य शब्द-भंडार से नहीं आया।

एक पिरामिड में रखी हुई मम्मी के बॉक्स पर गीता का श्लोक इजिपसियन भाषा में लिखा हुआ पाया गया है। टीक की लकड़ी, जिससे बॉक्स बना हुआ है, वह भारत से ही जाती थी। जो मलमल का वस्त्र, जिससे मम्मी को लपेटा गया था, वह भी भारतीय है। सूर्य पूजा, जो भारत से ईरान, मिस्र फिर यूरोप पहुँची, मित्र पूजा प्राचीन यूरोप में ईसा से पूर्व ही प्रवेश कर चुकी थी। मसाले, हीरे, चन्दन की लकड़ी आदि भारत से मिस्र जाते थे।

बाइबिल स्पष्ट रूप से वर्णन करती है कि राजा सोलोमन अपने महल के लिए भारत से हाथीदाँत, मोर, सागवान की लकड़ी, मोती, मसाले, मलमल आदि आयात करता था। यह तथ्य है कि बौद्ध संन्यासी एवं भारतीय संन्यासी ईसा के जन्म के पूर्व से ही इजरायल में मान्यता प्राप्त कर चुके थे। वहाँ के जनजीवन में प्रवेश कर चुके थे, उन्हें प्रभावित कर रहे थे। अशोक (जिसका पुत्र महेन्द्र और उसकी पुत्री संघमित्रा बौद्ध धर्म का प्रकाश श्रीलंका ले गये) ने बौद्ध संन्यासी या उपदेशक इजरायल एवं मध्य एशिया में भेजे। बाइबिल वर्णन करती है कि तीन प्रकार के भारतीय प्रचारक ईसा के पूर्व कार्यरत थे।

थेरापुत (बौद्ध साधु, स्थविर पुत्र) जो भगवान बुद्ध के आदर्शों का प्रचार करता था और अपने कंधे पर दवा का थैला लटका कर रखता था, शरीर को स्वस्थ करने के लिए। स्थविर का संस्कृत भाषा में अर्थ है वृद्ध व्यक्ति या वृद्ध भिक्षु। स्थविर शब्द पाली भाषा में थेर Thera और श्रीलंका में बौद्धधर्म के भिक्षु को Therawada नाम से जाना जाता है। सम्राट् अशोक ने युवकों का आह्वान किया भगवान बुद्ध के संदेश को सर्वत्र पहुँचाने के लिए, वे स्थविर पुत्र (युवा भिक्षु) कहलाये। स्थविर का रूप श्रीलंका में Thera और स्थविर पुत्र का रूप इजरायल में 'Putae' हो गया। An interesting fact of history is that because of the medical service of the Theraputte the Science of Medicine has been named Theraputics and Therapy.

B एसिन Essene (सनातन हिन्दू संन्यासी)

C साधूसिज Sadducees (जैन साधु)

रशियन यात्री निकल्सन नोटोविश ने अपने शोध ग्रंथ 'lost years of Jesus Christ' में यह सिद्ध किया है कि ईसा का जन्म इजरायल के एक गरीब धर्मनिष्ठ कुटुम्ब में हुआ। बचपन से ही उसकी वृत्ति धार्मिक थी। वह आठ वर्ष से 28 वर्ष तक की अवस्था में भारत में रहा। वह आठ वर्ष की अवस्था में घर से निकला और किसी व्यापारिक कारवां के साथ सिन्ध में आया। उसने जगन्नाथपुरी, राज्यगृह, बनारस, मथुरा, कश्मीर, लद्दाख में विद्याध्ययन किया। फिर वह इराक के मार्ग से जूडिया गया और वहाँ प्रवचन करने लगा। Old testament दाँत के बदले दाँत, खून के बदले खून के स्थान पर उसने अहिंसा, शांति, क्षमा एवं प्यार का संदेश दिया। लोकमान्य तिलक ने अपनी गीतारहस्य पुस्तक में सिद्ध किया कि ईसा मसीह के उपदेश गीता से बहुत प्रभावित हैं।

यह तथ्य है कि जीसस Jesus जो ईसाई मत के संस्थापक का नाम है, क्राइस्ट (Christ) तो केवल उसकी उपाधि (Title) मात्र है। जीसस के पूर्व क्राइस्ट नाम से कोई नहीं जाना जाता था। जबकि जीसस तो एक प्रसिद्ध Popular नाम रहा यहूदियों के मध्य।

तब उन्हें क्राइस्ट नाम कहाँ से प्राप्त हुआ? यह कृष्ण से प्राप्त हुआ। कृष्ण का बांग्ला भाषा में उच्चारण क्रिस्टो हो जाता है। वे उच्चारण करते हैं, जपते है हरे कृष्टो हरे कृष्टो कृष्टो-कृष्टो हरे हरे। उनके अभी तक कृष्टो मुखर्जी, कृष्टोदास प्रचलित है। संस्कृत में न (N) त (T) में बदल जाता है बहुत बार।

टाटा नगर का एक प्रसिद्ध क्षेत्र (बिहार) भारत में Bishtupura कहलाता है। उसका मूल नाम Vishnupura है। विश्व प्रसिद्ध इतिहासकार विल डूरेन्ट कहता है भारत बुद्ध के माध्यम से ईसाई आदर्शों की जननी है। अरबिया भारत का

निकटतम एवं सर्वोत्तम शिष्य रहा है पश्चिम की ओर से। अरब ने भारत से गणित का विज्ञान एवं ज्योतिष शास्त्र सीखा। गिनती अभी भी अरब में हिंदसा (हिन्द से प्राप्त हुई) पुकारी जाती है। एक मजेदार तथ्य है। भारतीय गिनती को अरबी भाषा में हिन्दसा कहते हैं। हिन्दसा अर्थात् हिन्द से प्राप्त। अरबी लिपि दायें से बायें लिखी जाती है किन्तु अरबी में अंक बायें से दायें लिखे जाते हैं। यह भी इस बात का प्रमाण है कि अरबी अंकों की उत्पत्ति अरबी भाषा से नहीं हुई है। वह कहीं से प्राप्त हुई है। वह हिन्द से ही प्राप्त हुई है।

अध्यात्म एवं संस्कृति का दान ही सर्वोत्तम दान है जो एक देश अन्य देशों को दे सकता है। भारत ने सदैव अपनी संस्कृति सुगंधी सारे विश्व को निःस्वार्थ भाव, विश्व मंगल की भावना से, बिना किसी देश के राज्य की स्वाधीनता छीनकर, बिना अर्थ व इज्जत पर डाका डाले बांटी। भारतीय संस्कृति की अरब को देन यह गहरे शोध का विषय है।

इस्तम्बोल (टर्की) के प्रसिद्ध राजकीय पुस्तकालय 'मकतब ए सुलतानि, जिसे वर्तमान में 'मकतब-ए-जमहूरिया' कहते हैं, वह तुर्की का एक विशाल पुस्तकालय है। पुस्तकालय के अरबी भाग में एक दुर्लभ ग्रंथ 'सेरूअल ओकूल' प्राचीन अरबियों का काव्यसंग्रह है। यह संग्रह सन् 1742 में तुर्की के प्रसिद्ध राजा सुलतान सलीम के आदेश पर तैयार हुआ। यह हरीर (एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो ऐसे कामों के लिए ही बनाया जाता था) पर लिखा है और उसका प्रत्येक पृष्ठ सुनहरे बेल-बूटेंदार काम से सजा हुआ है।

इसका प्रथम आधुनिक संस्करण सन् 1864 ई. में बर्लिन से प्रकाशित हुआ था। और दूसरा सन् 1932 व 1963 में बेरूत (फिलिस्तीन) से प्रकाशित हुआ। 1963 में बगदाद से प्रकाशित हुआ। मैंने इस नये संस्करण को बगदाद में पाया, जब मैं बगदाद विश्वविद्यालय में Lecture Tour में गया था। इस अरबी काव्य का संग्रहकर्ता अबू आमिर अब्दुल असमई है, जो इस्लाम के प्रसिद्ध राजा खलीफा हारूरशीद का दरबारी कवि था। हारूरशीद अरबी काव्य का कालिदास के समान सम्मानित है। यह महान् ग्रंथ तीन विभागों में विभक्त है।

1. इस्लाम के पूर्व के कवि व उनकी कवितायें।
2. मुहम्मद साहब के प्रारम्भिक काल से लेकर बनी उम्मय्या कुल के अन्त तक के कवियों का वर्णन है।
3. तीसरे भाग में बनी अब्बास कुल के आरम्भ से प्रसिद्ध राजा खलीफा हारूरशीद के दरबारी कवियों अर्थात् लेखक ने अपने समय तक के कवियों का वर्णन कर दिया है।

इस पुस्तक में प्राचीन अरब की धार्मिक, सामाजिक परम्पराओं पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुख्य रूप से मक्का को सबसे बड़े मन्दिर एवं सबसे बड़े भगवान महादेव के रूप में वर्णित किया गया है। यहाँ शिवरात्रि के अवसर पर लगने वाले वार्षिक मेले को 'ओकाज' कहा जाता था। इस मेले में विशाल कवि-सम्मेलन हुआ करता था, जिसमें सर्वप्रथम कवि की कविता को सोने के पतरे पर अंकित कर मन्दिर के अन्दर लटका दिया जाता था। अन्य श्रेणी की कवितायें ऊँट की झिल्ली या भेड़-बकरी के चमड़े पर लिखकर मन्दिर के बाह्य भाग में टांग दी जाती थी। इस प्रकार अरबी साहित्य का अमूल्य साहित्य धन हजारों वर्षों से मन्दिर में एकत्रित होता चला आता था। पता नहीं यह प्रथा कब से प्रारम्भ हुई थी। परन्तु हजरत मुहम्मद साहब के जन्म से 23-24 सौ वर्ष पुरानी कवितायें उक्त मन्दिर में प्रस्तुत थीं।

किन्तु मक्का इस्लामी सेना के द्वारा जब नष्ट की जा रही थी, उस समय हजरत मुहम्मद का दरबारी कवि हस्सान-बिन-साबिक भी था। उसने कुछ रचनायें अपने पास सुरक्षित कर ली थी। इसकी तीसरी पीढ़ी के समय हारूरशीद जैसे साहित्यिक खलीफा का काल था। लाभ की आशा से ये पतरे लेकर वह कवि-वंशज मदीने से बगदाद जाकर लेखक अबू-आमिर-अब्दुल असमई से मिला। उसे प्रयत्नस्वरूप अच्छा पारितोषिक दिया गया। इसमें पाँच सोने के पत्र थे और 16 चमड़े के।

इन पत्रों से प्रेरित होकर खलीफा ने लेखक अबू-आमिर को एक ऐसा ग्रंथ लिखने की आज्ञा दी जिसमें अरब के तमाम कवियों के जीवन और काव्य कला का वर्णन हो। इस प्रकार जो संग्रह प्रस्तुत किया गया था उसमें से एक कविता पाठकों की जानकारी के लिए उद्धृत करते हैं।

हजरत मुहम्मद से एक सौ पैंसठ वर्ष पूर्व बिनतोई नामक कवि हो गया है। जो 'ओकाज' के कवि-सम्मेलन में लगातार तीन वर्ष सर्वप्रथम आता रहा। उसकी तीनों उक्त कवितायें सोने के पतरों पर अंकित होकर मन्दिर में लटकाई गयी थी। इससे यह स्पष्ट है कि वह बहुत प्रतिभासम्पन्न था। उसकी कविता का उदाहरण यह है—

राजा विक्रमादित्य की स्तुति

6 पंक्तियों में जो कवि कहता है उसका भाव यह है—वे लोग धन्य हैं जो राजा विक्रम के राज्यकाल में उत्पन्न हुए जो बड़ा दानी, धर्मात्मा और प्रजापालक था। परन्तु ऐसे समय हमारा अरब ईश्वर को भूलकर भोग-विलास में लिप्त था। छल-कपट को ही लोगों ने सबसे बड़ा गुण मान रखा था। हमारा देश (अरब) अविद्या में, अन्धकार की चपेट में था। जैसे बकरी का बच्चा भेड़िये के पंजे में

फंसकर छटपटाता है, छूट नहीं सकता ऐसे ही हमारी जाति मूर्खता के पंजे में फंसी हुई थी। संसार के व्यवहार को अविद्या के कारण हम भूल चुके थे। सारे देश में अमावस्या की रात्रि की तरह अंधकार फैला हुआ था। परन्तु उसने हम विदेशियों को भी अपनी दया दृष्टि से वंचित नहीं किया और पवित्र धर्म का संदेश देकर अपनी जाति के दो विद्वानों को यहाँ भेजा जो हमारे देश में सूर्य की तरह चमकते थे। जिन महापुरुषों की कृपा से हमने भुलाये हुए ईश्वर और उनके पवित्र ज्ञान को जाना और सत्पथगामी हुए, वे लोग राजा विक्रमादित्य की आज्ञा से हमारे देश में विद्या और धर्म के प्रचार के लिए आये थे। (Vikrama Smriti Granth; Published by Scindia Oriental Institute, Vikram University, Ujjain; Price : 100 Rs. P 157-58.)

वेदों की स्तुति

उसी प्राचीन अरबी ग्रंथावली सेरूअल ओकल के पृष्ठ 257 पर एक अन्य महत्त्वपूर्ण कविता है। इसका रचयिता लबी बिन-ए अख्तव बिन-ए तुरफा है। यह पैगम्बर मुहम्मद से 2300 वर्ष पूर्व यानी ईसा से 1800 वर्ष पूर्व है और वेदों की अनूठी प्रशंसा की है। यह तथ्य है कि वेद ही एकमात्र पुस्तकें थी जिनके प्रति 1800 ई. पूर्व भी अरब लोगों ने अपनी अनन्य निष्ठा व्यक्त की है। कविता का भाव इस प्रकार है—

1. हे हिन्द की पुण्य भूमिः! तू धन्य है क्योंकि ईश्वर ने अपने ज्ञान के लिए तुझको चुना।
2. वह ईश्वर का ज्ञान प्रकाश जो चार स्तम्भों के सदृश सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है। ये भारतवर्ष में ऋषियों द्वारा चार रूप में प्रकट हुए।
3. परमात्मा समस्त संसार के मनुष्यों को आज्ञा देता है कि वेद, जो मेरा ज्ञान है, के अनुसार आचरण करो।
4. वह ज्ञान के भण्डार साम और यजुर् हैं जो ईश्वर ने प्रदान किये। इसलिए हे मेरे भाइयो! इनको मानो क्योंकि ये हमें मोक्ष का मार्ग बतलाते हैं।
5. दो उनमें से रिक् अतर् (ऋग्वेद और अथर्ववेद) हैं जो हमको भ्रातृत्व की शिक्षा देते हैं, और जो इनकी शरण में आ गया वह कभी अन्धकार को प्राप्त नहीं होता।

शिव स्तुति

स्वयं मुहम्मद पैगम्बर के चाचा उमर बिन-ए-हश्शाम, जिनका उपनाम अबुल हिक्म (अर्थात् ज्ञान का पिता), जिसको द्वेष या पक्षपात के कारण बदलकर मुसलमानों में 'अबूजिहल' (अर्थात् अज्ञान का पिता) कर दिया। जिन्होंने हिन्दू

धर्म की रक्षार्थ अपने प्राण भी गंवाये। उनकी सुप्रसिद्ध कविता सेरूअल-ओकल काव्य ग्रंथ के पृष्ठ 235 पर अंकित है। नयी दिल्ली स्थित लक्ष्मीनारायण मन्दिर की वाटिका में लाल पत्थर के स्तम्भ पर लिखी हुई कविता इस प्रकार है, जिसका भाव यह है—

1. वह मनुष्य जिसने सारा जीवन पाप व अधर्म में बिताया हो, काम, क्रोध में अपने यौवन को नष्ट किया हो;
2. यदि अन्त में उसको पश्चात्ताप है और भलाई की ओर लौटना चाहे तो क्या उसका कल्याण हो सकता है?
3. एक बार भी सच्चे हृदय से वह महादेव जी की पूजा करे तो धर्म-मार्ग में उच्च से उच्च पद को पा सकता है।
4. हे प्रभु! मेरा समस्त जीवन लेकर केवल एक दिन हिन्द का निवास दे दो क्योंकि वहाँ पहुंचकर मनुष्य जीवन-मुक्त हो जाता है।
5. वहाँ की यात्रा से सारे शुभकर्मों की प्राप्ति होती है और आदर्श गुरुजनों का सत्संग मिलता है।

ऊपर दी गयी दोनों अरबी कवितायें इस्लाम पूर्व समय के अरेबिया में सर्वोत्तम पुरस्कार-विजेता तथा मूल्यवान थीं और काबा देवालय के भीतर स्वर्णाक्षरों में उत्कीर्ण होकर टंगी हुई थी।

भगवान कृष्ण की स्तुति

अरब का एक और प्राचीन कवि जरहम-बिन-ताइ, जो हजरत मुहम्मद साहब से प्रायः सौ वर्ष पहले हुआ था, अपनी एक कविता में, जो कुस्तुनिया के सुल्तानिया पुस्तकालय में चमड़े पर लिखी हुई अब तक मौजूद है, में कहता है—

कृष्ण लीला का वर्णन

हे प्रभु! तुमने संसार के लिए बारम्बार अवतार धारण किया है, उस समय जबकि संसार पीड़ित था और पापियों ने पृथ्वी पर अधिकार जमा रखा था, हे प्रभु! जैसा तुम स्वयं अपने ग्रंथ में उपदेश करते हो कि जब-जब धर्म का हनन होता है और पाप की वृद्धि होती है तब-तब भक्तों का उद्धार करने और पापियों को दण्ड देने के निमित्त मैं जन्म लेता हूँ। हे प्रभु! धन्य है वह नगर जहाँ आपने जन्म लिया और धन्य है वह मैदान जो आपका क्रीडास्थल था और जहाँ गऊओं को चराते हुए अपने बाल सखाओं के साथ आनन्द मनाते थे। यह तुम्हारा श्याम वर्ण मुख और सुन्दर मूर्ति जो कोई देखता तो ऐसा जान पड़ता कि मानो स्वयं सुन्दरता ने मनुष्य का रूप धारण किया है और जब तुम बांसुरी बजाने लगते और उसकी ध्वनि

आकाश में गूंजने लगती तो स्त्रियों का घर में रहना और मर्दों का काम करना मुश्किल हो जाता था, गर्भ के बच्चे तक घूमने लगते। स्त्रियाँ अपने गोद तक के बच्चों को दूध पिलाना भूल जाती और अपने पतियों की सेवा छोड़कर पतंगे के समान तुम्हारे मुखचन्द्र पर निछावर होने को तैयार हो जाती। प्रभु! तुम पीताम्बर धारण किये हो, हाथ में बंशी हो, सिर पर मुकुट और कानों में कुण्डल हो, ऐसे रूप का मुझे दर्शन दो। प्रभु, तुमने स्वर्ग की अप्सरा का उद्धार किया और पहाड़ को उंगली पर उठाया, ऐसे ही मेरा भी उद्धार करो।

इस प्रकार की चौसठ कवितायें अब तक प्राप्त हुई हैं जिनमें ऐसी ही चामत्कारिक बातों का वर्णन किया गया है। इन कविताओं से पूर्णतया सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन अरब निवासी हिन्दू धर्म को मानने वाले और आर्य सभ्यता के अनुयायी थे।

वर्तमान में परिवर्तित रूप में शिव पूजा

पुस्तक सेरूअल ओकुल स्पष्ट रूप से वर्णन करती है कि काबा के केन्द्र में एक विशाल काला पत्थर स्थापित है जिसे महादेव कहा जाता था। उसकी पूजा खजूर की पत्तियों व जमजम के जल से की जाती है। इर्द-गिर्द चारों तरफ कुछ देवता थे। पुजारी कुरैशी थे। हजरत मुहम्मद स्वयं कुरैशी वंश के थे पर वे पढ़े-लिखे नहीं थे। ऊँटों को चराया करते थे। पुजारियों ने उनकी भेंट का हिस्सा नहीं दिया उससे मुहम्मद उन पर उत्तेजित हुए और उन्होंने मूर्तियों को तोड़ने की घोषणा की। मैक्समूलर का कहना है कि बुद्ध शब्द से अरबी का बुत शब्द बना है। मूर्ति के लिए बुत कहते हैं वह बुद्ध से ही बन गया। इर्द-गिर्द बाहर की परिक्रमा में 360 देवताओं का स्थान बना हुआ है। इसमें नवग्रह थे और गणेश, दुर्गा की, देवियों की मूर्तियाँ बनी हुई थी। बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ थी, बुद्ध की मूर्तियाँ थी....

जब हजरत मुहम्मद ने मूर्तियाँ तोड़ने की घोषणा की तो वहाँ के पुजारियों ने उसका प्रतिरोध किया तो मुहम्मद मक्का छोड़कर मदीना में चले गये। जब उन्होंने आक्रमण के लिए पर्याप्त शक्ति संग्रह कर ली और मक्का पर आक्रमण किया और महादेव से प्रार्थना की—यदि उसने मक्का पर विजय प्राप्त की तो 360 देवों को तो तोड़ दूंगा पर आपको नहीं। आपका चुम्बन करूंगा, आपको प्रणाम करूंगा और खजूर की पत्तियों और जमजम के जल से आपकी पूजा करूंगा। जब वे विजयी हुए क्योंकि रात्रि को आक्रमण किया, तब उन्होंने उसका चुम्बन किया, प्रणाम किया व काले पत्थर की पूजा की। आठ बार नमस्कार किया वह नमाज बन गया। काला पत्थर संगेअस्वद कहा जाने लगा। अस्वद शब्द संस्कृत के अश्वेत शब्द से निकला है। ईदगाह शब्द संस्कृत के ईड़ा से बना है। संस्कृत का शब्द शिवरात्रि शबे बारात में बदल गया। शिव रात्रि यानी शिव की बारात वाली

रात्रि। शंकर के मस्तिष्क की शशि कला से ही नया चन्द्रमा अरब एवं मुस्लिम राष्ट्रों का ध्वजचिह्न बन गया।

उनका Lunar कैलेंडर भी शिव पूजा से प्रभावित है। वे दिन की गणना एक सूर्यास्त से दूसरे सूर्यास्त में करते हैं, जब चन्द्रमा उदित हो जाता है। इनका ईद उत्सव भी चन्द्रमा से प्रभावित है। मक्का शब्द भी मखः, जिसका अर्थ यज्ञ से है, से निकला है। Alla and Akka शब्द वैदिक शब्द हैं ईश्वर के लिए। हज यात्रा में सिर मुण्डन कर स्नान कर नये बिना सिले हुए सफेद वस्त्र यानी नीचे धोती बिना लांग की, ऊपर चद्दर धारण करना, उस अवस्था में हिंसा निषिद्ध है। (नये वस्त्र धारण करने के पश्चात् हिंसा करना महापाप समझा जाता है। जब तक यह वस्त्र शरीर पर रहता है वे किसी पशु-पक्षी को भी नहीं मारते। यह सिद्धान्त इस बात का सूचक है कि हजरत पर आर्य सभ्यता के प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा का प्रभाव कुछ न कुछ अवश्य ही पड़ा था, क्योंकि सेमेटिक संस्कृति में हिंसा और अहिंसा का कोई विचार ही नहीं किया गया है वरन् ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए हिंसा को ही एक मुख्य कर्म समझा गया है। यदि हजरत मुहम्मद साहब पर आर्य सभ्यता का प्रभाव न पड़ा होता तो वे अहिंसा सिद्धान्त को अल्पकाल के लिए भी न अपनाते। फिर काबा मन्दिर की सात परिक्रमा करना ये सब स्पष्टतः वैदिक पद्धति है पूजन की।

विद्वानों का मत है कि 'काबा' शब्द काव्य से निकला है। यह असुरों के कविगुरु शुक्राचार्य का नाम व उपाधि है। दो प्रकार से शिवपूजन करने की विधि प्रचलित है—

1. सात्त्विक भाव से दिव्य गुणों व भावों को जीवन में पाने के लिए सोमवार को शिवपूजन करते हैं जैसा कि शंकराचार्य, मार्कण्डेय जी करते हैं।
2. आसुरी भाव से अपने अहं एवं दम्भ, धन-ऐश्वर्य की परिपूर्ति के लिए शिव पूजन करते हैं शुक्रवार को। जैसा कि रावण, त्रिपुरासुर, भस्मासुर आदि के जीवन में पाते हैं। असुर भाव से शिवपूजन के कारण असुर गुरु शुक्राचार्य के शुक्रवार को विशेष जुमा (समूह) की नमाज अदा करते हैं।

बगदाद में गुरु नानकदेव का स्मारक

बगदाद (इराक की राजधानी) में गुरु नानकदेव का 917 हिजरी का स्मारक लेखक ने देखा है जिस पर पुरानी तुर्की मिश्रित अरबी भाषा में एक शिलालेख इस प्रकार है—

कोरद मुराद एलदी

हजरत रब्बे मजीद

बाबा नानक फकीर औलिया
कि इमारत जदीद।
यलयदा मिला दायद
व बकल्दी कि तारीखन
याय दी सबाबे इजराईल
अज मरीदे सईद (सन् 917)

इराक के राजकुमार मुराद ने सन् 917 हिजरी में हजरत रबे मजीद (पवित्र महान् प्रभु) बाबा नानक फकीर औलिया (सर्वज्ञानी) की उस पुरानी इमारत को, जहाँ गुरु नानक ने राजकुमार बहलोल को उपदेश दिया था, स्वयं नया बनवा दिया ताकि इतिहास की याद बनी रहे तथा गुरु नानक के विशेष शिष्य को ईश्वरीय पुण्य लाभ हो सके। भारत के महान् पुरुष की, जो भगवान की तरह सम्मानित है, तब भारत के विषय में क्या कहना जो आध्यात्मिक महापुरुषों की खान है जिस तरह राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, शंकराचार्य और नागार्जुन, अशोक और हर्ष, नानक और कबीर, विवेकानन्द, रामतीर्थ, महर्षि रमण, शिवानन्द, अरविन्द, टैगोर और आनन्द कुमार स्वामी।

स्वस्थ पोषण व प्रकाश प्रदान करें, इस महान् परम्परा द्वारा मनुष्य की रक्षा करें व मानवता को नेतृत्व देवें, सही दिशा में सही प्रकाश देकर।

भारतीय कौन ?

उठे जहाँ भी घोष शान्ति का भारत स्वर तेरा है,
धर्म दीप हो जिसके भी कर में वह नर तेरा है।

—**दिनकर**

× × ×

जिस प्रकार मिस्र, बेबीलोनिया या असीरिया को कोई समाप्त कर सकता है, भारत का इतिहास उस प्रकार समाप्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह इतिहास अब भी निर्मित हो रहा है, वह सभ्यता अब भी रची जा रही है।

—**विल ड्यूरेन्ट**

अरब देश पर भारतीय प्रभाव

यह जो मध्यपूर्व में अरब देश है इसकी कहानी भी निराली है। वहाँ मुझे बगदाद विश्वविद्यालय में भाषण करने का अवसर मिला। उसमें तीन हजार वर्ष पूर्व आकाश से एक तारा गिरा। तारा प्रायः बहुत दूर से गिरता है। आकाश बहुत बड़ा है। भूमण्डल बहुत छोटा है। सूर्य के सामने धरती ऐसी है जैसे सारे कलकत्ता को फुटबाल बना लिया जाय और उसके सामने एक धूलि का कण हो। इतनी छोटी ऐसी हमारी धरती है, सूर्य के सामने। लाखों गुणा बड़ा सूर्य है। सूर्य से लाखों गुणा बड़े और तारे महासूर्य हैं, ढाई अरब तारे दिखने वाले और असंख्य अरबों न दिखने वाले। सबको मिलाकर विशाल ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्ड से कोई चीज गिरे तो उसका अता-पता, उसका टुकड़ा धरती पर गिरे यह बहुत कम होता है। हजारों सालों में कभी होता है। इटली में लगभग 5-6 मील की दूरी में गिरे हुए आकाश से तारे के टुकड़े को उन्होंने सुरक्षित रखा हुआ है। झांसी के पास लगभग आधा मील लम्बा-चौड़ा टुकड़ा यहाँ भी सुरक्षित रखा हुआ है। ऐसा एक टुकड़ा गिरा अरब में।

लावा जो था अर्ध गोलाकार लिंग बन गया। काले रंग का था। उसको कहने लगे संगे अस्वद। संग का अर्थ है पत्थर। अस्वद का अर्थ है काला। उसको स्वयम् लिंग कहा जाने लगा। स्वयम् लिंग, स्वयं बनने वाला लिंग मानकर उसकी पूजा शुरू हुई।

पूजा कैसे की जाती है। वहाँ बेल पत्र मिलते नहीं इसलिए खजूर की पत्तियों और आबेजमजम वहाँ एक पानी का झरना है। रेगिस्तान में पानी बहुत कम मिलता है। जहाँ मिलता है तो वह बहुत साफ होता है। क्योंकि रेत पानी को बहुत साफ करती है। बहुत साफ पानी। उनका विश्वास है कि उस जल में कीड़े नहीं पड़ते जैसे गंगाजल में नहीं पड़ते। उस आबेजमजम के पानी से और खजूर की पत्तियों से अभिषेक, उसकी पूजा की जाती है।

पूजा को कहते हैं इड़ा। इड़ा शब्द जो है वैदिक संस्कृति का है। **'अग्निम् इळे पुरोहितम्'** वेद का प्रथम मंत्र है। उसकी इड़ा करते थे। उसको महादेव बोलते थे और उसकी परिक्रमा करते थे।

और जो पुजारी थे वे कुरैशी। हजरत साहब खुद कुरैशी खानदान के थे। पर पढ़े-लिखे नहीं थे। इनके जीवनी लेखकों का कहना है कि वे अशिक्षित थे। मिर्गी के दौरे पड़ते थे। इसलिए पढ़े-लिखे नहीं थे। एक अनपढ़ ऊँट चराने वाले रहे हैं।

बीच में महादेव थे। इर्द-गिर्द चारों तरफ 360 देवता थे। उनके स्थान बने हुए थे। हमने स्थान को देखा। हमने बगदाद विश्वविद्यालय में पढ़ाया है। कुछ आंखों देखी बातें बता रहे हैं। इर्द-गिर्द बाहर की परिक्रमा में 360 देवताओं का स्थान बना हुआ है। इसमें नवग्रह थे, इसमें दुर्गा की, देवियों की मूर्तिया बनी हुई थी। बोधिसत्त्व की मूर्तिया थी, बुद्ध की मूर्तियाँ थी। मैक्समूलर का कहना है बुद्ध शब्द से अरबी का बुत शब्द बना है। मूर्ति के लिए बुत कहते हैं वह बुद्ध से ही बन गया।

शिव की मूर्ति एक पर्वताकार पत्थर का लिंग है। जो चित्र देखते हैं चित्र में चारों ओर एक Brown रंग कोलायन रंग का शार्टिंग का कपड़ा चढ़ा रहता है। प्रतिवर्ष एक-एक मुस्लिम देश उसके लिए शार्टिंग देता है। उसमें सुनहरी झालर की डेकोरेशन की जाती है। उसको चारों ओर ढका जाता है पर्दे की तरह, ताकि किसी काफिर की नजर न पड़ जाये। उन्हें भय है कि गैर-मुस्लिम की नजर पड़ जायेगी तो इस्लाम का खात्मा हो जायेगा। इसलिए उसे ढक कर रखते हैं। अतः ढकने वाला बाहर का कपड़ा आपको चोरस दिखाई देता है। आपको चित्र में उसके अन्दर का लिंग दिखाई नहीं देता। यह लगभग 50-52 फुट ऊँचा तो जरूर होगा।

भारत से मुझे दिव्य सुगंधी प्राप्त होती है।

—**पैगम्बर मुहम्मद**

× × ×

'समस्त संसार आलोक चाहता है। वह प्रतीक्षा में है। केवल भारत के पास है वह आलोक, जादू का, टोने का, या ओझा का नहीं, किन्तु सच्चे धर्म के भाव की महिमाओं की शिक्षा का सर्वोच्च अध्यात्मिक तत्त्व का है। इसीलिए तो भगवान् ने इस प्रजाति को आज तक समस्त सुख-दुःख में होकर जीवित रखा है। वह समय अब आ गया है।'

—**स्वामी विवेकानन्द**

विश्व इतिहास के चार पर्दे

प्रथम पर्दा

महात्मा ईसा के प्रति सबसे उत्तम श्रद्धांजलि उनके प्रति विवेक के पुष्पों की सुमनांजलि समर्पित करना ही है। मात्र अंधश्रद्धा पर आधारित कल्पना एवं रूढ़ियों के प्रचलित किस्से एवं रीति-रिवाज विवेक की कसौटी अथवा इतिहास के निकष पर झूठे सिद्ध हो जाते हैं। इसलिये झूठे फूलों से अपने इष्टदेवता की पूजा करना इष्टदेवता का मान न होकर अपमान ही है।

संसार के अनेक पश्चिमी देशों में मेरे अनेक ईसाई मित्र हैं। उनमें से अनेक पादरी, प्राध्यापक, विश्वविद्यालयों के कुलपति, पत्रकार एवं लेखक आदि हैं। उनमें से अनेकों के घरों में उनका आतिथ्य स्वीकार कर मैंने पश्चिम के विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिये हैं किन्तु मेरे विवेकपूर्ण विचारों को उन्होंने बड़ी सहृदयता के साथ ग्रहण किया है, चाहे इससे उनके चर्च द्वारा प्रसारित कल्पित विश्वास मेल न खाते हों। परंपरा के अनुसार वे मुझे विदेशों से क्रिसमस का अभिवादन भेजते रहते हैं और मैं भी उनके अभिवादन का प्रत्युत्तर अभिवादन से देता रहता हूँ। किन्तु विवेक की वाणी तथ्यों एवं शुद्ध विचारों को प्रकट करने के लिये सदा आग्रह करती रहती है। अतः अपने प्यारे ईसा को हम विवेक की पुष्पांजलि चढ़ाकर अपनी पूजा समर्पित करते हैं।

ईसा की ऐतिहासिकता

कुछ इतिहासकार एवं दार्शनिक यह विवाद खड़ा करते हैं कि क्या ईसा मसीह नामक कोई व्यक्ति इतिहास में हुआ या नहीं? बर्टन रसेल ईसा के ऐतिहासिक अस्तित्व में ही संदेह करते हैं। ईसा के जीवन के विषय में यहूदी साहित्य में कोई विशेष उल्लेख नहीं है। ईसा के शिष्य मार्क और मैथ्यू ने 60 ई. और 80 ई. के बीच सुसमाचार लिखे। शिष्य ल्यूक (Luke) और जोन ने 80 ई. और 100 ई. के बीच सुसमाचार लिखे। न्यू टेस्टामेण्ट के 26 अध्यायों में केवल यही चार ईसा के जीवन के विषय में है। जिन पर सारी ईसाईयत टिकी हुई है। यदि ये समाचार लेखक सच्चे हैं तो ईसा का लिखित जीवन सच्चा है अन्यथा नहीं।

विस्मय की बात यह है कि इन चारों में से कोई भी ईसा का समकालीन नहीं था। केवल उन्होंने जनश्रुति के आधार पर सुसमाचार लिखे।

फिर इनके लिखित जीवनवृत्त में बहुत बड़ी-बड़ी खाइयाँ भी हैं। ईसा के प्रथम वर्ष का वर्णन करने के बाद फिर वे 12वें वर्ष पर छलांग लगा जाते हैं। बीच के 11 वर्षों का कोई वर्णन नहीं। फिर एक बहुत बड़े कालखण्ड को छोड़कर ईसा के अंतिम दो वर्षों का वर्णन किया जाता है। इस प्रकार ईसा के 85 प्रतिशत जीवनवृत्त का बाइबिल कोई संकेत तक नहीं देती। पुनः इन जीवनी-लेखकों के वर्णनों में परस्पर मतभेद भी बहुत है। यह और भी अचंभे की बात है कि रोम के राजकीय अभिलेखों में ईसा को फांसी देने जैसी महत्त्वपूर्ण एवं रोमांचक घटना का कोई उल्लेख नहीं है। जबकि रोम के लोग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना को इतिहास के रूप में लिपिबद्ध करने वाले के रूप में प्रसिद्ध थे। जुड़िया के रोमन गवर्नर Pontius Pilatus ने रोम के सम्राट् Tibrius Caesar को इस विषय में कोई सूचना ही प्रेषित नहीं की। क्योंकि दो चोरों के साथ फांसी चढ़ने वाले बेचारे ईसा के विषय में सूचना देना आवश्यक ही नहीं समझा और रोमन सम्राट् ने भी इतनी दर्दनाक घटना के विषय में कुछ सुना ही नहीं। यदि गवर्नर व्यक्तिगत दूत द्वारा भी संदेश रोम भेजता तब भी स्थल मार्ग या जलमार्ग द्वारा महीने भर में संदेश रोम पहुँच ही जाता। किन्तु इतिहास को विस्मय है कि जिस रोम के शासन में ईसा को सूली पर चढ़ाया गया है उस रोम देश ने सबसे प्रथम सन् 313 ई. में ईसा और ईसाईयत के बारे में जानकारी प्राप्त की, जब रोम का राजा कांस्टेंटाइन (जो पहले सूर्य-पूजक था) ईसाई बना। इन सब तथ्यों से इतिहासकारों को संदेह पैदा होता है कि क्या ईसा वास्तव में ऐतिहासिक पुरुष थे अथवा जनश्रुति अथवा कल्पना के आधार पर माने हुए एक आदर्श नीति-द्रष्टा? मैं स्वयं इस मत का हूँ कि ईसा एक ऐतिहासिक पुरुष अवश्य थे किन्तु जीवनी लेखन में कल्पना, अंधविश्वास एवं विवेकहीन चमत्कार प्रदर्शन का विचित्र सम्मिश्रण हो गया है। इसी प्रकार इंग्लैण्ड के विश्वप्रसिद्ध इतिहासकार अरनाल्ड टॉयनबी (Arnold Toynbee) ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ—A Study of History के पृष्ठ 60 पर लिखा है—'इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि ईसा ईसवी संवत् के प्रथम वर्ष में पैदा हुआ था।' ईसा के प्रथम शती के प्रथम वर्ष में जन्म की यह मान्यता तो ईसवी संवत् की छठी शताब्दी तक प्रचलित भी नहीं हुई थी।

व्यक्तिनिष्ठ धर्म

ईसाईयत एक व्यक्तिनिष्ठ पंथ है। तत्त्वनिष्ठ नहीं है। यह विवेक से विचार करने का बिंदु है कि यदि ईसा की ऐतिहासिकता में ही संदेह पैदा हो जाये तो ईसाईयत का भवन स्वतः ही चरमरा कर गिर जायेगा। ईसाईयत के भवन की नींव ईसा की जीवनी है, न कि उनके उपदेश। जिन नैतिक सिद्धांतों का ईसा ने उपदेश

किया वे सब बौद्ध एवं सनातन हिन्दू धर्मग्रंथों तथा यहूदी धर्मग्रंथों में पहले से ही विद्यमान थे। अतः उन सिद्धांतों को मानकर और ईसा को इतिहासपुरुष न मानकर ईसाईयत एक पग भी नहीं चल सकती। न ईसा के पूर्वज ईसाई थे न स्वयं ईसा ही ईसाई थे। (वह तो यहूदी थे)। केवल उनके अनुयायी ही ईसाई कहलाये। H.G. Wells ने लिखा है—'सारे विश्व में आज तक केवल एक ही सच्चा ईसाई हुआ है जो क्रूस पर मर गया।' उसके मित्र ने टिप्पणी की—'वह भी ईसाई कहाँ था वो भी यहूदी ही था।' इसकी तुलना में यदि कोई तर्कपटु व्यक्ति राम और कृष्ण, मनु और मार्कण्डेय की ऐतिहासिकता के विषय में कितना ही संदेह पैदा करते रहे तब भी हिन्दू धर्म का बाल भी बांका नहीं होता, क्योंकि सच्चा धर्म सिद्धांतनिष्ठ होता है, व्यक्तिनिष्ठ नहीं। ईसा के मरने के सौ साल बाद उसकी जीवनी की कल्पित गाथा लिखने वालों और उस पर सैकड़ों वर्षों से रूढ़ियों एवं अंधविश्वासों के अंबार लगाने वाले धर्मध्वजी लोगों ने कभी यह नहीं सोचा कि ईसा के विश्वव्यापी सिद्धांतों को व्यक्तिनिष्ठ धर्म बनाकर वे स्वयं महात्मा ईसा के साथ ही कितना बड़ा अन्याय कर रहे हैं।

ईसवी कैलेंडर का गोरख-धंधा

ईसाई लोग मानते हैं कि ईसा का जन्म 4 B.C. में हुआ था। जब B.C. का अर्थ ही Before Chirst है तो क्राइस्ट के वास्तविक जन्म से चार वर्ष पहले ईसा का जन्म मानना कितना तर्कहीन प्रतीत होता है। ईसा से 56 वर्ष पहले रोम एवं सारे यूरोप में जूलियस सीजर का शासन था। वहाँ का कैलेंडर जूलियन कैलेंडर कहलाता था। जूलियस सीजर सूर्योपासक था। 313 ई. तक रोमन सम्राट् कान्स्टेंटाइन भी सूर्योपासक ही था। तब तक रोम में जूलियन कैलेंडर ही चलता था और 16 वीं सदी तक भी जूलियन कैलेंडर चलता रहा जिसमें प्रथम मास वसन्त सम्पात का चैत्रमास के समकक्ष मार्च मास ही था जो Mars (मंगलग्रह) के नाम पर था। तब दिसंबर (दस+अम्बर) दसवां मास, नवम्बर (नव+अम्बर), अक्टूबर (अष्ट+ अम्बर) आठवां मास, सेपटेम्बर (सप्त+अम्बर), छठे महीने का नाम हेक्सेम्बर था परंतु उसी मास में सम्राट् अगस्ट का जन्म होने के कारण उसे अगस्त प्रचारित किया गया। पाँचवें महीने का नाम पेटेम्बर (पंच+अम्बर) उसमें जूलियस सीजर का जन्म होने के कारण जुलाई नाम से प्रचारित किया गया। 1581 ई. में रोम के पोप ग्रेगरी ने वर्ष को 13 मार्च से पीछे खींचकर 1 जनवरी से प्रारंभ करने का राजकीय आदेश निकलवाया जिसका लोगों ने बहुत विरोध किया। उन्होंने पोप का घर जला दिया। पोप को जनआक्रोश से बचने के लिये जंगल में भागना पड़ा। अंत में परेशान होकर उसने आत्महत्या कर ली। उस पोप ग्रेगरी के नाम पर ग्रेगोनियन कैलेंडर नाम पड़ा। यही ईसाई कैलेंडर है। 16वीं शताब्दी तक इंग्लैण्ड

और अमरीका में दिसंबर को 10 वां मास ही गिना जाता था। सन् 1917 तक रूस और बलकान राज्यों में भी वर्ष का आरंभ मार्च से होकर दिसंबर दसवां मास ही था। बाद में सारे यूरोप की कालगणना में समानता लाने के लिये उन्होंने भी ईसाई संवत् मान लिया।

ईसा के जन्म की ऋतु का निर्णय—प्रश्न है कि क्या ईसा दिसंबर की कड़ाके की सर्दी में पैदा हुए थे। बाइबिल के अंतर्साक्ष्य से विदित होता है कि जब ईसा का जन्म हुआ तो गड़ेरिये अपने भेड़ों के समूह को लेकर रातभर खुले मैदानों में भेड़ों की निगरानी करते रहे (ल्यूक 2/8)। यह फलस्तीन में दिसंबर की कड़ाके की सर्दी में संभव ही प्रतीत नहीं होता। गड़ेरिये पहाड़ों से, अन्य शीत स्थलों से भेड़ों के समूह को 15 अक्टूबर को ले आया करते थे ताकि उन्हें आगामी भयंकर शीत से बचाया जा सके। बाइबिल के सोलोमन (2/11) तथा एजरा (10/9 तथा 13) के गीतों से प्रमाणित होता है कि उस देश में शीत ऋतु वर्षाप्रधान ऋतु थी जिसमें गड़ेरियों का भेड़ों सहित रातभर खुले मैदानों में रखवाली हेतु बैठे रहना संभव ही नहीं हो सकता था। वहाँ की प्रचलित प्राचीन प्रथा कि यहूदी लोग, जो अपनी भेड़ों को वसंतारम्भ के समय मैदानों एवं मरुभूमियों से बाहर ले जाया करते थे, वे वर्षा की प्रथम फुहार के साथ ही वापस घर ले आया करते थे। ऐसा बाइबिल पर एडम क्लार्क Commentary (Adam Clarke Commentary) V.S. पृष्ठ 386 पर वर्णन है। वर्षारंभ अक्टूबर और नवंबर के बीच 15 अक्टूबर से हो जाता था। प्रभु ईसा के जन्म के समय भेड़ें और गड़ेरिये रातभर मैदानों में रहे, यह मार्च से सितंबर के सुहावने समशीतोष्ण में ही हो सकता है। दिसम्बर के भयंकर शीत में कभी नहीं। इस प्रकार 25 दिसम्बर को क्रिसमस यानी ईसा की जयंती मानना इतिहास, भूगोल, प्रकृति और परंपरा सभी का तिरस्कार है।

क्रिसमस के विषय में पश्चिमी विद्वानों एवं विश्वकोशों का मत—Catholic encyclopedia स्पष्ट कहता है कि ईसा की वास्तविक जन्मतिथि ज्ञात नहीं है। न्यू टेस्टामेण्ट में 25 दिसंबर के जन्म का कोई संकेत नहीं है। संतपाल ने एक भविष्यवाणी की थी कि 25 दिसंबर को ईसा की जन्मतिथि मनाने का विचार कोरी कल्पना है, जो भविष्य में दुनिया को धोखे में डाल देगी।

Encyclopedia Britannica का कथन है कि क्रिसमस चर्च के सर्वप्रथम उत्सवों में नहीं था। इसका चलन न ईसा ने प्रारंभ किया, न ईसा के शिष्य-संतों ने। यह तो बाद में Paganism (गैर-ईसाई सूर्यपूजकों) से उधार ले लिया गया। Encyclopedia अमरीका का कथन है—ईसाई चर्च की प्रारंभिक शताब्दियों में क्रिसमस कभी नहीं मनायी गयी। क्योंकि ईसाई प्रथा महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के मृत्युदिवस मनाने की थी, न कि उनके जन्म दिवस। पाँचवीं शताब्दी में पश्चिमी

चर्च ने आदेश दिया कि प्राचीन रोम के नवसूर्य के जन्म एवं पूजा दिवस 25 दिसम्बर को ही ईसा के जन्मदिवस के रूप में मनाया जाय क्योंकि ईसा का वास्तविक जन्म दिवस ज्ञात नहीं है।

Schlaff Harzog Encyclopedia ने स्पष्ट लिखा है कि क्रिसमस उत्सव रोम में सूर्यपूजा के सबसे छोटे दिवस 24 दिसंबर के पश्चात् नये सूर्य के उदय की पूजा के पर्व 25 दिसंबर से ही लिया गया है।

Edwin Bevan ने अपनी पुस्तक Christianity in the Light of Mordern knowledge पृ. 103 पर लिखा है—इस बात में कोई संदेह नहीं है कि चर्च ने मित्रपूजा (सूर्य पूजा) के धर्म से ही 25 दिसंबर (सूर्य के जन्मोत्सव) के दिन को क्रिसमस का उत्सव नियत करने का विचार उधार लिया।

डॉ. राधाकृष्णन ने भी अपने ग्रंथ Recovery of Faith में इस उक्ति को उद्धृत किया है—प्रारम्भ में पश्चिम एवं मध्य-पूर्व के ईसाई प्रचारकों ने ईसा के जन्म सम्बन्धी इस मनगढ़न्त उत्सव का तीव्र विरोध किया। मेसोपोटामिया के ईसाइयों ने रोम के ईसाइयों पर आरोप लगाया कि वे ही मित्रपूजकों के मूर्तिपूजा एवं सूर्यपूजा का पाप कर रहे हैं।

ईसाईयत पर सूर्यपूजा का प्रभाव—यह इतिहास से प्रमाणित है कि ईसाईयत के प्रवेश (चौथी शती) से पहले सारे यूरोप में सूर्य पूजा चलती थी। रोम में उस युग का सबसे बड़ा सूर्य मंदिर था। जिसे आदित्यालय कहा जाता था। उसी आदित्यालय से दित्यालय, इतालय, इतालिया होते हुए पूरे इटली देश का नाम इतालिया रूढ़ हो गया।

यूरोप में प्रवेश से पूर्व बाइबिल से समर्थित शनिवार ही साप्ताहिक प्रार्थना का दिवस नियत था। सूर्यपूजकों को ठगने के लिये ईसाई पादरियों ने सूर्य के दिन रविवार को सूर्य मंदिरों में घुसकर ईसाईयत का प्रचार प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे सूर्य मंदिरों को ही रूपांतरित कर गिरजाघर बना दिया गया तथा रविवार ही साप्ताहिक प्रार्थना दिवस रूढ़ हो गया। सूर्यपूजकों का वर्ष का सबसे बड़ा महोत्सव 25 दिसम्बर का सूर्यपूजा महोत्सव था जो 18 सौ वर्ष पूर्व रोम में प्रचलित मकर संक्रांति पर्व ही था। सबसे छोटे दिन के पश्चात् मकर संक्रांति के नये सूर्य पर Birth of Sun God (सूर्य देवता का जन्म उत्सव) बड़े उत्साह से खान-पान एवं मोद-मंगल के साथ मनाया जाता था। रोमन लोगों को यह उत्सव अत्यंत प्रिय था। अतः पाँचवीं शती में इसी उत्सव को Birthday of the Son of God अर्थात् खुदा के पुत्र का जन्म दिवस कहकर प्रचारित किया जाने लगा।

अमरीका से प्रकाशित प्लेन ट्रूथ (Plain Truth) के अनुसार क्रिसमस ट्री (Chrismas Tree) की प्रथा बेबीलोनिया से उधार ली गई है। हजरत नूह का

बेटा हाम था। जिसके पोते ने Tower of Bubel प्राचीन बेबीलोनिया, प्राचीन निम्वे Ninebeh तथा बहुत से नगर स्थापित किये। वह भौतिक समृद्धि वाला राजा नास्तिक एवं दुराचारी था। उसने अपनी ही माता समीरा मिस Semira Mis से विवाह कर लिया। निमरोध की आकस्मिक मृत्यु के पश्चात् समीरा मिस ने प्रचारित किया कि निमरोध एक प्रेतात्मा बन गया है जिसके प्रभाव से सूखे हुए वृक्ष का ठूंठ रातोरात हरा हो गया। प्रतिवर्ष उनके जन्मदिन पर वह उस वृक्ष में प्रवेश करता है तथा बहुत से उपहार वृक्ष की टहनियों पर लटकाकर चला जाता है। संयोगवशात् निमरोध का जन्म भी 25 दिसंबर माना जाता था। कैथोलिक Tract Service मैगगो (कर्नाटक) द्वारा प्रकाशित Truth about Chrismas के अनुसार पापी निमरोध के पुनर्जन्म का प्रतीक है Chrismas Tree। रोम के लोगों ने प्रचारित कर दिया है। एक बनावटी वृक्ष घर-घर में सजा दिया जाता है जिस पर मिठाइयाँ, टाफियाँ लटका दी जाती हैं। जिसे बच्चे ईसा का उपहार मानकर खाते हैं। बेबीलोनिया के मूर्तिपूजकों ने निमरोध को Sun of Baal सूर्य का पुत्र कहकर प्रचारित किया। वे समीरा मिस और निमरोध को माँ और पुत्र के रूप में उसकी मूर्तियाँ बनाकर वृक्ष के आगे रखकर पूजते थे। उसी परंपरा को ईसाई संसार में क्रिसमस वृक्ष के आगे मरियम और ईसा की मूर्ति पूजा के रूप में देखा जाता है। मिस्र देश में भी 25 दिसंबर को Isis (स्वर्ग की माता) के पुत्र सूर्य का जन्मोत्सव मनाया जाता था।

अमरीका के एक विद्वान् ने विगत 20 वर्षों से घोषणा कर रखी है कि बाइबिल साप्ताहिक पूजा-प्रार्थना शनिवार के स्थान पर रविवार को करने का आदेश देती है जो यह सिद्ध करेगा उसे 20000 डालर नगद, पुरस्कार दिया जायेगा। मैंने 10 हजार रुपये नगद पुरस्कार उस व्यक्ति को देने की घोषणा कर रखी है जो इतिहास से यह सिद्ध कर देः

क. ईसा का जन्म 25 दिसंबर को हुआ था।

ख. ईसा के जन्म के पश्चात् प्रथम 2-3 शताब्दियों में कभी क्रिसमस महोत्सव मनाया गया।

ग. क्रिसमस का मूलस्रोत सूर्यपूजकों के प्राचीन मकर संक्रांति पर्व के अतिरिक्त कोई भी बाइबिल में वर्णित अन्य आधार है।

ईसा के चित्रों के मुखमण्डल के पीछे का ज्योतिमण्डल वास्तव में सूर्य का बिम्ब ही है। सप्ताह की शुरुआत रविवार से करना भी सूर्यपूजा का ही प्रभाव है। जिस प्रकार मकर संक्रांति पर तिल और गुड़, नयी फसल के अनाज के खील (लाई) आदि मित्रों को भेंट किये जाते हैं वैसी ही प्रथा रोम में थी जहाँ खजूर, अंजीर, मेवे, भुने हुए अन्न, मधु आदि परस्पर भेंट किये जाते थे। आज तक

क्रिसमस के अवसर पर मित्रों के मिलने का परस्पर अभिवादन-अभिनंदन करने और क्रिसमस उपहार बांटने की प्रथा चली आ रही है। रोम में बाल-रवि की छोटे से बालक के रूप में मूर्ति बनाकर भी पूजी जाती थी। ईसा की शिशु रूप मूर्तियाँ उसी की अनुकृति है। सूर्य संसार की महान ज्योति है। ईसा को दिव्य ज्योति, पवित्र ज्योति, विश्व ज्योति कहकर प्रचारित किया गया। महाज्योति सूर्य को दीपक और अगरबत्ती दिखाकर पूजा की जाती थी। इसी से सूर्य को दीपक दिखाना मुहावरा चला। रोमन कैथोलिक मंदिरों में ईसा की मोमबत्तियों एवं अगरबत्तियों से पूजा चल रही है।

ईसा के मानस पर भारतीय प्रभाव

यह निम्न बिंदुओं में दर्शाया जा सकता है—

1. ईसा के पूर्व मध्य-पूर्व देशों में भारतीय प्रचारक।
2. ईसा के देश में भारतीय आर्यों का शासन।
3. क्या ईसा स्वयं भारत में शिक्षा पाने आये?
4. क्या ईसा का स्वर्गवास भारत में ही हुआ?
5. ईसा के संदेश पर गीता की छाप।
6. ईसा के दर्शन पर बौद्ध धर्म की छाप।

ईसा से पूर्व मध्य-पूर्व देशों में भारतीय प्रचारक

पुरातत्त्व ने सिद्ध कर दिया है कि ईसा से दस शताब्दी पूर्व भी भारत का मध्य-पूर्व एवं यूरोप के साथ व्यापारिक एवं सांस्कृतिक संपर्क हो चुका था। सिन्धु के मुहाने से फारस की खाड़ी के बीच समुद्री जहाजों का आना-जाना चलता रहता था। भारत के पश्चिमी तट के लोग पूर्वी मध्यसागर क्षेत्र के लोगों को जानते थे। इन जलयानों में भारत से हाथीदांत, मोर, लंगूर, सागवान की लकड़ी, मोती, मलमल आदि राजा सोलोमन Solomon के महलों और मंदिरों की सजावट के लिये जाते ही थे। साथ में सांस्कृतिक दूत भी जाते थे जो वहाँ के दरबारों में भारतीय संस्कृति व तत्त्वज्ञान का आख्यान करते थे।

मिस्र के टेल अर्मना (या तल्ल-अल-अर्मन) Tell-el-Amarna के स्थान पर खुदाइयों में ऐसी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है जो उस क्षेत्र में आर्यशासकों के शासन को असंदिग्ध रूप से सिद्ध करती है। वहाँ सम्राट् नूतन खामुन के पिता अखनेतन का प्राचीन अभिलेख मिला है जिसमें पश्चिमी एशिया के आर्यशासकों को दशरथ, शत्रुघ्न, वसिष्ठ, स्वरदत्त, वीर्यसेन, इन्द्रोता, वीरदेव आदि कई शासकों के पत्र मिले हैं जो उन्होंने मिस्र के सम्राटों को लिखे थे। ये पत्र ईसा के

जन्म से 1500 वर्ष पहले के हैं। ये पत्र मिट्टी की पकाई हुई तख्तियों पर अंकित हैं, यह ब्रिटिश म्यूजियम, पैरिस म्यूजियम, बर्लिन और काहिरा के म्यूजियम में सुरक्षित हैं।

मध्य एशिया में एक प्रजाति थी जिसका नाम कस्साइत कस्सी जाति प्रसिद्ध था। इसने बेबीलोन को जीतकर उसे अपनी राजधानी बनाया। यह 16वीं सदी ईसा-पूर्व की घटना है। इस प्रजाति के देवता 'सूर्य' और 'मरुत्' आदि वैदिक देवता थे। इसके उत्तर-पश्चिम में दो अन्य प्रजातियाँ मित्तनी और खत्तनी—दोनों आपस में झगड़ा करती रहती थी। 1380 ई. पूर्व में मित्तनी जाति के राजा दशरथ के पुत्र मतिउत तथा खत्ती जाति के राजा सुबुलुलिम के बीच संधि हुई। यह संधि मिट्टी की तख्तियों पर उत्कीर्ण है। इन पट्टियों पर सन्धि के साक्षी के रूप में मित्र, वरुण, इन्द्र और नासत्यों—इन देवताओं का उल्लेख है। इन देवताओं के नामों को लिखा भी अपने विशेष ढंग से गया है। मित्र को मि-इत् अस्, वरुण को व-अर-ख उण-अस, इन्द्र को इन-द-र, नासत्यों को ना-स-अति-इय—इस प्रकार लिखा गया है। वैदिककाल में वैदिक पदों को इस प्रकार लिखने की प्रथा थी जो अब तक दक्षिण भारत में प्रचलित है। 1907 ई. में जर्मन विद्वान Hugo Binclar ह्यूगो बिंकलर मध्य एशिया में बोघजकोई (Boghazkoi) नामक स्थान पर खुदाई करवा रहे थे। जहाँ ये मिट्टी में पकी संधि-तख्तियाँ प्राप्त हुईं।

इस खोज ने आर्य जाति के प्राचीन इतिहास के विषय में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। तब तक यह माना जाता था कि प्राचीन काल में पश्चिमी एशिया में सेमेटिक जातियाँ ही शासन करती थी किन्तु इस सन्धिपत्र ने सिद्ध कर दिया कि आर्य लोग पश्चिमी एशिया तक पहुँचे थे। वहाँ उन्होंने अपने राज्य स्थापित किये थे और वैदिक देवता पूजे जाते थे।

एक और रोचक तथ्य प्रकट होता है कि जहाँ संसार के अन्य धर्मों के देवता परस्पर लड़ाते हैं, एक-दूसरे का रक्त पीने को उकसाते हैं वहीं भारत के देवता संधि करने वाले शांति के देवदूत समझे जाते थे। बड़े-बड़े सम्राट् उनकी शपथ ग्रहण करते थे। टेल अर्मना की तख्तियों में प्राचीन राजकुमारों के नाम बिरिदस्व, सुवरदत, यसदत, अर्तमन्य आदि नाम संस्कृत नामों के अपभ्रंश हैं। ये राजा ईरानी नहीं हो सकते, क्योंकि यदि ये ईरानी होते तो 'अस्व' शब्द 'अस्प' हो जाता परन्तु ऐसा नहीं हुआ।

मोहनजोदड़ो की सिंधु घाटी सभ्यता की खुदाई से यह बात प्रमाणित हो चुकी है कि सिंधु तट की सभ्यता मेसोपोटामिया की सभ्यता से मेल खाती है। मित्तनी भाषा संस्कृत से समानता रखती है। उनके राजाओं और देवताओं के नाम भारतीय

हैं। एक खेल में दौड़ने के खेल का वर्णन है। बोघजकोई में मिट्टी की तख्तियों पर उत्कीर्ण एक पुस्तक भी मिली है। जिसका विषय है—रथ-चालन। यह पुस्तक मित्तनी प्रजाति के किक्कुली नामक व्यक्ति ने लिखी है जो अश्वविद्या एवं रथ संचालन का विशेषज्ञ था। इस पुस्तक में पहियों के घूमने के लिये 'आवर्त्तन' शब्द का प्रयोग किया गया है जो संस्कृत का 'आवर्त्तन' ही है। इसी प्रकार इस पट्टी पर एक चक्कर के लिए 'एक वर्तन्न', तीन चक्करों के लिये 'तेरवर्तन्न' पाँच चक्करों के लिये 'पंच-वर्तन्न', सात चक्करों के लिये 'सत्तवर्तन्न' शब्दों का प्रयोग किया गया है। इससे भी सिद्ध होता है कि मध्य-एशिया की इस मित्तनी प्रजाति की भाषा संस्कृत से मिलती-जुलती है।

एशिया माइनर में एक अन्य जाति थी—खत्ती। यह क्षत्री या खत्री का ही अपभ्रंश है। जर्मन विद्वान हान आपेन हेन ने खोजा है कि हितायत या खत्ती जाति की भाषा पर आर्यभाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। खत्ती राज्य के राजाओं व अन्य व्यक्तियों के नाम 'स्वर्दत्त', 'सुबन्धु', सतुवरा, इंद्रन्रूत, वीरसेन, अर्तदम, सुमित, रस आदि किये गये हैं, जो स्वर्दत्त, सुबन्धु, सत्वर, इन्द्रोत, ऋतदमन तथा सुमित्र के रूपांतर हैं। इसमें संदेह नहीं कि खत्ती जाति के ये नाम 'आर्य' होने का संकेत करते हैं। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार गान्धार के ऐलवंश की एक शाखा ने पश्चिम में जाकर अपने राज्य स्थापित किये थे। यदि तुर्की की इन प्राचीन खत्ती और मित्तनी जातियों का सम्बन्ध वैदिक युग के भारतीय आर्यों के साथ हो तो इसे असंभव नहीं कहा जा सकता। हितायत (खत्री) लोगों में मित्र, वरुण आदि वैदिक देवताओं का वर्णन है। सीरिया से एक हितायत राजा का एक सिक्का प्राप्त हुआ है। इसके एक ओर सिंहारूढ़ देवी, दूसरी ओर वृषभारूढ़ देवता का चित्र है। इसमें कोई संदेह नहीं ये भवानी और महादेव ही हैं। बोकासकोय में हितायत लोगों द्वारा पत्थर पर तराश कर बनाई हुई एक मूर्ति मिली है जिसमें एक त्रिशूलधारी देवता है, पास में एक देवी है उसके सामने सिंह खड़ा है। देवी और देवता दोनों के बीच एक बच्चा बैठा हुआ है। यह चित्र शिव, पार्वती और स्कंद (कार्त्तिकेय) का है। वहाँ भारत की चातुर्वर्ण्य व्यवस्था भी प्रचलित थी। इनके पांव में पहनने के जूतों का अग्रभाग भारत की प्राचीन जूतियों के समान आगे से उठा रहता था। इस प्रकार एशिया माइनर की हितायत जातियों में भी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव अति प्राचीनकाल से प्रमाणित होता है। (वृहत्तर भारत—लेखक चन्द्रगुप्त विद्यालंकार; पृ. 310 में)

इन तथ्यों का वर्णन श्री शिशिरकुमार मिश्र ने अपनी पुस्तक Vision of India में, डॉ. कालीदास नाग ने Greater India में, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने अपने वृहत्तर भारत में, डॉ. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार ने वैदिक संस्कृति का मूल

संदेश में, श्री यमुना अख्तर ने अपने शोधलेख ईसाई धर्म का जन्म वेदांत और बौद्धदर्शन से (राष्ट्रधर्म, दिसम्बर, 81 में), डॉ. आर. मजुमदार, डॉ. रघुवीर, डॉ. हरिदत्त वेदालंकार आदि ने भी किया है।

टेल अर्मना के पत्र संख्या 271 और 290 में स्पष्ट उल्लेख है कि प्राचीनकाल में सीरिया की राजधानी दमिश्क पर ईसा से 1500 वर्ष पूर्व वीरदेव का शासन था और ईसा के जन्मस्थान बेथलहम पर स्वरदत्त नामक आर्य राजा का शासन था। वे वैदिक देवताओं इन्द्र, वरुण, मित्र, अश्विनीकुमारों की पूजा करते थे।

बाइबिल के अंतर्साक्ष्य से पता चलता है कि हजरत इब्राहीम ने अपनी पत्नी की कब्र के लिये खत्री (क्षत्री) अर्थात् हितायत से भूमि ली थी।

इजराइल के पूर्वी ओर सटा हुआ देश मेसोपोटामिया है (जहाँ बोघजकोई की खुदाई में भारतीय आर्य राजाओं के शासन के प्रमाण मिले हैं) तथा पश्चिम की ओर सटा हुआ मिस्र देश है, जहाँ टेलअर्मना में मिट्टी की पकी हुई तख्तियों पर लिखे वे पत्र मिले हैं जो मेसोपोटामिया के आर्यशासक वीरदेव, स्वरदत्त आदि मिस्र के सम्राटों को लिखते थे। इजराइल से उत्तर की ओर सीरिया देश है जहाँ आर्य राजा वीरदेव का शासन था। स्वयं इजराइल में ही स्वरदत्त का शासन था। इजराइल से दक्षिण-पूर्व की ओर जार्डन और अरेबिया आदि राज्य हैं। बाइबिल के युग में जार्डन इजराइली साम्राज्य का अंग था। कुछ समय तक रोम साम्राज्य का अंग रहा है। सन् 750 में अरबों ने इसे जीता उससे पूर्व यह सीरिया का भाग था, जिस पर मिस्र के खलीफाओं का शासन था। वहाँ की पीले रंग की मिट्टी वाली नदी के कारण इसे जार्डन (जर्द रंगवाला) कहा जाता था। अरबी में इसे सरकेजरदुन कहा गया। उसी से जार्डन नाम बन गया। सन् 1923 में स्वाधीन राज्य बना। बाइबिल काल से पूर्व जब यह सीरिया का अंग था तब वहाँ वीरदेव का शासन था।

इस प्रकार ईसा के देश इजराइल के चारों ओर सभी देशों में और स्वयं ईसा की जन्मभूमि में भी भारतीय प्रभाव स्पष्ट रूप से विद्यमान था। मिस्र- देश का नाम ही संस्कृत भाषा का है। यह किसी सेमेटिक या यूरोपीय भाषा का शब्द नहीं है। मंडन मिश्र से लेकर वाचस्पति मिश्र तक भारत में श्रेष्ठ तत्त्ववेत्ता ब्राह्मणों की उपाधि मिश्र रही है। वहाँ की सर्वप्रसिद्ध नदी (मिस्र की गंगा) का नाम नील भी संस्कृत नाम है। गंगा की नील धारा के समान नील नदी भी मिस्र की सर्वप्रसिद्ध-सर्वपूज्य नदी है। यह शब्द भी संस्कृत के सिवा किसी अन्य शब्द-भण्डार से नहीं आया। लैटिन भाषा नाईल (Nile), एनीलीन (Aniline) आदि शब्द भी संस्कृत के नील शब्द से ही निकले हैं। भविष्य पुराण में मुनि कश्यप और कण्व मुनि का मिस्र देश में जाना प्रमाणित होता है।

वेदमूर्ति श्रीपाद् दमोदर सातवलेकरजी ने लिखा है मिस्र देश के पिरामिड में एक लकड़ी की मूर्ति मिली है। इस मूर्ति पर गीता के 'जीवभूत सनातनः, शरीरमवाप्नोति यच्चाच्युत्कामति'—इस श्लोक का शब्दशः अनुवाद मिला है। इस मूर्ति के साथ जो वस्तुएं उस कब्र में मिली वे भारतीय वस्तुएं थीं। (देखें, अमरीकन नेशनल जीओग्राफिकल मेगजीन, अक्टूबर, 1941 का अंक।)

जीव दूसरा जन्म लेता है, यह पुनर्जन्मवाद मिस्रवासियों के तत्त्वज्ञान में नहीं था, इसलिए मुर्दे को सुखाकर रख देते थे। ऐसे देश की कब्र में भारतीय वस्तुओं के साथ भारतीय विचार, गीता का विचार मिलना एक आश्चर्यजनक बात है। यह अनुवाद गीता के श्लोक का ही है क्योंकि ऐसा वचन दूसरी जगह में नहीं है। यह कब्र विक्रमादित्य से पूर्व के तीन सहस्र वर्षों के समय की है (गीता का राजकीय तत्त्वालोचन पृ. 7)।

मिस्र देश में सूर्य पूजा प्रचलित थी तथा अनेक मिस्री और भारतीय देवताओं के नाम मिलते-जुलते हैं। मिस्र देश की जमीन लगभग 10 हजार वर्ष पुरानी है। वहाँ की सभ्यता जो लिखित प्रमाणों से सिद्ध होती है 7429 वर्ष पुरानी है। भारतीय वैदिक सभ्यता इससे बहुत अधिक पुरानी है।

मिस्र देश के पिरामिडों में वहाँ के राजाओं के शव मसाले लगाकर रखे जाते थे, जिनके साथ बहुत सा सोना-चांदी, रत्नभण्डार, दास-दासियाँ, घोड़े आदि भी पिरामिड में गाड़ दिये जाते थे। सोने की लूट के लोभ से भी मिस्र देश पर आक्रमण हुए तथा पिरामिड उजाड़े गये। उससे बहुत-सी भारतीय प्रभाव की बातें पुनः प्रकाश में आयी। शव को अनेक मसाले लगाये जाते थे। उन शवों में नील-रंग भी लगा हुआ है। नील भारत से ही जाता था, जिसे इन्डिगो अर्थात् भारत से जाने वाला पदार्थ कहा जाता था। नील नदी के नाम के समान उस कपड़ों को लगाने वाले नील को भी हिन्द का नील कहा जाता था। इसका अनुवाद कर यूरोप की भाषाओं में Indico (इंडिको) शब्द बना लिया। भारत के अतिरिक्त संसार के किसी भी अन्य देश में नील की खेती नहीं होती थी तथा आज तक कहीं अन्यत्र नील का पौधा नहीं पाया जाता। शवों को गाड़ने के लिये जो लकड़ी के बक्से बनाये जाते थे वह सागवान और इमली की लकड़ी के होते थे। सागवान भारत से निर्यात होता था। इमली की लकड़ी का नाम मिस्र एवं अरब की भाषाओं में तमरे-हिन्द है। जिसका शाब्दिक अर्थ है हिन्द की लकड़ी। उससे यूरोप की भाषाओं में टेमेरिन नाम रूढ़ हो गया। जिस महीन मलमल में शव लपेटे जाते थे वह भी भारत से निर्यात होती थी। सिंधु नदी के मुहाने से विदेशों में निर्यात होने के कारण उसे सिंधु कहा जाता था। उसी से सिन्दोन, सॉटोन, कॉटन शब्द बने। नील नदी के स्रोत की खोज एक कठिन कार्य था। इस खोज में लेफ्टिनेंट कर्नल स्पेक (Speke) को सबसे अधिक सहायता

कर्नल विल्फोर्ड (Wil Ford) द्वारा लिखे हुए हिन्दू पुराणों के ग्रंथ से मिली। पुराणों में नील नदी के स्रोत का जो वर्णन था उसके आधार पर एक मानचित्र बनाकर खोज की गई, वो सफल हुई। कर्नल स्पेक ने अपने ग्रंथ Discovery of Sources of Nile में लिखा है—नील नदी के मूलस्रोत के विषय में पुराणों का वर्णन बहुत सही था। नेशनल म्यूजियम काहिरा में एक ब्राह्मीलिपि में लिखित प्राचीन उत्कीर्ण लेख मिला है जिसे हमारे मित्र डॉ. डब्ल्यू. एस. वाकणकर ने खोजा तथा प्रकाश में लाये हैं। इससे 2000 वर्ष पूर्व भारत और मिस्र के व्यापारिक सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है। इसकी भाषा पाली है। जिस पर स्थानीय भाषा का भी प्रभाव है। इसकी लिपि ब्राह्मी है जो देवनागरी लिपि की आदि-जननी कही जा सकती है।

मिस्र देश की भाषा पर भारतीय प्रभाव

हेमिटिक भाषाओं में से इस समय केवल मिस्र की ही भाषा सुरक्षित पाई जाती है। यहाँ थोड़े से उसके भी नमूने दिखलाना चाहते हैं, जिससे स्पष्ट हो जाएगा कि वह भी मूल भाषा नहीं प्रत्युत अपभ्रंश ही है।

संस्कृत	**मिस्र की भाषा**	**अर्थ**
आदि	आत	आरम्भ
अक	अक	मोड़ना
अक्ष	अख	देखना
अन्त	अन्तू	सीमा
अपूप	पूपू	रोटी
आप	आप	पानी
अर्म	रेम	रोना
आत्मा	आत्मु	सातवें सृष्टि का
दिव	तेप	आकाश
नर	त्रा	मनुष्य
नाश	नाशेष	नाशेष
परि	परि	चारों ओर
पूर	पूर	बाहर निकालना
पुष्प	पुष	फूल
रसना	रस	जिह्वा
सेवा	सेव	पूजा

संस्कृत	मिस्र की भाषा	अर्थ
श्वेत	हूत	सफेद
उषा	उषा	प्रातःकाल
वास	आस	घर
क	क	आत्मा
चन्दन	सन्दल	Sandal
कपि मर्कट	(काफू?)	बन्दर Monkey
हर	हर	शिव
सूर	सुर	सूर्य
मातृ	मत	माता
दिनेश	दायनेशिमस	सूर्य
ओम्	आमन्	ईश्वर का मंगल सूचक नाम
विष्णु	वेस्	पालनकर्ता
ईश	इसिन	ईश्वर
शक्ति	सकित	शक्ति
नील	नील (नदी)	कुरुवंशी राजा नील के
कृष्ण नील		नाम पर Indigo
	तमेर हिन्द	इमली
	सिन्धु	भारत की मलमल
शाकवन	सागवान	सागवान की लकड़ी आबनूस की लकड़ी
म्यूर		मोर
अरिशा (तमिल)		चावल Rice

(क) **यूनान पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव**—जिस प्रकार मिस्र मध्य-पूर्व का प्राचीनतम देश माना जाता है, यूनान यूरोप का प्राचीनतम देश एवं सारे पश्चिम का सांस्कृतिक-गुरु माना जाता है।

(ख) यूनान देश का भारतीय वाङ्मय में उल्लेख।

(ग) पाइथोगोरस के मानस पर भारतीय प्रभाव।

(घ) आत्मा की अमरता का सिद्धांत। सुकरात के मानस पर भारतीय प्रभाव। प्लेटो के दर्शन पर भारतीय प्रभाव। अरस्तू द्वारा सिकन्दर को भारत से भगवद्गीता

और संत लाने का आग्रह। यूनान के मानस पर भारत का आकर्षण। सिकंदर के भारत पर आक्रमण के समय के अनुभव। यूनानी यात्रियों एवं इतिहासकारों का भारत के विषय में वर्णन। सिकंदर के भारत पर आक्रमण के समय अन्य यूरोपीय देशों की दशा। न्यू प्लेटोनियन दर्शनधारा पर भारतीय प्रभाव।

प्राचीन अर्मेनिया के कृष्ण मंदिर Hercules के चरित्र पर श्रीकृष्ण और बलराम की कथा का प्रभाव। सभ्यता, संस्कृति और विज्ञान के क्षेत्र में भारत एवं यूनान का आदान-प्रदान। ईसा से पूर्व इजराइल एवं मध्य-पूर्व में तीन प्रकार के प्रचारक—एसिन (सनातन धर्मी साधु, साधूसिज Sadducees (जैन साधु), थेरापुत (बौद्ध साधु) स्थविरपुत्र (यह पाली के थेरपुत्र का अपभ्रंश है।)

ईसा के मानस पर गीता का प्रभाव

मध्य-पूर्व में गीता के अवतार सिद्धांत का प्रभाव—महात्मा ईसा का नाम जीसस, जो धीरे-धीरे यीशू, ईसा आदि रूढ़ हो गया। क्राइस्ट उनका नाम न होकर (Title) उपनाम या उपाधि मात्र था। कृष्ण से कृष्टो शब्द बना। कृष्ण और ईसा के चरित्र वर्णन में समानता। ईसाई पादरियों द्वारा गीता को बाइबिल के Sermon of Mount के बाद का, उससे प्रभावित बतलाना। गीता और बाइबिल में समानता। लोकमान्य तिलक द्वारा पादरी लारेन्सर को उत्तर। ईसा के मानस पर बौद्धमत का प्रभाव। अशोक द्वारा मध्य-पूर्व में बौद्ध भिक्षुओं को भेजना और बौद्ध और ईसा के चरित्र में समानता।

यूनान पर भारतीय संस्कृति का प्रभाव

मिस्र जिस प्रकार मध्य-पूर्व का प्राचीनतम देश माना जाता है, यूनान यूरोप का प्राचीनतम देश एवं सारे पश्चिम का सांस्कृतिक-गुरु माना जाता है। जिस प्रकार भारत एशिया का हृदय है, यूनान यूरोप का हृदय है। भारत से अपरिचित यूरोपवासी यूनान को ही विश्व संस्कृति का प्रथम पालना मानते हैं। इतिहास की निष्पक्ष खोज करने पर ज्ञात होता है कि भारत ही विश्व संस्कृति का प्रथम पालना रहा है तथा यूरोप का गुरु यूनान अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों में भारत से प्रभावित और भारत का शिष्य रहा है। यूनान की सभ्यता-संस्कृति का स्वतंत्र विकास एवं भारत से भिन्नता भी महत्त्वपूर्ण है।

यूनान देश का भारतीय वाङ्मय में उल्लेख

यूनान का मूल नाम यवन देश है। यूनानी लोग स्वयं अपने देश को Ionia (यवनिया) कहते हैं। महाभारत काल में कालयवन नाम का पश्चिमी आक्रान्ता कंस की मृत्यु के बाद और जरासंध के अनेक बार हारने के बाद जरासंध की

सहायता करने के लिये बड़ी सेना लेकर भगवान श्रीकृष्ण पर आक्रमण करने के लिये आया। उसके सैन्य-बल का इतना आतंक था कि भगवान श्रीकृष्ण को भी उससे प्रत्यक्ष युद्ध न करके रण छोड़कर भागना पड़ा तथा भगवान ने अपनी युक्ति से एक गुफा में सोये हुए राजा मुचकुन्द पर अपना पीताम्बर डाल दिया और स्वयं छिप गये। कालयवन द्वारा मुचकुन्द को पांव की ठोकर मार कर जगाते ही उसके नेत्रों की अग्नि से कालयवन भस्म हो गया। भविष्यत् में यवनों के भावी आक्रमणों से भारत को बचाने के लिये भगवान श्रीकृष्ण ने पश्चिमी समुद्रीतट पर सागर के मध्य द्वीप में द्वारिका नगरी बसायी। महाभारत के युद्ध में भी कई यवन सैनिक एवं राजा भाग लेने के लिये आये। ऐतिहासिक काल में सिकन्दर का भारत की ओर अभियान बड़ी प्रसिद्ध एवं महत्त्वपूर्ण घटना मानी जाती है। किन्तु उससे बहुत पहले से भारत एवं यवन देश के सम्बन्ध बन चुके थे।

भारत एवं बावेरू (यूनान) का व्यापारिक सम्बन्ध

बावेरू (यूनान)—बावेरू जातक नामक पाली पुस्तक में (500 ई. पूर्व) भारतीय व्यापारियों द्वारा बावेरू के बाजारों में मोर ले जाने का उल्लेख है। बावेरू की भाषा में मलमल का नाम सिंधु है। चावल, मोर, चंदन जैसी विशिष्ट वस्तुओं का ज्ञान यूनानियों को भारत के तमिल नामों से था। क्योंकि भारत और बावेरू के बीच व्यापार (480 ई. पूर्व) बंद हो चुका था। इसलिये यह मानना पड़ेगा कि ये वस्तुएं बहुत पहले भारत से बावेरू पहुँच चुकी थी। मिस्र के उत्तर में यूनान देश है जिसका एक राज्य बबिरिया कहलाता था। इसी का भारतीय नाम बावेरू था।

प्राचीन तमिल कवि यवन जलपोतों की चर्चा करते हैं। जो तमिल देश के बंदरगाहों में स्वर्ण और मदिरा लेकर आते थे तथा भारत के गरम मसाले खरीद कर बदले में स्वर्ण और मदिरा भारतीय व्यापारियों को मूल्य के रूप में देते थे।

छठी-सातवीं शती पूर्व के सम्बन्ध

मैक्समूलर, Garbe और Winternitz स्वीकार करते हैं कि यूनान में 600 ई. पूर्व से ही भारतीय विद्वान् ब्राह्मण बसे हुए थे। पाणिनि (ई. पूर्व छठी या सातवीं शताब्दी) की पुस्तक में यवनानी लिपि का उल्लेख है, जिससे यह अनुमान होता है कि इससे पूर्व भारत और यूनान का सम्बन्ध हो चुका था।

होमर के मानस पर भारतीय महाकाव्यों का प्रभाव

यूनान के सबसे महान् महाकाव्य लेखक होमर अंधे, प्रज्ञाचक्षु कवि थे। उन्होंने दो महाकाव्य लिखे—इलियड और ओडिसी। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इलियड की कथा रामायण से ही उधार ली गयी

है। रामायण लंका विजय का महाकाव्य है। राम+अयन का एक अर्थ है राम का सैनिक अभियान। दूसरा अर्थ राम का धाम।

रामायण	**इलियड**
1. रामायण, लंका विजय का महाकाव्य है। राम+अयण का एक अर्थ है राम का सैनिक अभियान। दूसरा अर्थ है राम का धाम। लंका—तिब्बती एवं अनेक वनवासी भाषाओं में लंका का अर्थ ही द्वीप है।	1. यूनानी महाकाव्य इलियड का नाम Ilium इलियम से बना है। जिसका अर्थ है Troy (Troy द्वीप की विजय)। इलियड में एशिया माइनर के Troy द्वीप पर यूनानियों की विजय का वर्णन है।
2. राम व लक्ष्मण में परस्पर अतीव प्रेम है।	2. Sparta के दो राजपुत्रों Manalus और Agamemnon में परस्पर प्रेम है।
3. दशरथ की आज्ञा से वनवास।	3. पिता Argal ने राज्य से निकाल दिया।
4. राम ने सीता को स्वयंवर में जीता। सीता विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुंदरी है। जिसके रूप का वर्णन करने में तुलसीदासजी लिखते हैं—गिरा अनयन नयन बिनु बानी। (1-228/2 मानस) इसे प्राप्त करने के लिये लंकाद्वीप का रावण ललचाता रहता है।	4. Manalus ने हेलेन को स्वयंवर में जीता, जिसके रूप-सौंदर्य का वर्णन करने वाला महाकवि स्वयं अनैन है। इसे प्राप्त करने के लिये Troy द्वीप का राजकुमार पेरिस Paris सदा ललचाता रहता है।
5. लंका समुद्र के बीच स्वर्णिम द्वीप है।	5. Troy समुद्र पर ऊँचे महल वाला द्वीप है।
6. लंका में विश्रवा की राक्षस-पत्नी से उत्पन्न बलशाली पुत्र रावण का राज्य था।	6. Troy में राजा Priam का पुत्र पेरिस बड़ा घमण्डी था।
7. राम की अनुपस्थिति में रावण सीता को चुरा ले गया।	7. Manalus की अनुपस्थिति में Troy का राजकुमार पेरिस हेलेन को चुरा ले जाता है।

8. राम वनवासियों की विशाल सेना लेकर लंका को घेर लेते हैं।	8. Manalus ग्रीक राजकुमारों की 1200 जहाजों का बेड़ा लेकर Troy को घेर लेता है।
9. रावण का भाई विभीषण रावण के पापों से सहमत नहीं था।	9. Troy का बुद्धिमान Antenar एण्टेनर पेरिस के कुकृत्यों से सहमत नहीं।
10. विभीषण रावण को उपदेश देता है कि सीता को लौटा दे।	10. एण्टेनर पेरिस को उपदेश देता है कि हेलेन को लौटा दे।
11. विभीषण रावण को छोड़कर राम से जा मिलता है।	11. एण्टेनर पेरिस को छोड़कर Manalus के साथ जा मिलता है।
12. विभीषण राम की सेना को बचाता है तथा रावण की मृत्यु की युक्ति बतलाता है।	12. एण्टेनर न होता तो Manalus मारा जाता।
13. युद्ध में रथ तथा घुड़सवार, दैवी अस्त्रों का प्रयोग।	
14. मेघनाथ के बाण लौट आते थे।	14. Troy के सेनापति के बाण लौट आते थे।
15. हनुमानजी की गर्जना से आतंक छा जाता था।	15. ग्रीक योद्धा Achilles की गर्जना से आतंक छा जाता था।
16. हनुमान ने लंका तोड़ डाली।	16. Troy के लौहद्वार को तोड़ा।
17. हनुमान ने बहुत विशाल और बहुत सूक्ष्म रूप बनाकर सुरसा को पराजित कर, लंकिणी एवं अक्षयकुमार को मारकर युक्ति से लंका की दुर्गप्राचीर के भीतर प्रवेश किया।	17-18. Colysseus ने एक विशाल लकड़ी का घोड़ा बनाने की युक्ति बताई जिसके भीतर बैठे हुए ग्रीक योद्धा घोड़े के साथ ही Troy में प्रविष्ट हो जाएं।
18. भारी पत्थरों एवं वृक्षों से भी युद्ध हुआ। तलवार, भाला एवं धनुषबाण का भी प्रयोग हुआ।	
19. कुंभकर्ण जब युद्ध भूमि में गिरा तो बड़ी संख्या में सेना नीचे दबकर मर गई।	19. Troy का वीर मार्स Mars जब मरकर गिरा तो सात एकड़ जमीन घिर गई।

20. देवता आकाश में युद्ध देखने के लिये प्रकट हुए।	20. देवता आकाश में दर्शक।
21. हनुमान के अंग वज्र के थे।	21. Anchilles के अंग वज्र के थे।
22. रावण मरता नहीं था। उसके उदर में अमृत कुंभ था। पेट में बाण लगने से मरा।	22. बाण शरीर पर लगकर टूट जाते थे।
23. महाभारत कथा में दुर्योधन की माता गांधारी ने दुर्योधन के नग्न शरीर को देखने मात्र से उसे वज्र के समान अंग वाला बना दिया था। उसके शरीर पर गदा पड़ने पर टूट जाती थी किन्तु उसका कुछ भी नहीं बिगड़ता था। केवल गुप्त-अंग को लंगोट से ढक लेने के कारण ही अंग दुर्बल रह गया था। श्रीकृष्ण के संकेत पर भीम ने वहीं गदा मारी तब दुर्योधन की मृत्यु हुई।	23. Anchilles की एड़ी मर्मस्थान था। वहीं बाण लगने से Anchilles मरा। Anchilles के जन्म के समय उसकी माता ने उसे एक अमृत सरोवर में डुबोया जिससे सब अंग वज्र के बन जायें, केवल उसकी एड़ी से जहाँ से उसकी माता ने पकड़ कर डुबोया, कमजोर रह गयी।
24. हनुमान ने अपने को स्वेच्छा से बंधवा लिया ताकि उसे रावण की राजसभा में पहुँचने का अनायास ही अवसर मिल जाय। लंकावासी कुतूहलवश हनुमान को मनोविनोद के लिये बांधकर रावण के दरबार में ले गये।	24-25. यूनानियों के लकड़ी के घोड़ों को खेल-खेल में भीतर ले जाने से Troy का पतन हो गया।
25. हनुमान की पूंछ को आग लगाने से लंका का नाश हो गया।	
26. राम सीता सहित लौटकर अपनी राजधानी अयोध्या में पधारे। अयोध्या का अर्थ है युद्ध में न जीतने योग्य।	26. Manalus हेलेन सहित लौटकर अपनी राजधानी स्पार्टा में पधारे। स्पार्टा में जन्म के साथ ही बच्चों को एक पहाड़ी से लुढ़का दिया जाता था ताकि कमजोर बच्चे मर जायें।

जिस प्रकार इलियड पर रामायण की छाप है उसी प्रकार ओडेसी नामक महाकाव्य पर महाभारत की कुछ छाप परिलक्षित होती है।

1. **यूनान में भारतीय धनुर्धरों की विजय**—ईसा से 490 वर्ष पूर्व ईरान के सम्राट् धारयुवस ने यूनान पर आक्रमण किया। मेराथन के युद्ध में ईरानी सेना परास्त हो गई। 485 ई. पूर्व में सम्राट् धारयुवस का देहान्त हो गया।
2. सन् 480 ई. पूर्व में धारयुवस के पुत्र ईरानी सम्राट् ख्षयार्श (जेरक्सेज Xerzes) ने एक विशाल सेना लेकर यूनान पर चढ़ाई की। उसकी सेना में इस बार भारतीय तीरंदाजों का एक शक्तिशाली दल था जिनके तीरों का फल इस्पात का बना हुआ था।
3. सम्राट् ख्षयार्श की सेना के इन वीर भारतीय धनुर्धरों ने मिस्र, अरब सीरिया, फलस्तीन, मेसोपोटामिया, तुर्की, आर्मेनिया, अफगानिस्तान आदि में इस्पात वाले तीक्ष्ण तीरों के फलस्वरूप विजय प्राप्त की थी।
4. यूनान में गर्म पानी के स्रोतों के लिये प्रसिद्ध थर्मोपोलो की कठिन घाटी में विश्व इतिहास का एक चिरस्मरणीय युद्ध हुआ जिसमें भारतीय धनुर्धरों के फौलादी तीरों के सम्मुख यूनानी वीर पराजित हो गये।
5. तब तक पश्चिम के किसी देश को इस्पात का ज्ञान ही न था। संस्कृत के अयस शब्द से ही आयरन (Iron) शब्द बना है।
6. तीसरी शती ई. पूर्व में पंजाब की झेलम नदी के तट पर जब सिकंदर की यहाँ के राजा पुरु (पोरस) से संधि हुई तो पोरस ने उसे 10 सेर इस्पात भेंट किया। उस धातु को देखकर सिकंदर चकित हो गया।

यूनानी दर्शन पर भारतीय प्रभाव

गार्वे का मत है कि यूनानी दर्शन के जनक थे थेलिज। Thales (600 ई. पूर्व) का यह मत है कि सब कुछ जल से पैदा होता है। अनेजिमेण्डर का मत है कि सब कुछ वायुमण्डल से उत्पन्न होता है। उसके शिष्य ऐनेग्जिमिनस का मत है कि सब कुछ वायु से उत्पन्न होता है। ये सब लगभग वैदिक सिद्धांत हैं जो यूनानियों ने भारत के संपर्क से सीखे। पाँचों तत्त्वों की अलग-अलग महत्ता भारतीय दर्शन में है।

जल को संस्कृत में नार कहते हैं। जल में निवास करने वाला नारायण है। नारायण की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा, ब्रह्मा से सृष्टि और अंत में महाप्रलय में सब कुछ पुनः जल में लय हो जाता है। यह भारतीय कल्पना है जिसका कथन थेलिज के दर्शन में मिलता है।

हेरक्लाइटस (500 ई. पूर्व) का मत है कि सब कुछ अग्नि से ही पैदा होता है तथा वापस लौटकर उसी में लय होना चाहता है। वास्तव में छान्दोग्य उपनिषद् के वर्णन की ही छाया है। गार्वे के मत में यह सांख्य के मत से भी मिलता है।

ऋग्वेद का प्रथम मंत्र **'अग्निम् इळे पुरोहितम्'**—अग्नि की स्तुति से प्रारम्भ होता है। वेद में अग्नि ज्योतिस्वरूप है। परमेश्वर का प्रतीक है। अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा—

हेरक्लाइटस भगवान् बुद्ध का समकालीन है। दोनों ही परिवर्तन को महत्त्व देते हैं। Empedoc's 450 ई. पूर्व का मत पदार्थ की अनश्वरता सांख्य के सत्कार्यवाद या सृष्टि के अनादि होने का पुनर्कथन है। उसमें आत्मा के पुनर्जन्म का संकेत मिलता है। वह प्रकृति के तीनों गुणों को मानता है—Lightness सत्त्वगुण, Activity रजोगुण, Heaviness तमोगुण।

Zenopanes (505 ई. पूर्व) ने यह मत स्थापित किया कि ईश्वर और विश्व एक, अभिन्न, शाश्वत और अनादि हैं। यह भारतीय वेदान्त का सिद्धांत ही है।

हरिरेव जगत्, जगद्देव हरि

Erdmann (आर्डमेन) का कथन है कि दर्शन की (Eleatic) धारा का यह सिद्धांत कि जगत् की सारी विभिन्नता एक तत्त्व में ही लय हो जाती है भारतीय सर्वात्मवाद की ही गूंज है। कोई स्वतंत्र यूनानी सिद्धांत नहीं।

पाइथोगोरस (550 ई. पूर्व) भारतीय दर्शनधारा से इतना अधिक प्रभावित है कि उसे भारतीय परंपरा में पृथ्वी गुरु कहा जाता है। कुछ लोगों का अनुमान है कि वह भारत की यात्रा पर आया। किन्तु यह निश्चित है कि वह ईरान तक आया था। जहाँ उस काल में आर्य राजा कुरू (Cyres) साइरस का शासन था और अनेक आर्य ब्राह्मण यहाँ प्रचाररत थे। यह भूलना नहीं चाहिये कि उस समय तक न ईसा का जन्म हुआ था न मुहम्मद का। इसलिये उस काल के पारसी जाति के आर्य होने के साथ-साथ धर्म से भी आर्य थे। ईरान का प्राचीन नाम आर्यान देश था। आर्यावर्त्त और आर्यान की परंपरा एवं पूजा-पद्धति, विश्वास, परंपरा, भाषा एवं जीवन-पद्धति सभी समान थी। अतः पारसी विद्वानों के संपर्क में आने का अर्थ भारतीय आर्य विद्वानों के संपर्क में आना ही था।

पाइथोगोरस की आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म का सिद्धांत निश्चित रूप से भारत की ही देन है। संस्कृत का आत्मा शब्द पाली में अत्ता हो गया है। भगवान बुद्ध की वाणी है—

अत्ताहि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परोसिया।
अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं॥

अर्थात् आत्मा ही आत्मा का नाथ है, आत्मा के सिवा अन्य नाथ कैसे हो सकता है? अपने आपको अच्छी प्रकार वश में कर लेने पर मनुष्य दुर्लभ नाथ को प्राप्त करता है। यह अत्ता शब्द ही यूनानी भाषा में अतो हो गया है। इससे ग्रीक और लैटिन भाषा में Auto शब्द बना है। इसका अर्थ भी Self आत्मा ही है। जैसे Automatic स्वचालित, Autonomous आत्मनामी, Automobile अपने आप चलने वाली गाड़ी। आत्मा के लिये दूसरा शब्द है—स्व। इससे ग्रीक एवं लैटिन भाषा में शब्द बना है Suicide (स्वसूद यानी स्वयं को मारना)।

संस्कृत में मधुसूदन का अर्थ मधुदैत्य को मारने वाला, अरिसूदन का अर्थ शत्रुओं को मारने वाला। ग्रीक एवं लैटिन में Couseui का अर्थ है अपना कारण आप अर्थात् Auto स्वयंभू। इस प्रकार भारत ने यूनान एवं रोम को केवल आत्मा सम्बन्धी विचार ही नहीं दिये बल्कि आत्मा के लिये शब्द भी दिये जो उनके अपने शब्द-भण्डार में नहीं थे।

पाइथोगोरस ने ज्यामिति में 47 का प्रमेय दिया है जिसे आजकल दी थ्यूरोम आफ पाइथोगोरस कहा जाता है वह भी बोधायन ऋषि के सुल्व सूत्र से ही लिया गया है। इस प्रमेय का कथन है—एक समकोण त्रिभुज में कर्ण का वर्ग बाकी दोनों भुजाओं के वर्ग के बराबर होता है।

विलियम जोन्स ने यह संकेत दिया कि पाइथोगोरस के सिद्धांत और सांख्य की मान्यता में बड़ी समानता है जिस प्रकार सांख्य में संख्या गिनायी गयी है उसी प्रकार पाइथोगोरस में भी संख्या को महत्त्व दिया है।

कॉलब्रुक (Colebrooke) का कथन है कि पाइथोगोरस का जो भी इतिहास हमें उपलब्ध होता है उससे मुझे यह मानने में तनिक भी संकोच नहीं कि यह यूनानी विचारक भारतीय गुरुओं का ऋणी था। श्रेडर (Schrader) निर्णायक घोषणा करता है कि पाइथोगोरस के विचारों की जन्मभूमि भारत ही है।

सुकरात के मानस पर भारतीय प्रभाव

युजेबीस (Eusebius) नामक विद्वान् ने अरस्तू द्वारा प्लेटो दर्शन पर लिखित ग्रंथ का उद्धरण दिया है जिसमें यह वर्णन है कि एक भारतीय दार्शनिक एथेंस नगर में आया और सुकरात से दार्शनिक शास्त्रार्थ किया। जब सुकरात ने यह कहा कि दर्शन मानव जीवन के विषय में जिज्ञासा करता है। इस पर भारतीय दार्शनिक मुस्कराया और उत्तर दिया—कोई भी मानव जीवन और उसकी समस्याओं के विषय में तब तक नहीं जान सकता जब तक दैवीय-तत्त्वों के बारे में न जान ले। इससे भारतीय दर्शन का दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। अलौकिक को जानने के पश्चात् ही लौकिक के रहस्य खुलते हैं। सुकरात इस भारतीय विचारक से बड़ा प्रभावित हुआ। सुकरात भारत के ऋषियों के समान निष्काम एवं निर्लोभ वृत्ति से जी कर

यूनान के युवकों को विवेक से ज्ञान प्राप्त करने की शिक्षा देता था। उसका कथन था Know Thyself, Knowledge is Power. (अपने-आपको जानो, ज्ञान ही शक्ति है।) यह उपनिषदों के आत्मानँ् विद्धि का ही अनुवाद है। अपनी विवेकपूर्ण दार्शनिक मान्यताओं के लिये बलिदान होने वाला सत्यवीर सुकरात संसार के सभी विवेकशील लोगों के लिये एक महान् आदर्श बन गया।

प्लेटो

सुकरात का योग्यतम शिष्य प्लेटो था। सुकरात के लिखित विचार प्रायः नहीं मिलते। उसके विचारों को लिखित रूप में प्लेटो ने ही अमर बना दिया। वास्तव में प्लेटो का दर्शन मूलतः सुकरात का ही दर्शन है। जिस प्रकार विवेकानंद का दर्शन उनके गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंस का ही दर्शन है।

प्लेटो (427 ई. पूर्व से 347 ई. पूर्व) पाइथोगोरियन विचारधारा का प्रशंसक था। यह माना जाता है कि वह एशिया के देशों की सांस्कृतिक यात्रा पर आया था। वह ईरान तथा संभवतः भारत की यात्रा पर आया था। उसका यह मत कि आत्मा जड़ प्रकृति के बंधन में पड़कर अपने आपको भूल जाता है और इससे मुक्ति ही आनंद प्राप्ति का एकमात्र उपाय है—सांख्यदर्शन के विचार से मिलता-जुलता है। हॉपकिन्स (Hopkins) नामक लेखक का कथन है कि प्लेटो सांख्य विचारधारा से परिपूर्ण है जो उसने पाइथोगोरस के माध्यम से प्राप्त कर उस पर अपना तार्किक चिंतन किया होगा।

कठोपनिषद् में कहा है—

आत्ममानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रगहमेव च॥(1/3/3)

इंद्रियाणि हयानाहुः विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेंन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर् मनीषिणः॥(1/3/4)

आत्मा को तुम रथी जानो। शरीर को रथ, बुद्धि को सारथि जानो और मन को लगाम। मनीषी (यानी ज्ञानी) इंद्रियों को घोड़े बतलाते हैं (और) विषयों को चरागाह। आत्मा के इंद्रिय और मन से युक्त होने पर उसे भोक्ता कहते हैं।

प्लेटो ने भी रथ और घोड़े की यही उपमा शरीर-इन्द्रिय और आत्मा के वर्णन में प्रयोग की है। यह निश्चय ही भारतीय दर्शन का ही प्रभाव है। अर्विक (Urwick) का विश्वास था कि प्लेटो ने Republic में जो कुछ कहा वह मात्र भारतीय विचारों का पुनर्कथन है।

प्लेटो ने आदर्श समाज को रक्षक, सैनिक और कामगार में विभाजित कर भारतीय वर्ण-व्यवस्था को ही दूसरे शब्दों में प्रस्तुत किया है। Republic के

सातवें अध्याय में प्लेटो दृश्यमान जगत् की असत्यता और सत्य की अदृश्यता को समझाने के लिये एक गुफा की उपमा देता है जिसमें प्रकाश पीछे की ओर से आ रहा है और हमारा मुख दीवार की ओर है, जिस पर हमारी अपनी ही छाया पड़ रही है तथा जिसे हम सच समझकर उसकी ओर लपकते हैं किन्तु वह सारा दृश्य मिथ्या ही निकलता है। इस प्रकार माया को छाया और सत्य को प्रकाश के रूप में प्रस्तुत करना वैदांतिक विचार है। व्यक्त जगत् अव्यक्त सत्य की ही छाया है। जगत् की सब वस्तुएं प्रारंभ में अव्यक्त रहती हैं, मध्यकाल में व्यक्त होती हैं और अंत में पुनः अव्यक्त में ही लय हो जाती हैं—यह गीता का कथन है। व्यक्त वस्तुओं की पहचान के लिये कोई नाम और रूप कल्पित किया जाता है। वह नाम-रूप इन्द्रियगोचर होने के कारण सत् प्रतीत होता है। किन्तु सत् का कभी नाश या लोप नहीं होना चाहिये। असत् सदा टिकता नहीं और सत् कभी मिटता नहीं।

नासतो विधते भावो—गीता की इसी कसौटी के आधार पर नाम-रूपात्मक जगत् दिखाई देते हुए भी, इन्द्रियगोचर होते हुए भी अन्ततोगत्वा सत् नहीं प्रमाणित होता। जो दिखाई देते हुए भी वास्तव में न हो उसे ही गीता ने माया तथा शंकराचार्य ने प्रतिभासित कहा है। जगत् भास रहा है किन्तु है नहीं। स्वप्न का संसार भासते हुए भी वास्तविक नहीं। मरुभूमि का जल और रज्जु में सर्प, जल में बिन्दु लहर, तरंग, वाष्प, नदी, तालाब, सिंधु भासते हुए भी सत् नहीं। क्योंकि उनकी सत्ता त्रिकालाबाधित नहीं है। सत् भासने का कारण भी यही है कि वे भासते समय हमारी सत्ता से कुछ अंश लेकर, नाम-रूप का आवरण ओढ़कर भासने लगते हैं। यदि रस्सी और अंधेरा न हो तो सर्प की भ्रान्ति कैसे हो? सारी जादूगरी जादूगर पर टिकी हुई है। सारे जल के विकार जल पर ही टिके हुए हैं। किन्तु नाम-रूप के आवरण से वे जल तत्त्व को ढककर जल की क्षणिक प्रतिभासिक सत्ता से ही सत् जैसे दिखाई देते हैं। कबीर ने भी माया की छाया के साथ उपमा दी है।

माया छाया एक सी विरला जाने कोय।
भक्ता के पीछे फिरे सम्मुख भागे सोय।

प्लेटो ने भारतीय दर्शन के इस तत्त्व को ऐसे ही सुंदर उपमा से समझाया। गुफा के द्वार पर सूर्य का प्रकाश या यज्ञ-अग्नि का प्रकाश है। हमारे हाथ संसार की भोग-विलास की हथकड़ी से बंधे हुए हैं। पीछे के प्रकाश से हमें अपनी ही छाया सामने दीवार पर पड़ती दिखाई देती है। पीछे मुड़कर देखने में असमर्थ हम छाया को ही सत् मानकर उसकी ओर लपकते हैं पर हाथ कुछ नहीं लगता। प्लेटो ने इस यूनानी कथा को भी प्रतीकात्मक रूप से स्वीकार किया है कि ज्यूज (Zeus) नामक देवता द्वारा Phanes को निगल जाने के पश्चात् एक संसार-रूपी विशाल अण्डा हुआ जिसमें सारी सृष्टि प्रकट हुई। यह मनुस्मृति में वर्णित हिरण्यगर्भ रूपी एक सुनहले अण्डे (ब्रह्माण्ड) का ही वर्णन है जिसमें से ब्रह्मा और सारी सृष्टि उत्पन्न हुई।

रोलिनसन (Rawlinson) नामक इतिहासकार का कथन है कि ये समानताएं इतनी अधिक निकट और मिलती-जुलती हैं कि उन्हें एक आकस्मिक घटना कहकर टाला नहीं जा सकता। प्लेटो की भाषा और उपनिषदों में कभी-कभी विस्मयकारी समानता दिखाई देती है। गार्वे का यह कथन बहुत सच है कि यूनानी विचार जगत् ईरान के माध्यम से भारतीय विचारधारा से प्रभावित हुआ और सांख्य और वेदांत के दर्शन भारत से ही यूनान में पहुँचे।

प्लेटो ने काव्यात्मक प्रतिभा के साथ अपने विचारों को बड़े रोचक वार्तालाप में प्रकट किया। लानाकुपर (Lana Cooper) के मत में वार्तालाप शैली नाटक के बाद यूनानी प्रतिभा द्वारा आविष्कृत सबसे श्रेष्ठ साहित्यिक शैली है। वास्तव में प्लेटो से बहुत पहले काव्यात्मक वार्तालाप शैली में आध्यात्मिक रहस्यों को प्रकट करने की परंपरा भारत में प्रतिष्ठित हुई थी। स्वयं वेद ही काव्यमय आध्यात्मिक-ग्रंथ हैं। उपनिषद् एवं गीता में काव्यात्मक वार्तालाप में आध्यात्मिक तत्त्वों का निदर्शन है। गीता में काव्य-संगीत, कथोपकथन के साथ-साथ नाटकीय तत्त्व भी हैं। इसलिये प्लेटो अपनी आध्यात्मिक कविताओं व काव्यात्मक कथोपकथन शैली के लिये भारत के ही ऋणी हैं।

उपनिषद् में नारद एवं सनतकुमार का रोचक संवाद है जिसमें देवर्षि नारद पाँच वर्ष के ब्रह्मज्ञानी बालक सनतकुमार से प्रार्थना करते हैं कि उन्होंने सब विद्याएं प्राप्त कर ली हैं फिर भी उन्हें शांति नहीं मिली। नारदजी अपनी सारी विद्याएं गिनाते हैं। इस पर सनतकुमार पूछते हैं नारदजी से कि आपने सब कुछ जान लिया तो जानने वाले को भी जाना कि नहीं? इस प्रकार नारदजी को अपनी भूल का भान होता है। सनतकुमारजी बताते हैं दृश्य का सारा ज्ञान अपरा-विद्या (छोटी विद्या) है। इससे ऊपर पराविद्या है जिसमें द्रष्टा का ज्ञान, ज्ञाता का ज्ञान, प्राप्त होता है। हूबहू ऐसा ही सम्वाद प्लेटो तथा उनके शिष्य अरस्तू के बीच हुआ। अरस्तू ने सब विज्ञानों का अध्ययन करने के पश्चात् फिजिक्स पर अध्ययन करके पूछा कि मैंने पदार्थ और ऊर्जा का पूरा अध्ययन कर लिया है। फिर भी मुझे लगता है कि बहुत कुछ छूट गया है। तब प्लेटो मुसकराकर कहता है कि फिजिक्स के अध्ययन से ऊपर एक अन्य विद्या है जिसका नाम Metaphysics है। Physics से लौकिक शक्ति प्राप्त होती है और Metaphysics से आध्यात्मिक शांति। यह स्पष्ट ही अपराविद्या-पराविद्या का भेद, दृश्य और द्रष्टा का भेद, जगत् और जगदीश्वर का भेद है।

प्लेटो ने अपने दर्शन को स्थापित करने के लिये दृश्य जगत् की वस्तुओं और अदृश्य विचारों का भेद दिखाया है। जो नाम-रूपात्मक वस्तुएं हम इन्द्रियों द्वारा अनुभव (Perceive) करते हैं उन्हें Percept (इन्द्रियगोचर) विषय कहा जाता है। जैसे राम, श्याम, मोहन, सोहन आदि सभी व्यक्तिविशेष हैं जो किसी विशेष देश में विशेष काल में हुए और फिर कालांतर में विलुप्त भी हो गये। अनेक व्यक्तियों के

देहान्त की घटना देखकर हमने एक विचार बनाया—मरणधर्मा। अनेक अलग-अलग मनुष्यों के इन्द्रियजन्य अनुभवों को लेकर हमने एक सामान्य मनुष्य का विचार बना लिया है। इस सामान्य विचार को Concept कहा गया। राम, श्याम, मोहन, सोहन सभी Percept हैं क्योंकि इन्द्रियों से Perceive किये जा सकते हैं। किन्तु सामान्य मानव एक Concept है उसे केवल Conceive ही किया जा सकता है Perceive नहीं। वस्तु जड़ जगत् में होती है, विचार जड़ जगत् में नहीं केवल बुद्धि में रहता है।

Man और Mortal दोनों को जोड़कर एक तर्कशास्त्र का कथन बनाया गया Man is Mortal अर्थात् मनुष्य मर्त्य है। वास्तव में जिस सामान्य मनुष्य के विषय में कथन किया गया है वह किसी देश अथवा काल में जन्मा ही नहीं, मरेगा भी नहीं। हर व्यक्तिगत मनुष्य जन्मता और मरता है। वह दृश्य है और परिवर्तनशील है। किन्तु मनुष्य के सामान्य रूप के विषय में विचार न जन्मता है और न मरता है। वह सदा एक रहने वाला विचार है। विशेष वस्तुएं बदल जाने वाली एवं विकारी हैं किन्तु सामान्य विचार न बदलने वाला है और न विकारी है। व्यक्तिगत वस्तु विनाशी है सामान्य विचार अविनाशी है। प्लेटो ने कहा कि विश्व की चरम परम सत्ता भी वस्तु नहीं एक विचार है, एक आइडिया है। इसलिये विचारों की सत्यता को प्रमाणित करने वाले प्लेटो के दर्शन को Idealism कहा गया है। भारत में इसी को अध्यात्मवाद या प्रत्ययवाद भी कहा जाता है। विशेष टेबल सबने देखा है पर सामान्य टेबल एक विचारमात्र है, वस्तु बहिर्जगत् में है जो परिवर्तनशील एवं विनाशी है। विचार अन्तर्जगत् में है जो अपरिवर्तनशील एवं अविनाशी है। प्लेटो भारत के अध्यात्मवाद को ही अपनी तार्किक शैली में प्रस्तुत कर रहा है। इस तर्क में तनिक विस्मय की बात है कि Idealism शब्द Ideal से न बनकर Idea विचार से बना है। इसका अर्थ तत्त्व विचार या तत्त्व चिंतन से हो सकता है। विचार या चिंतन चेतना द्वारा ही संभव है। चेतन तत्त्व आत्मा ही है जो सारे दृश्यजगत् का द्रष्टा है।

अरस्तू

प्लेटो का शिष्य अरस्तू एक महान् मेधावी एवं ज्ञान की सब विधाओं में प्रवेश रखने वाला सर्वस्पर्शी, प्रतिभासंपन्न महापुरुष था। उसकी Politics ने आधुनिक राजनीति दर्शन की नींव रखी। उसकी Politics में दुखांत नाटकों की एकता के प्रथम बीज मिलते हैं। उसका On the Soul विषय का निबंध आधुनिक मनोविज्ञान की नींव बन गया। वह प्रथम मार्गदर्शक जीव-वैज्ञानिक भी था। वह विचारों के सम्बन्ध और साहचर्य के सिद्धांत का भी द्रष्टा था। वह अनेक विज्ञानों का प्रथम वैज्ञानिक तथा अनेक विचारों का प्रथम विचारक माना जाता है। प्लेटो स्वयं उसे अपने विद्यालय की प्रतिभा Intellect of School मानता था और विचार जगत् उसे Father of all Sciences मानता है।

मेकेदोनिया के राजा फिलिप ने अपने होनहार पुत्र सिकन्दर को अरस्तू के पास शिक्षा के लिये समर्पित किया। उसने अरस्तू के जन्म के नगर Stargirite का पुनर्निर्माण करा दिया। सिकंदर कहता था—'मेरे पिता ने मुझे जन्म दिया पर गुरु अरस्तू ने मुझे जीवन को योग्यतापूर्वक जीना सिखाया। मेरे पिता मुझे स्वर्ग से धरती पर लाये, गुरु ने पुनः स्वर्ग प्राप्ति का रास्ता बताया।' इस गुरु-भक्ति में भारतीय परंपरा की ही छाप है। सिकंदर ने अपने गुरु को गुरुदक्षिणा में धन-संपत्ति के अतिरिक्त अत्यंत अमूल्य ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ भी भेंट कीं जो उसे अपने शासन एवं दिग्विजय के काल में प्राप्त हुईं। सिकंदर ने अपने गुरु की जीव-वैज्ञानिक खोजों के काल में एक हजार व्यक्ति सहयोग के लिये दिये जो पशु-पक्षियों और जलचरों की आदतों का अध्ययन कर अरस्तू के वैज्ञानिक विषय-लेखन में सहयोग करते थे।

अरस्तू का पिता डॉक्टर था। गुरु दार्शनिक था और शिष्य राजा। अरस्तू में दार्शनिक और वैज्ञानिक दोनों का समन्वय था। किन्तु राजा का गुरु होने का अहंकार नहीं था। भौतिक विज्ञान से तत्त्वज्ञान Metaphysics की ओर बढ़ने की प्रेरणा भी उसको प्लेटो के उपदेश से प्राप्त हुई। अपने ग्रंथ Orgnan में उसने तर्कशास्त्र के नियम दिये। अपने Rhetroic में उसने शास्त्रार्थ एवं वाद-प्रतिवाद पर बहुत सुंदर रीति से लिखा। अपने Physic, Metaphysic Topics नामक ग्रंथों में उसने विचारों को बड़ी सूक्ष्मता से प्रदर्शित किया। अपने Ethics और Politics नामक ग्रंथों द्वारा पश्चिमी जगत् के मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ी। Dryden का कथन है कि उसने अपनी विद्या को विश्वव्यापी ज्योति बना दिया। Thomson (थामसन) का कथन है कि विगत दो हजार वर्षों में सब देशों के सब लोग अरस्तू की शरण में उससे शिक्षा पाने के लिये आये।

अरस्तू स्वयं पश्चिम का महानतम विचारक एवं वैज्ञानिक होते हुए भी भारतीय ज्ञान के लिये ललक रखता था। मेकरिनल नामक प्रसिद्ध लेखक ने सिकंदर के आक्रमणों पर एक पुस्तक लिखी। मेगस्थनीज नामक इतिहासकार ने अपने ग्रंथ Indica में उसका उद्धरण देते हुए लिखा है कि सिकंदर जब भारत पर आक्रमण के लिये निकला तब उसके गुरु अरस्तू ने उसे आदेश दिया कि वह भारत से लौटते समय उसके लिये दो उपहार लेकर आवे—एक गीता और दूसरा भारत का श्रेष्ठ संत। सिकन्दर जब भारत से लौटने लगा तब उसने ओनियोक्रोटस नामक अपने प्रतिनिधि को एक भारतीय संत को ढूंढ़कर साथ ले चलने के लिये भेजा। एक संत तो साथ चल पड़ा परन्तु दूसरे ने जिसका नाम डेंडीमीज था, लिखा है—साथ चलने के लिये प्रस्तुत नहीं हुआ। डेंडीमीज का भारतीय नाम दण्डी स्वामी हो सकता है। सिकंदर के दूत ने कहा—'जूपीटर का पुत्र आपको धन से मालामाल कर देगा। भारतीय संत ने हंसकर उत्तर दिया—'हमारे रहने के लिये शस्य श्यामला भारत, पहनने के लिये

वल्कल वस्त्र, पीने के लिये गंगाजल, खाने के लिये पावभर आटा बहुत है। हम आत्मधन के धनी हैं। वह आध्यात्मिक दृष्टि से दरिद्र सिकंदर हमें क्या दे सकता है!

सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् यूनानी लोगों का अरस्तू के प्रति भी मनोभाव बदल गया। वह यूनानियों की मानसिक चंचलता तथा सुकरात के प्रति किये गए अन्याय को जानता था। इसलिये वह राजधानी एथेंस को छोड़कर एक द्वीप के गांव में जा बसा। जहाँ उसका 312 ई. पूर्व में उस आत्मनिर्वासन-काल में ही देहान्त हो गया।

यूनान के मानस पर भारत का आकर्षण

यूनानी लोग मूलतः आर्यों की ही एक शाखा थे जो वहाँ जा बसी थी। सिकंदर जिस इष्ट देवता जूपीटर का पुत्र माना जाता था उसका जूपीटर नाम संस्कृत के द्युः‌पितर से बना है। द्युः का अर्थ है आकाश अथवा आकाश के समान अखण्ड निर्लिप्त व्याप्त ब्रह्म। पितर का अर्थ है पिता। वह परमेश्वर ही सृष्टि का पिता है। यह वैदिक मान्यता भी यूनानी लोगों ने भारत के आर्यों से ग्रहण की। वेद में पृथ्वी को माता और द्युः को पितर ही कहा गया है। यूनानी लोग भी भारतमाता के समान अपने देश का नाम मातृवाचक (स्त्रीलिंग वाचक) रखते थे। अयोनिया, ग्रेरेसिया, बोहीनिया, मेक्डोनिया, स्पार्टा आदि यूनानी इतिहासकारों ने यूरोप एवं अन्य देशों के इतिहास व भूगोल लिखे तो अधिकांश का नाम स्त्रीलिंग वाचक बना दिया। जैसे ब्रिटेनिया, यूगोस्लाविया, चेकोस्लोवाकिया, फ्रांसिसया, पार्टगिजिया, पुरसिया, ईटालिया, जार्जिना, रोमानिया, रसिया, रोबिन परसिया, इंडिया, इन्दोनिजिया, मंगोलिया, कोरिया, साईबेरिया, मध्य-पूर्व, मेसोपोटामिया, बेबीलोनिया, आदि। रोमन लोगों ने भी परमात्मा का नाम जूपीटर माना। ग्रीक और रोमन दोनों बृहस्पति ग्रह (देवगुरु) को भी जूपीटर कहते हैं।

यूनानी लोगों का परमात्मा Zius कहलाता है। इस शब्द की व्युत्पत्ति 'द्युः' शब्द से हुई है। द्युः शब्द का अर्थ आकाश या ब्रह्म पहले ही स्पष्ट हो चुका है। ब्रह्म की आकाश से उपमा देने के लिये भारतीय वाङ्मय में बार-बार खम् ब्रह्म यह प्रयोग आया है। यूनानी धर्म परंपरा में Zius को आकाश का तेजस्वी देवता माना गया है जो भारत में देवराज इन्द्र के समान वज्रनाद करता है।

यूनानियों की देवी एथीन तथा रोमन देवी मिनरबा (Minerba) दोनों ज्ञान की देवी सरस्वती के ही रूपान्तर हैं। यूनानियों का युद्ध देवता Ares है। यह शब्द संस्कृत 'अरी' से बना हुआ प्रतीत होता है। रोम ने Mars (मंगल) को युद्ध का देवता माना। आकाश में मंगलग्रह लाल रंग का होने से उसे संस्कृत में अंगारक कहते हैं। क्रोध में मनुष्य की आंखें अंगार के समान लाल हो जाती हैं। मंगलग्रह भारत की परंपरा में भी अनिष्ट, अशांति और विग्रह का प्रतीक माना जाता है। जिस व्यक्ति की कुण्डली में चौथे, आठवें या बारहवें स्थान में मंगल हो उसे

ज्योतिषी मंगली कहते हैं। मंगली वर का विवाह मंगली कन्या से ही होना चाहिये अन्यथा दोनों बहुत कलह करते रहते हैं तथा एक-दूसरे के प्राणों के लिये भारी हो जाते हैं। मंगल शब्द तो पार्वती, पतिव्रता स्त्री, सफेद दूब, नीली दूब एवं हलदी के लिये प्रयोग होता है। किन्तु मंगलमुखी का अर्थ वेश्या है।

सबसे विस्मय की बात यह है कि संस्कृत का मंगल शब्द बिल्कुल भिन्न अर्थ में प्रयोग होता है। इसका शाब्दिक अर्थ है—शुभ, कल्याण, सौभाग्य, विष्णु आदि। इसकी व्युत्पत्ति है—मंगल (म) अर्थात् पाप को गलाने वाला। यूनानी देवता अपोलो सौंदर्य, संगीत, कला, नगर निर्माण तथा भविष्यवाणी का देवता माना जाता था। बाद में मित्र के प्रभाव से इसे मित्र (सूर्य) के अर्थ में भी स्वीकार कर लिया गया है। रोमन लोगों ने ईसा से 300 वर्ष पूर्व इसे अपनी देव-पंक्ति में प्रमुख स्थान प्रदान किया।

ग्रीक योद्धा हरिक्लिस की गाथा में भी श्रीकृष्ण एवं बलराम के चरित्र की छाया है। Alcmene के भाइयों को अत्याचारी राजा Taphians (टेफियन) ने मरवा डाला था। Alcmene अपने पति Amphitrion के साथ गृहस्थ आश्रम संपन्न करने के लिये तब तक प्रस्तुत नहीं होती जब तक वह उसके भाइयों की हत्या का बदला न चुका ले। कहा जाता है कि Zeus नामक देवता के वरदान से उसे बड़ा शक्तिशाली पुत्र उत्पन्न हुआ।

उसे हेरा HERA का गौरव कहा गया। Heracles उसी शब्द का लातीनी उच्चारण Hercules है। Hercules जब बच्चा ही था तब उसने पालने में ही दो सर्पों को हाथ से पकड़कर मार डाला था। जिस प्रकार श्रीकृष्ण के पूर्व सात भाई-बहिनों को कंस ने मार डाला था और कंस का नाश करने के लिये कृष्ण प्रकट हुए। उसी प्रकार Hercules का जन्म का हेतु भी आततायी-जनों का नाश करना था। जैसे श्रीकृष्ण ने नाग-नथन किया। Hercules को सर्पों का गला घोंटते हुए दर्शाया गया है। जिस प्रकार कृष्ण कुश्ती, धनुर्विद्या और वंशीवादन सभी में रुचि रखते थे, Hercules भी कुश्ती, रथचालन, धनुर्विद्या और वीणावादन में प्रवीण था। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने गोरक्षा की, Hercules ने गऊओं की रक्षा के लिये 8 साल की उम्र में सिथरन पर्वत के शेर को मारा। श्रीकृष्ण और बलराम ने मथुरा में बड़े-बड़े, दिग्गज हाथियों को उठाकर आकाश में फेंक दिया। उसी प्रकार Hercules ने एक विशाल जंगली सूअर को, एक भयानक सांड को उठाकर आकाश में घुमाते हुए फेंक दिया। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने भयानक कालिया नाग-नथन किया उसी प्रकार Hercules ने एक विशाल हाइड्रा (अनन्तमुखी सर्प के आकार वाले) दैत्य को मारा। उसने अनेक आततायी योद्धाओं को भी मारा तथा अपने युग का सबसे बलवान व्यक्ति माना गया। भगवान श्रीकृष्ण कंस के काल में दुष्ट संहारक, शूर-शिरोमणि माने जाते हैं। विलियम जोन्स का मत है कि Hercules शब्द हरि कुलस्य अर्थात् हरि के कुलवाला से ही बना होगा। चाहे Hercules में श्रीकृष्ण

का चरित्र और ज्ञान दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु उसकी शूरवीरता और आचरण में श्रीकृष्ण और बलराम के चरित्रों की ही नकल है।

द्वितीय पर्दा

अरब देश में भारतीय प्रभाव एक स्वतंत्र शोध का विषय है। जब हजरत मुहम्मद के इस्लाम की स्थापना से पूर्व वहाँ सुस्पष्ट भारतीय प्रभाव सिद्ध होता है तो ईसा के काल में तथा उससे पूर्व भारतीय प्रभाव में क्या संदेह हो सकता है? अरब में इस्लाम के उदय से पूर्व अनेक भारतीय (विशेषकर ब्राह्मण) बड़ी संख्या में रहते थे जो मक्केश्वर महादेव की पूजा करते थे। स्वयं हजरत मुहम्मद के चाचा अबुल हिकम की भारत एवं शिव की स्तुति में लिखी कवितायें प्राप्त हुई हैं। वहाँ की प्राचीन कविताओं में विक्रमादित्य और भारत की स्तुतियाँ भी मिलती हैं।

अरब में आज से लगभग 3000 वर्ष पूर्व आकाश से गिरने वाले तारे के गर्म लावे से एक अर्ध-गोलाकार शिवलिंग बन गया था। उसकी पूजा खजूर की पत्तियों एवं आबे-जमजम के पानी से होती थी। पुजारी कुरैशी कहलाते थे। हजरत मुहम्मद साहब कुरैशी थे। किन्तु अधिक पढ़े-लिखे नहीं थे। केन्द्रीय पिंड के चारों ओर 360 देवता थे। हजरत साहब ने मंदिर के पंडों से विरोध होने पर सब मूर्तियाँ तोड़ दीं। किन्तु बड़े संगे-अस्वद (काला अश्वेत पत्थर) की मूर्ति को नहीं तोड़ा। उसे चूमा। खजूर की पत्तियों एवं आबे-जमजम के पानी से इसकी पूजा (ईडा) की।

नमाष्ट से नमाज शब्द बना। ईडा-गृह से ईदगाह बना। शिवरात्रि से शबे-बारात बना।

मखा (यज्ञ)	मक्का
काव्य : शुक्राचार्य असुरों का गुरु	काबा
अश्वेत (काला)	संगे-अस्वद (काला पत्थर)
नमाष्ट	1 नमाज
शिवरात्रि (शिव की बरात वाली रात्रि)	शबे-बारात (शबे-रात्रि)
गंगाजल	आबे-जमजम (मक्का का वह पानी का स्रोत जिसके जल में कीड़े नहीं पड़ते)
विल्व पत्र	खजूर की पत्तियों से पूजना
तीर्थयात्रा में पवित्र नये वस्त्र	हज्ज में नये सफेद वस्त्र बिना सिले हुए
धोती पहनना	धोती (बिना लांग) एवं चादर
तीर्थ में सिर मुण्डन	हज्ज में सिर मुण्डन

तीर्थ मंदिर की परिक्रमा	काबा के मंदिर की परिक्रमा
उपवास	रोजा
शंकर के मस्तक पर शशिकला	नया चन्द्रमा अरब एवं मुस्लिम देशों का ध्वज चिह्न
दो प्रकार के शिव पूजन	असुर भाव से शिव पूजन के कारण
(1) सात्त्विक भाव—शंकराचार्य, मार्कण्डेय—सोमवार पवित्र	असुरगुरु शुक्राचार्य के शुक्रवार को विशेष जुमा
(2) आसुरी भाव—रावण, त्रिपुरासुर, भस्मासुर—शुक्रवार	(समूह) की नमाज

अरब में बसे हुए एक ब्राह्मण परिवार में ही एक महान् ज्योतिषी हुआ जिसका नाम यवनाचार्य प्रसिद्ध है और जिसका भारतीय ज्योतिष-ग्रंथों में उल्लेख है।

अरबी भाषा में संस्कृत के शब्द

संस्कृत	**अरबी**	**अंग्रेजी**	**अर्थ**
	अम्बर		
	मुश्क	Musk	कस्तूरी
सुंठी	जेंजाबील	Ginger	सोंठ
कर्पूर	काफूर	Camphor	कपूर
कपिल	फ़िल क्फिल	Kapil	कपिलवस्तु
चन्दन	सन्दल	सन्दल	(चन्दन) निवासी बुद्ध
तांबूल	तंबूल	Betel	पान
कर्णफूल	करनफूल	Clove	लवंग
नीलोत्पल	नीलोफर	Nlofar	नीलोफर
बेल	बेल	Bel	बेल
जयफल	जैफल	Jaiphal	जायफल
ईडागृह	ईदगाह	Idgah	पूजा का घर
त्रिफला	इतरीफल	Triphala	त्रिफल
कर्पास	क़ैफ़ास	Cottion	नारियल
अम्बुज	अम्बः, आम	Mango	आम
पिप्पली	फ़ुलफ़ुल	Pepper	पीपर (काली मिर्च)

तृतीय पर्दा

हमारे आचार्य अपना सब धन गरीबों को लुटाकर, भगवा वेश पहनकर एवं कमण्डल धारण करके हिमालय की बर्फानी चोटी पार करके तिब्बत चले गये। समुद्र की उत्ताल तरंगों पर कुछ लकड़ी के गट्ठे बांधकर तैरते हुए, कभी समुद्री जल-दस्युओं द्वारा मारे जाते हुए, असंख्य जोखिम सहते हुए पीढ़ी-दर-पीढ़ी, कभी गुरु गया तो कभी चेला गया, फिर उसका चेला चला। चले गये दूर-दूर और एक दिन इंडोनेशिया के साढ़े तीन हजार द्वीप हिन्दू संस्कृति के प्रकाश से जगमगाने लगे। इंडोनेशिया समुद्री मार्ग से चले गये। अमरीका तक चले गये।

History of मेक्सिको में, जो मेक्सिको की Government ने छापी है, उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है। मेक्सिकन सरकार स्वीकार कर रही है। पुस्तक के पृष्ठ तीन पर यह स्पष्ट लिखा हुआ है कि उस धरती पर जिसे आज अमरीका कहा जाता है उस पर यदि किसी ने सबसे पहले चरण रखा तो वे वो लोग थे जो भारत से महान शक्तिशाली धारा के रूप में निकले दक्षिण-पूर्व एशिया की तरफ प्रचार करने के लिये। दक्षिण पूर्व एशिया के साढ़े तीन हजार द्वीपों में, इंडोनेशिया में प्रचार करने के बाद वे लोग वहाँ से समुद्री मार्ग से ही सीधे प्रशान्त महासागर से अमरीका यानी मेक्सिको, पीरू, बलुनिया, अर्जेण्टीना जा पहुँचे।

मैं आपको सत्य बताता हूँ। 60-65 प्रतिशत अमेरिकन भी नहीं जानते, इससे ज्यादा भी नहीं जानते होंगे कि अमरीका का नाम अमरीका क्यों पड़ा? अमरीका नाम कैसे पड़ गया? यदि कोलम्बस ने अमरीका को खोजा तो उसका नाम कोलम्बिया होना चाहिये था। कोलम्बिया नामक एक देश है। कोलम्बस के नाम को कहीं-कहीं याद रखा जाता है। कोलम्बस के नाम पर कई जगह विश्वविद्यालय बनाये हैं। लेकिन देश का नाम कोलम्बस के नाम पर नहीं हुआ। यह...यह अमरीका नाम कहाँ से आया? कोलम्बस के बाद स्पेन के लोगों में से एक दूसरा बड़ा ही क्रूर अत्याचारी आक्रान्ता, जिसने बहुत अत्याचार वहाँ जाकर किये। कोलम्बस ने भी कम अत्याचार नहीं किये। कोलम्बस के साथियों ने भी बहुत अत्याचार किये। उसके साथ अत्याचार की जिसने अति कर दी उसका नाम था अमेरिगो। उस अत्याचारी अमेरिगो के नाम पर आज देश का नाम अमरीका हो गया। बहुत से अमेरिकन जानते ही नहीं हैं।

उस अमरीका में, जिसमें सबसे पहले भारतीयों ने चरण रखा उस अमरीका में, जब विश्वविजेता स्वामी विवेकानंद पहुँचे तो उन्होंने आधुनिक भारत की पुनः जगत्‌गुरु की मुद्रा स्थापित कर दी। Lady मेकलोड कहती है—ईश्वर ने अपने दिव्य देवदूत संसार के सब देशों में भेजे पर कोई ऐसा अभागा देश था जहाँ ईश्वर के किसी देवदूत ने जन्म नहीं लिया तो वह अभागा देश अमरीका था। यदि

अमरीका की धरती पर कभी साक्षात् ईश्वर ने चरण रखे हैं तो स्वामी विवेकानंद के रूप में। अमरीका की भावी संततियाँ यह याद करके, सुनकर पुलकित हो जाया करेंगी कि उस ऋषितुल्य लोकनायक की चरणधूलि के स्पर्श मात्र से सारा अमरीका देश पुण्य-पावन हो गया। अमरीका को प्रथम खोजने वाले भारतीय। अमरीका को पुनः पावन बनाने वाला, अमरीका में पुनः वेदांत की ध्वजा को और भारतीय संस्कृति की विजय-वैजयंती को फहराने वाला भारतीय। इसलिये अमरीका को भारत ने खोजा और भारत ने जीता।

यह बहुत ही रोमांचक अध्याय है। सन् 1925-26 में दिल्ली में हिन्दुस्तान टाइम्स। मेरे शरीर का जन्म सन् 1925 का है, तब की बात है। तो दिल्ली में हिन्दुस्तान टाइम्स के जो Chief Editor थे वे एक बड़े महापुरुष थे जिसे आप मदनमोहन मालवीय के रूप में जानते हैं। उनके पास एक पत्रकार काम करता था उसका नाम चमनलाल था। वह स्वामी श्रद्धानंदजी का संन्यास-पूर्व का जामाता था। उसने मालवीयजी से कहा—पत्रकारिता के क्षेत्र में कुछ नयी खोज के लिये और कुछ नया मार्ग खोजने के लिए, कुछ नयी उद्‌भावनाओं के लिए, कुछ नया प्रकाश लाने के लिये, कुछ रोमांचकारी कार्य करने के लिये मेरा मार्गदर्शन करें। उन्होंने कहा—अच्छा बेटा! तुम ऐसा करो, अमरीका चले जाओ। वहाँ जाकर खोजो अमरीका की प्राचीन सभ्यता-संस्कृति क्या थी?

तो वह अमरीका पहुँचा। अमरीका में 15 अगस्त, 1927 में (भारत के स्वाधीन होने के बीस वर्ष पहले) उसने एक पुस्तक लिखी—The end of an Empire 'एक साम्राज्य का अंत।' उस पुस्तक के प्रारंभ में ही प्रथम पंक्ति में लिख दिया—British regime in India is going to come to an end. भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का अंत आने वाला है। इन पंक्तियों पर उसे बंदी बना लिया गया और बंदी बनाकर देश-निकाला दे दिया।

तो वह वहाँ से मेक्सिको चला गया। मेक्सिको गया तो वहाँ के लोगों के चेहरे देखकर दंग रह गया। अमरीका के गोरे-चिट्टे चेहरे से उनका चेहरा भिन्न था। उनका चेहरा कुछ गंधवी रंग का था। भारत से मिलता-जुलता था। मुखाकृतियाँ भी भारत से मिलती-जुलती थी। उसको बड़ा अचंभा हुआ। अरे! यह क्या हुआ? यह कौन-सा देश है? अब चित्र देखिये—मेक्सिको की एक स्त्री है जो तंदूर पर रोटी लगवाने जा रही है और मस्तक के ऊपर कपड़ा जो है वह बिल्कुल ऐसे पहन रखा है जैसा भारतीय स्त्रियाँ पहनती हैं। उसे बहुत अचंभा हुआ। उसने देखा कि लोगों के चेहरे भारतीयों से मिलते-जुलते हैं, बालक-बालिकाओं के चेहरे, सबके चेहरे देखकर हैरान हो गया। उसने पूछा—आप लोग कौन हैं? उन्होंने कहा 'मय' हैं। 'मय' क्या होता है? 'मय' को अंग्रेजी में लिखा जाता है तब होता है माया। जैसे

राम को पढ़ते हैं रामा। कृष्ण को कृष्णा पढ़ते हैं। अंग्रेजी में छोटी 'अ' और बड़ी 'आ' की तमीज कम है। इसलिये ह्रस्व और दीर्घ आकार का विशेष अंतर करते नहीं। पढ़ा ऐसे ही जाता है। लोगों ने माया बोलना शुरू कर दिया।

उसे बड़ा अचंभा हुआ, माया क्या होता है? वह कई घरों में ले जाया गया। देखा कि अमरीका की स्त्रियाँ जो हैं वो तो ब्लाउज और स्कर्ट—ये चीजें पहनती हैं। उसको बड़ा अचंभा हुआ। वहाँ जाकर देखा तो साड़ी पहने हुए है। स्त्रियाँ साड़ी पहने हुए हैं और सिर साड़ी से ढका हुआ है। वह बड़े अचंभे में पड़ा, यह क्या चीज है! चेहरे भी भारतीय। वेशभूषा भी भारतीय। देखा कि उसको एक घर में भोजन करने ले जाया गया। उसको अचंभा हुआ कि सारे अमरीका में लोग टेबल-कुर्सी पर खाते हैं। वहाँ पर देखा, घर में चौका बना हुआ है। चौके में जूता कोई नहीं ले जाता है। वहाँ पर बिछा दिया गया आसन। कपड़ा बिछा दिया गया। उसने देखा अमरीका में प्लेटों से भोजन करते हैं यहाँ थाली में भोजन आ गया है। उसे महा अचंभा हुआ। बाकी लोग तो Bakery का ब्रेड खाते हैं। यहाँ तो तंदूर की रोटी आ गई। उसने देखा कि रोटी को पुकारने का नाम 'तोतला' और 'रोटली'। उसने देखा कि गुजराती का शब्द रोटली, तोतला यह कहाँ के शब्द आ गये? उसने कहा कि तुम्हारी भाषा क्या है? उन्होंने कहा—'मय।' कौन देश के लोग—'मेक्सिको।' भाषा 'मय', जाति 'मय', देश मेक्सिको। उसने कहा तुम्हारा धर्म क्या है? उन्होंने कहा—आजकल क्रिश्चियन। पहले का धर्म उन्होंने कहा हमारे म्यूजियम में देखो। हमारे मंदिरों में देखो। म्यूजियमों में, मंदिरों में उसने खोज शुरू की। खाने में दही-बड़े हैं, सब भारतीय चीजें हैं। उनके खेल भारतीय हैं। अनेक शब्द, कम से कम 50 प्रतिशत भारतीय मूल के उनकी भाषा में भरे पड़े हैं। उसे महान् अचंभा हुआ, इतने अधिक शब्द कहाँ से आ गये! मंदिरों में जाकर देखा तो देखा कि शिव की मूर्तियाँ! ऊपर हमारी प्रदर्शनी में देखें शिव और गणेश, पीरू, दक्षिण अमरीका। शिव हैं जटाजूट। गले में सर्पों की माला है, भुजा में माला है सर्प की। नीचे गणेश हैं। सूंड ऊपर उठाये हुए हैं, हनुमान्जी की मूर्ति का खण्ड मिला। योगी की मूर्तियाँ मिली हैं। एक शिव की मूर्ति में मस्तक से गंगा। गले में रुद्राक्ष माला, नीचे कोपीन धारण किये हुए। दुर्गा की मूर्ति मिली। भारत से थोड़ा कला का अंतर है। वहाँ के कलाकार की कलम जैसी चली होगी वैसा बनाया होगा। लेकिन शेर के ऊपर वैसी की वैसी खड्ग लिये हुए मूर्ति, शेषशायी विष्णु की मूर्ति, योगी की मूर्तियाँ। मंदिर में लोगों का आह्वान करने के लिये शंख बजाती हुई व्यक्ति की मूर्ति। बिल्कुल आप समझेंगे अजंता की मूर्ति। ऐसी सुंदर मूर्तियाँ उसको मिली। सूर्य का मंदिर मिला। सब चीजें मिली।

उसने एक पुस्तक लिखी, 'हिन्दू अमरीका।' मालवीयजी ने बहुत आशीर्वाद दिया। डॉ. राधाकृष्णन ने भी उस पर बहुत अच्छी सम्मति लिखी। सरोजिनी नायडू

ने भी लिखा कि भारत के जगद्‌गुरुत्व का एक नया अध्याय खुला। पंडित नेहरू ने लिखा कि दुनिया को चुनौती देने वाले इतिहास का एक नया अध्याय है। उस पर उसने एक रंगीन फिल्म बनाई।

अब मैं जब युवा हुआ। उनके संपर्क में आया तो मुझे प्रेरणा मिली उनसे। तो मैंने भी अमरीका में जाकर, मेक्सिको में जाकर, बुलगारिया में जाकर, पीरू, क्यूबा, अर्जेण्टीना, ब्राजील में जाकर इन विषयों की खोज की। मैंने भी अनेक मूर्तियाँ, चित्र आदि संगृहीत किये और मुझे लगा कि सचमुच ऐसा विषय है जिस पर कुछ लोगों को पूरा जीवन लगाकर के इस विषय को प्रकाश में लाना पड़ेगा।

'पीएन्ट एक्सर' नामक एक विद्वान् है। उसने कहा कि हमारे सभी यूरोपवासियों के स्वाभिमान को चाहे कितनी भी चोट लगे, यह मानना पड़ेगा कि यूरोपवासियों से बहुत पहले भारतवंशी लोगों ने और एशिया के लोगों ने अमरीका को खोजा। फिर कहा—मय जाति के जो चेहरे और शरीर की बनावट है, वह भारतीय के समान है। प्रशांत महासागर के पूर्व और पश्चिम के तटों को जोड़ने वाला भारत एशिया के देशों से लेकर अमरीका तक सांस्कृतिक सेतु है जिसने दोनों को जोड़ दिया है। उनके मंदिर भारत के मंदिरों जैसे हैं। अनेक मंदिर पिरामिड शैली के हैं। यदि मैं आपको एक मंदिर इण्डोनेशिया का दिखाऊँ और एक मंदिर मेक्सिको का दिखाऊँ तो आप निश्चय ही भूल जायेंगे कि कौन कहाँ का है? वे इतने समान हैं। यदि कुछ जो आर्किटेक्चरल डिजाइन है भारत के और मेक्सिको के, दिखाऊँ तो आप निश्चय ही पहचान नहीं सकेंगे कि कौन-सा भारत का है, कौन-सा मेक्सिको का है।

अभी भी वहाँ के चर्चों में, जिनको चर्च बना लिया गया, उन चर्चों में आप चले जायें तो उनका आर्किटेक्चर, उनकी भवन निर्माण कला बिल्कुल भारतीय नजर आएगी। उन चर्चों में किसी में आपको घण्टियाँ लटकती नजर आयेंगी, स्वस्तिक के चिह्न नजर आयेंगे, किसी में कमल के फूल नजर आयेंगे। दुनिया भर के किन्हीं चर्चों में नहीं होते हैं वे उनके चर्चों में क्यों? वह निश्चय ही भारत ने उसको खोजा, भारत ने उसको सुसंस्कृत किया। भारत ने उनको सूर्यपूजा, शिवपूजा, गणेश पूजा, दुर्गा की पूजा दी। भारत ने उनको अपनी संस्कृति दी और भारत की अनेक चीजें अभी भी इतने वर्षों के पश्चात् भी वर्तमान हैं। लगभग तीन सौ साल पहले स्पेन के लोगों ने वहाँ जाकर अत्याचार किया और मार-काट कर उन लोगों को खत्म करके उन लोगों को धर्मान्तरित कर ईसाई बनाया।

वहाँ तीन किस्म की जाति के लोग हैं। एक है मय। मय जाति है। मय दानव की जाति। 'मय' कौन है? मन्दोदरी का पिता मय दानव। वे कहते हैं पाताल में राज्य था। यदि आप भूमण्डल का गोला लेवें और भूमण्डल के गोले में भारत से सीधा एक सलाई को पार करें तो सीधी जाकर दूसरी ओर निकलेगी मेक्सिको में।

तो भारत से सीधा और 12 घण्टे का अंतर होने के कारण (इसलिए भारत में दिन है तो वहां रात है), दूसरी ओर होने के कारण से भारत की दृष्टि से पाताल है। इसलिये पाताल देश में उसका राज्य था। और जो पुराण में काव्यात्मक शैली में चीजें कही गई हैं, उनको इतिहास और भूगोल की चौखट में कसने पर अनेक तथ्य प्रकट होते हैं। इसलिये वह मय जाति है जिसको 'माया' कहा जाता है।

दूसरी जाति है इंका। इंका जाति के राजा त्रिशूल धारण करते थे। और त्रिशूल के साथ शंख है। ये इंका जाति के लोग हैं। इंका जाति के लोग अपने-आपको सूर्यवंशी कहते हैं, इक्ष्वाकु वंशी कहते हैं। सूर्य की अनेक गाथाएं और रामायण की अनेक परंपराएं अभी भी उनमें जीवित हैं।

तीसरे लोग Aztec हैं वे लोग आस्तिक हैं। आस्तिक से (Aztec) शब्द बना है। उनके यहाँ आज तक Red Indians में और पुराने इंका लोगों और मय में, एक उत्सव होता है जिसको वे राम-सीता Festival कहते हैं। राम-सीता का उत्सव खेलते हैं। रामलीला खेलते है।

सूरीनाम में तो जो भारतीय लोग गये हैं उन्होंने रामलीला शुरू की है। सूरीनाम भी दक्षिणी अमरीका में है। लेकिन इसमें पीरू में, बुलगेरिया में, अर्जेण्टीना में, ग्वेटमाला में। ग्वेटमाला को शोधकर्ता कहते हैं गौतमालय। गौतम का आलय। अर्जेण्टीना के लोग कहते हैं अर्जुन तनय। अर्जुन का पुत्र। विभिन्न नाम लोग खोजते हैं। बड़ा भारी शोध का विषय है। बहुत बड़ा शोध का क्षेत्र खुला हुआ है। बहुत ज्यादा शोध की आवश्यकता है।

वहाँ पर स्पेन के लोगों ने बड़े अत्याचार किये। इंका राजा को कहा कि यदि तुम अपनी भलाई चाहते हो तो ईसाई धर्म ग्रहण कर लो। सूर्य पूजा, राम-सीता Festival छोड़ दो। ईसाई बन जाओ। उसने कहा—यह मेरा परंपरागत विश्वास है, इसे मैं कभी नहीं छोड़ सकता। तब उन्होंने कहा कि यदि तुम नहीं मानोगे तो हम तुम्हें फाँसी पर चढ़ा देंगे। और कत्लेआम शुरू हुआ। उसका हृदय द्रवित हो गया। उसने कहा—प्रजा का कत्लेआम मत करो। प्रजा की रक्षा के लिये मैं ईसाई बनने को तैयार हूँ। उसको एक हाथ में क्रॉस पकड़ाया गया और एक हाथ में बाइबिल पकड़ायी गयी। मैं ईसा मसीह को अपना व्यक्तिगत मुक्तिदाता मानता हूँ। मैं उसकी शरण में जाता हूँ इसकी घोषणा की। एक फूस के ढेर, पुआल के ढेर पर खड़ा करके प्रतिज्ञा करायी गई, हाथ-पैर उसके बंधे हुए थे, प्रतिज्ञा करवाकर पुआल को आग लगा दी गई। जलने से कहा, अरे! यह क्या करते हो? पापी, द्रोही लोगों, तुम लोगों ने कहा ईसाई बनने पर नहीं मारोगे। तुम मुझे जला रहे हो! उन्होंने कहा—हाँ, हमने कहा ईसाई नहीं बनोगे तो फांसी चढ़ायेंगे, अब तुम ईसाई बन गये हो, हम तुम्हें फांसी नहीं चढ़ा रहे हैं हम केवल तुम्हें जीवित जला रहे हैं।

इतने अत्याचार, घोर अत्याचार हुए। उनके अत्याचारों की कहानी आप पढ़ें तो आपका हृदय विदीर्ण हो जाय।

चतुर्थ पर्दा

एशिया में इंडोनेशिया से ऊपर एक द्वीप समूह है उस द्वीप समूह को आप एक अन्य नाम से जानते हैं। 1965 में All India history conference रांची में हुई। रांची विश्वविद्यालय ने मुझे भी बुलाया। उन इतिहास के पंडितों को विद्वानों को हमने संस्कृत विहार में बुलाया। वहां मैंने मानचित्र में दिखाकर पूछा एशिया के ऊपर द्वीप समूह का क्या नाम है? बोले फिलिपाइन। मैंने कहा फिलिपाइन से पहले क्या नाम? बोले फिलिपाइन। डॉ. ओझा History के Head हैं रांची विश्वविद्यालय में। उन्होंने कहा डॉ. ओबराय आप क्या कर रहे हैं? इतने बड़े-बड़े विद्वान आये हैं दुनिया भर के, देश भर के, आप उनसे जिरह कर रहे हैं, बच्चों की तरह पूछ रहे हैं इस देश का क्या नाम है? इसका नाम फिलिपाइन तो है और क्या है? मैंने कहा इतिहास की सौगंध खाकर कहो जिस इतिहास के नाम की रोटी खाते हो। उस इतिहास की सौगंध खाकर कहो कि यह एशिया में है कि यूरोप में है। एशिया में है। मैंने कहा पुनः इतिहास की सौगंध खाकर कहो एशिया में फिलीप कौन हुआ और फिलिपाइन कौन हुआ। अब तो उनके पांव की धरती खिसकने लगी। ओह फिलीप से फिलिपाइन बनता है। मैंने कहा नहीं आसमान से नाम टपकता है। नाम कहां से आता है? फिलीप नहीं तो फिलिपाइन कौन हुआ एशिया में। तब कहा आप ही बता दीजिये। मैंने कहा मैं इतिहास का पंडित नहीं हूं। आप तो इतिहास के बड़े-बड़े पंडित हैं, इसलिए मैं पूछना चाहता था कि जितना मैं जानता था उससे अधिक जानकारी मिल जाए। मूलतः में भारतीय दर्शन का, भारतीय पुरातत्त्व का और भारतीय इतिहास का प्रेमी हूं, भारतीय विद्या की खोज करता हूं, भारत की विभूति जहां-जहां फैली है History में Geography में Science में, Anthropology में, किसी भी विषय में, उनकी खोज करता हूं जरूर। आप इतिहास में ईसा से 1,000 साल पहले, 2,000 साल पहले, 5,000 साल पहले, 10,000 साल पहले की खोज करते हैं। उस पर Research करते हैं, करवाते हैं–Research की डिग्रिया देते हैं, M.A., P.H.D. DiLit (D.L.T.) देते हैं। आज से केवल 325 साल पहले साढ़े सात हजार द्वीप फिलिपाइन के जो हजारों सालों से भारतीय संस्कृति से जगमगाते रहे उनका नाम क्या है यही आप भूल गये हैं? उन्होंने कहा नहीं आप ही बता दीजिए। मैंने कहा उसका नाम था महाकलिङ्ग। उन्होंने कहा महाकलिङ्ग हमने कभी सुना नहीं। मैंने कहा आप कभी सुनोगे भी नहीं क्योंकि आपने दूषित इतिहास पढ़ा है।

जब अशोक ने कलिङ्ग पर आक्रमण किया तो कलिङ्ग में बहुत अत्याचार हुआ, बहुत रक्तपात हुआ। उस हाहाकार-चीत्कार को देखकर उसका हृदय

परिवर्तन हो गया। उसने कहा, मैंने बड़ा अपराध किया। आपके स्वजनों को, बांधवों को मारा है। इसलिये में प्रायश्चित्त करना चाहता हूँ। मैंने तलवार तोड़ दी है। उसने कहा—मैं कैसे प्रायश्चित्त करूं? जनता ने कहा, हमारे मरे हुए स्वजन तो लौटकर के नहीं आयेंगे। राजा का हृदय परिवर्तन हो जाना ही सबसे बड़ा प्रायश्चित्त है। अब हम क्या कह सकते हैं? हम लोग हैं उत्कल निवासी। जिसकी कला बड़ी उत्कृष्ट है वही उत्कल। हम कला में बड़े उत्कृष्ट हैं। हम हैं कलाकार। हमने भुवनेश्वर जैसे मंदिर बनाये, हमने कोणार्क जैसे मंदिर बनाये। हमने अलौकिक मूर्तियाँ उकेर दी। पत्थरों को मोम की तरह बना दिया है। आप यदि सहयोग करें तो देश-विदेश में जाकर भारतीय संस्कृति के चित्र अंकित कर देवें। अशोक ने उनको सहायता दी। उनको जहाज दिए, बेड़े दिये। तो सबसे पहले उनका जहाज वहाँ से चलकर, कलिङ्ग से चलकर दक्षिण-पूर्व एशिया में जावा द्वीप में पहुँचा।

राष्ट्रपति सुकर्ण ने पंडित नेहरू को एक पत्र लिखा सन् 1947 में। पंडितजी, आप हिन्दू हैं। पर हम भी हिन्दू हैं। मेरे देश इंडोनेशिया के पहले इंडो शब्द लगा है, उस इंडो का अर्थ ही हिन्दू होता है।

ग्रीक लोग जब भारत में आये, उन लोगों ने ईरान से पूछा—अब अगला देश कौनसा है। उन्होंने कहा Land of Hindus हिन्दुओं का देश है। तो ईरानी लोग सिंधु को हिन्दू बोले। 'स' को 'ह' बोलते हैं। पर ग्रीक लोग जो थे 'ह' का ही उच्चारण नहीं कर सकते थे। इसलिये सिंधु को इण्डु कहते थे, सिन्धुज को इण्डुज कहते थे। उसी के प्रभाव से अंग्रेजी में अनेक शब्द हैं जहाँ 'ह' की ध्वनि लुप्त हो जाती है। लिखे Hour (हॉवर) पढ़े 'ऑवर', लिखे Honest (होनेस्ट) पढ़े ऑनेस्ट। Honory को पढ़े ओनरी। 'ह' की ध्वनि कहाँ गई? सिकंदर के देशवासियों के पेट में! इसलिये Hindus को बोले इण्डुज।

हर देश के नाम को स्त्रीलिङ्ग वाचक बनाते थे। हम कहें ग्रीस, वे कहें ग्रेसिया। हम कहें 'यवन', वे कहें 'आवोनिया'। वे सारे यूरोप के गुरु हुए। इसलिए हर देश का नाम स्त्रीलिङ्ग वाचक बनाया। ब्रिटेन-ब्रिटेनिया, स्लोवाक को स्लोवाकिया, फ्रांस को फ्रांसेसिया, चेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, स्पेन का स्पेनिया, पुर्तगाल का पुर्तगालिया। स्कन्दम-स्कन्द शंकर भगवान का पुत्र, स्केनेविया या स्केनेदनिया, लिथुन-लिथुनिया, जार्ज-जार्जिया, अरवान-अरवानिया, रूस-रसिया, इटली-इटालिया, जर्मन-जर्मेणिया, अरब-अरबेनिया। हर देश का नाम स्त्रीलिङ्ग वाचक बना। आर्रेमन-आरमेनिया और पार्श्व देश—पड़ोस का देश। पार्श्व देश माने परसिया। आगे देखा Land of Indus इण्डुज लैंड है। तो इण्डुज देश का नाम रख दिया। India नाम 2300 वर्ष पुराना है। 2300 वर्ष पहले मेगस्थनीज आया और पाटलीपुत्र गया। वहाँ पर जाकर चाणक्य से मिला, चन्द्रगुप्त को मिला, चाणक्य

का दर्शन करने गया। बड़ा रोमांचकारी वर्णन है। उसने सारे देश की यात्रा की और एक मोटा ग्रंथ भारत पर लिखा है इंडिका Indica। इंडिका माने India के बारे में। उसने उसके चप्पे-चप्पे पर इंडुज नाम दिया है। देशवासियों को Indus इंडुज कहा है, देश को India कहा है। Indian नाम 2300 वर्ष पुराना, इतने से ही सिद्ध हो गया तो इंडिया नाम अंग्रेजों का दिया हुआ, 300 वर्ष पुराना नहीं।

तो ईसा के जन्म से 300 साल पहले India नाम था और India नाम आया Indus से, Indus नाम आया Hindus से, और हिन्दू नाम आया सिंधु से और सिंधु नाम आया सप्त-सिंधु से, सप्त-सिंधु नाम आया वेद से। और वेद आया भगवान से। इसलिये हमारे नाम का कोई विदेशी मूल खोजे तो उसका अपना खोपड़ा विदेशी होगा। स्वदेशी खोपड़ा तो विदेशी मूल नहीं खोजेगा।

इसलिये सुकर्ण ने पंडित नेहरू को पत्र लिखा कि हमारे नाम के आगे इंडो शब्द लगा है उसका मतलब ही हिन्दू है। तो ग्रीक लोगों ने साढ़े तीन हजार द्वीप देखे दक्षिण-पूर्व एशिया में जिनमें हिन्दू संस्कृति है। नाम दिया इंडो। इंडो माने Hindu और 'निजज'। निजज कहते हैं द्वीप को। और स्त्रीलिङ्ग वाचक निजिया इसलिये इंडोनिजिया। इंडोनिजिया माने हिन्दू द्वीपसमूह। थोड़ा ऊपर गये तो देखा राजर्षि कम्बुज का देश है। अगस्त्यः कम्बु कौण्डियः राजेन्द्रश्चौलभूषणः। सर्वे दिग्जियिनाः ख्याताः शैलेन्द्रो बप्पा रावलः। तो कम्बुज में गये तो कम्बुज कह दिये कम्बोडिया। मंगोल गये तो कह दिया मंगोलिया। कुरव गये तो कर दिया कोरिया। मंजुश्री में गये तो कर दिया मंसुरिया।

एशिया में सबसे ऊपर का जो देश है जहाँ बर्फ से धरती ढकी रहती है। जहाँ लोग 12 महीने बर्फ रहने के कारण पक्के मकान बनाकर नहीं रह सकते, वे शिविर लगाकर रहते हैं। Camp life शिविर से हुआ। शिविर से हुआ साइबेरिया। तो दुनिया के सौ के करीब देशों के पीछे जो IA लगा है ग्रीक लोगों की शरारत है भाई! IA को हटाकर देखो तो सब भारतीय नाम झलकेंगे। भारत का जगद्गुरु रूप प्रतीत होगा। इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्ण ने लिखा—मेरा देश भी हिन्दू देश है। हमारे ईमान को तलवार की नोक पर ठगकर मुसलमान बना लिया होगा परन्तु हम संस्कृति से अभी भी हिन्दू हैं। पंडितजी, आपके दिल्ली में आते ही दिल्ली के मुख्य स्टेशन पर उतरने पर सामने भारत का कोई चित्र दिखाई नहीं देता। सामने लूले-लंगड़े, भिखमंगे, होटलों के एजेण्ट, वेश्यालयों के एजेण्ट दिखाई देते हैं। भारत कहाँ है?

मेरे देश इण्डोनेशिया में आओ, जकार्ता के मुख्य रेलवे स्टेशन से उतरने पर एक सर्कुलर पार्क है। चारों ओर फव्वारे चल रहे हैं। बीच में सोने की पीठिका पर गणपति की मूर्ति है। जाने वाले को अभयदान, आने वाले को आशीर्वाद देती है।

उन्होंने कहा, पंडितजी! आप हिन्दू हैं और ब्राह्मण हैं। पता नहीं आपके ब्राह्मण पिता ने मूल महाभारत का संस्कृत में पाठ किया या नहीं पर मेरे मुसलमान पिता प्रतिदिन प्रातःकाल मूल महाभारत का संस्कृत में पाठ करते थे और महाभारत के समूचे पारायण के बाद उन्होंने निश्चय किया कि सब चरित्रों में उत्तम चरित्र किसका है? उनको लगा कि कर्ण का चरित्र उत्तम है। ऐसा दाता, ऐसा वीर, ऐसा धनुर्धर, ऐसा बात का धनी। अपना वचन दिया तो वचन के लिये सबकुछ निछावर कर देने वाला। यदि उसके रथ का चक्का धरती में धंस नहीं जाता तो अर्जुन भी उसको परास्त नहीं कर सकता था। उन्होंने सोचा, मेरे घर में जब शहनाइयाँ बजेंगी, मेरे घर में जब पुत्ररत्न आयेगा तो उसका नाम रखूंगा कर्ण। सोचा, कर्ण में सब गुण थे पर एक बहुत बड़ा दुर्गुण था। उसने दुष्टों, पापियों—कौरवों का साथ दिया। यही उसमें दुर्गुण था। मेरे बेटे का नाम होगा सुकर्ण। इसलिये सुकर्ण कहता है मेरे नाम पर भारतीय संस्कृति की अमिट छाप है जो सात समुद्र से धुलने पर भी धुल नहीं सकती।

प्रिय पंडितजी! आपके देश के लोग, कलिङ्ग के लोग आये थे। यहाँ पर उन्होंने उतरते ही जौ की खेतियाँ देखी थी। जौ की खेती देखी तो उन्होंने इस देश का नाम यवद्वीप रख दिया। यव माने जौ। यव से जव, जव से जावा हो गया। उन्होंने कहा, जिस जगह उनका जहाज सबसे पहले उतरा उसको नाम दिया पूर्व-कलिङ्ग। कलिङ्ग से आये थे। पूर्व में एक और कलिङ्ग बनाया। यार्क लोग अमरीका में जाकर बसे तो न्यूयार्क बनाया। तो कलिङ्ग के लोग पूर्व में जाकर बसे तो उसको नाम दिया पूर्व-कलिङ्ग। पंडितजी, अभी भी उसका नाम है पोर्वोलिङ्गो। पूर्व-कलिङ्ग का नाम है पोर्वोलिङ्गो।

उन्होंने कहा, पंडितजी! भारत देश में विभाजन हुआ है। विभाजन के समय देश में बहुत बड़ी अशांति है। बड़ा अन्न संकट है तो जहाँ भारतवंशियों ने सबसे पहले जौ की खेती देखी थी और द्वीप का नाम यवद्वीप दिया था वहाँ से भारत के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिये, भारत की अन्न समस्या हल करने के लिये मैं एक चावल का जहाज उपहार के रूप में भेज रहा हूँ। उन्होंने चावल का जहाज भेजा।

वे पोर्वोलिङ्गो के स्थान से सीधे उत्तर की ओर बढ़े। बिल्कुल सीधे। तो कुछ लोग वहाँ बसे और कुछ लोग सीधे उत्तर की ओर चले गये। उत्तर की ओर जो लोग गये आज से 2320 वर्ष पूर्व, पहले। अशोक के समय की बात है वे लोग बिल्कुल उत्तर की ओर गये। उन्होंने देखा साढ़े तीन हजार द्वीप हैं जिनमें सभ्यता-संस्कृति नहीं है। जंगली लोग रहते हैं। उन्होंने भारतीय संस्कृति की शिक्षा दी, बड़े-बड़े मंदिर बनाये, बड़े-बड़े बौद्ध विहार बनाये, भारतीय संस्कृति का प्रचार

किया। उसको नाम दिया महाकलिङ्ग (कलिङ्ग द्वीपसमूह)। कलिङ्ग द्वीपसमूह साढ़े सात हजार द्वीपों का समूह है।

पर दुर्भाग्य से अमरीका में उन्होंने धर्मांतरण करने के बाद अमरीका में रक्तपात करने के बाद, अमरीका में तोड़-फोड़ करने के बाद मय देश को, मय जाति को, इंका जाति, Azect जाति को नष्ट प्रायः करने के बाद और वहाँ सीधे समुद्र मार्ग से पहुँचे गये महाकलिङ्ग। महाकलिङ्ग में आकर वहाँ मंदिरों को तोड़कर गिरजाघर बनाया। वहाँ की जनता को मार-काट डाला। बहुतों को धर्मान्तरित करके ईसाई बनाया। स्पेन के राजा फिलिप के नाम पर उसको नाम फिलिपाइन दे दिया। इस प्रकार विश्व इतिहास के चार पर्दे स्पष्ट है—

ईसा के मानस पर भारतीय प्रभाव, ईसा के पूर्व सारे यूरोप में सूर्य पूजा का प्रचलन, मध्यपूर्व के देशों में भारतीय प्रभाव होना, मध्य पूर्व के प्राचीनतम देश मिस्र पर भारतीय प्रभाव और यूनान यूरोप का प्राचीनतम देश है जिसे यूरोप अपने विचारों की जननी मानता है वह स्वयं भारत से प्रभावित एवं प्रेरित था। मुहम्मद पूर्व अरब में भारतीय प्रभाव, अरब के आस-पास के देशों यानी मध्य एशिया में भारतीय प्रभाव, कोलम्बस से पूर्व अमरीका में और फिलिप से पूर्व फिलिपाइन में भारतीय प्रभाव—इन पर्दों के हटते ही सारे विश्व में भारतीय संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकने लगता है।

आप मेरी आँखों पर काली पट्टी बांधकर विश्व के गोलाकार मानचित्र पर मेरी अंगुली जहाँ कहीं, जिस किसी देश पर टिक जाये, उस देश ने भारत से, भारत की संस्कृति से क्या अवदान प्राप्त किया है, मैं यदि प्रमाणित नहीं कर सकूं तो तत्काल मेरा शिरोच्छेद कर दिया जाए।

जब अत्यन्त बौद्धिक शक्तियों एवं अद्भुत वक्तृत्व शक्ति से सुसज्जित यूरोपियन भारत जाकर भारतवासियों से यह कहे कि उच्चतम ज्ञान की कुंजी यूरोप वालों के पास नहीं तुम्हारे पास है तथा तुम्हारे देवता, तुम्हारा दर्शन और तुम्हारी नैतिकता की यूरोप वाले छाया भी नहीं छू सकते, तब उसमें आश्चर्य क्या है कि भारतवासी हमारी सभ्यता से पीठ फेर ले।

—**सर वैलेनटाइन**

मेरी अमरीका यात्रा-I

परम प्रभु परमेश्वर की अनन्त वात्सल्यमयी दया से मैं सात समुद्र पार कर अमरीका महादेश में पहुँच गया हूँ। महामना मालवीयजी के पावन आदर्श से प्रेरित हो मैं अपने प्रिय स्वदेश से भारत की धूलि एवं गंगाजल साथ ले आया हूँ। प्रतिदिन प्रातः स्नानोपरान्त गीता के पावन अमृतकुण्ड में अवगाहन करने के पश्चात् सूर्यनारायण को जलांजलि अर्पित कर गंगाजल के सुधाबिंदु से आचमन कर गीता माता, गंगा माता एवं भारतमाता के प्रति भावांजलि समर्पित करता हूँ।

अमरीका तक की मेरी यात्रा अत्यन्त स्फूर्तिदायक तथा उत्साहवर्धक रही है। हमारा हवाई जहाज ईरान के बाद बेरूत, दमिश्क, बगदाद, साइप्रस और यूनान को पार करता हुआ इटली जा पहुँचा। रोम और वीनस नगरों का ऐतिहासिक महत्त्व सजीव हो उठा। रोम तथा वीनस प्राचीन रोमन तथा यूनानी संस्कृतियों के महान् केन्द्र रहे हैं। पाश्चात्य लोगों का विचार है कि सभ्यता यूनान के एथेन्स नगर से प्रारम्भ हुई जो सुकरात, प्लेटो तथा अरस्तू की स्मृतियों से प्रसिद्ध है तथा यूरोप के भिन्न-भिन्न नगरों को सभ्यता का दान देने के बाद वह लहर अमरीका में पहुँची। उसे अंतिम दान दे कर फिर वह सभ्यता की धारा सदा के लिए विलुप्त हो गई। इस प्रकार पश्चिमी लोगों को भ्रान्ति है कि सभ्यता का क्षेत्र एथेन्स से हालीवुड तक ही है तथा अन्य किसी प्रदेश को सभ्यता का अंश भी प्राप्त नहीं हुआ। वास्तव में यूनान के ऐथन्स नगर का नाम यूनान के जिस राष्ट्रीय महाकवि होमर के साथ अविभाज्य रूप से जुड़ा हुआ है वह यूनान के राष्ट्रीय महाकाव्यों का गायक स्वयं भारतीय महाकाव्यों से प्रभावित था। भारत के महाकवि सूरदास के समान दोनों नेत्रों से विहीन प्रज्ञाचक्षु होमर एथेन्स नगर की सीढ़ियों पर बैठा हुआ अपने हृदय के गुम्फित भावों को काव्य कलिकाओं में प्रकट करता जाता था। उसके इलियड नामक महाकाव्य पर रामायण महाकाव्य का सुस्पष्ट प्रभाव नजर आता है। रामायण के कथानक के समान इलियड में भी रानी के आग्रह पर राजा पुत्र को वनवास देता है। उसके साथ छोटा भाई और पत्नी भी चल पड़ते हैं। वन में एक राक्षस उनकी पत्नी उठा लेता है। नायक वनवासी लोगों से मित्रता कर उनकी सेना सजाकर युद्ध की तैयारी करता है। राक्षस का राज्य एक द्वीप में है। नायक दो बार दूत भेजता है। अन्त में युद्ध होता है। राक्षस

का एक बंधु नायक का भक्त होता है। राक्षस का कुल समेत नाश होता है। इस प्रकार यूनान का महाकाव्य 'इलियड' रामायण का ही अनुवाद है। सुकरात का भारत के एक मनीषी से वार्तालाप यूनानी इतिहासकारों द्वारा भी प्रमाणित तथ्य है। अरस्तू का सिकन्दर से भारत से भगवद्गीता लाने के लिए आग्रह, सिकन्दर का भारत के दार्शनिकों से वार्तालाप, प्लेटो की विचारधारा पर भारतीयता की छाप, सभी विश्व विश्रुत तथ्य हैं। यूनानी जब भारत में आए तो कपास देखकर विस्मित हुए। कहा— भारतीय क्या विचित्र लोग हैं, ये पौधों पर रुई उगाते हैं। तब तक उन्होंने न गन्ना देखा था, न खाण्ड चखी थी। गन्ने का रस निकलता देखकर बोले— 'भारतवासी भी अजीब लोग हैं, ये लकड़ियों को निचोड़ कर शहद निकालते हैं।' दुनिया जीतने की इच्छा वाले यूनानियों ने न कपास का कपड़ा पहना था, न खाण्ड चखी थी तथा संभवतः इस्पात (Steel) भी नहीं देखा था। पोरस से सन्धि के समय सिकन्दर को 20 पौण्ड (10 सेर) फौलाद का उपहार दिया तो सिकन्दर विस्मित हो गया। आज यूनान भी अपनी प्राचीन परम्पराओं से विस्थापित होकर केवल कंकालमात्र शेष बचा है जिसके भीतर आज ईसाई धर्म का भूत घुसा हुआ है। यही हाल रोम का है। वायुयान रोम के ऊपर पहुँचा तो रोम के प्राचीन गौरव का स्मरण कर काल की क्रूरता पर अश्रुपात हुआ। रोम के प्राचीन देवी-देवता आज कौन पहचानता है? यूनान के देवताओं के समान वे भी आज संग्रहालयों में बन्दी पड़े हैं। शताब्दियों से उन्हें जनगण की श्रद्धा का अर्घ्य प्राप्त नहीं हुआ। स्वयं रोम में प्राचीनकाल के एक सूर्य मन्दिर के अवशेष हैं। उस 'आदित्यालय' का नाम बिगड़कर ऐतालय, इतालय हो गया। जैसे आदित्यवार का नाम ऐतवार, इतवार हो गया। जैसे हिमालय का नाम बिगड़ कर हिमालिया बोला जाने लगा वैसे ही इतालय का नाम इतालिया (Italia) पड़ गया तथा वही आज तक पूरे देश इटली का नाम है।

इटली का एक अन्य प्रसिद्ध नगर वीनस वायुयान से ही देखा। यूरोप के इस सुन्दर नगर का नाम वीनस (Venus) नामक देवता के नाम पर पड़ा जो शुक्र ग्रह का ही नाम है। शुक्र का वीनस नाम स्वयं वेद से ही निकला है—अयं वेनश्च शुक्रः। इसके पश्चात् वायुयान फ्रांस देश पर उड़ने लगा। सहसा सिलवन लेवी तथा रोम्यां रोलां जैसे भारत भक्तों की स्मृतियाँ स्मृतिपटल पर उभरने लगीं। रोम्यां रोलां ने विश्वविजेता स्वामी विवेकानंद एवं पुण्यश्लोक श्री रामकृष्ण परमहंस की जीवनियाँ मानो लेखनी को हृदयरस में भिगो-भिगो कर लिखी हैं। शब्द-शब्द पर प्रेमाश्रुपुलक हो जाता है। रोम्यां रोलां स्वामी विवेकानंद के विषय में लिखते हैं—उनके शब्द एक महान् संगीत हैं, बीथोवन। (यूरोप के महान् संगीतकार) के पदों के समान, हैंडल के सहगीतों की लय वाले। मैं, अपने समय से 30 वर्ष पूर्व कहे हुए इन शब्दों को, बिना अपने भीतर एक बिजली की कौंध का अनुभव किए स्पर्श भी नहीं कर सकता हूँ तथा उस समय कैसा आनन्द बरसा होगा जब

वे ज्वलन्त शब्द साक्षात् उस महापुरुष (विवेकानन्द) के मुख से निसृत हुए होंगे। इसी पेरिस नगर में सन् 1939 में एक चमत्कार हुआ। अचानक द्वितीय विश्वयुद्ध छिड़ने का समाचार सुनते ही फ्रांस के प्रधानमंत्री के हृदय पर ऐसा आघात लगा कि वे प्रायः संज्ञाशून्य हो गये। जब बड़े-बड़े डाक्टर भी हार गये तो प्रधानमंत्री ने संकेत से बताया कि मेज पर पड़ी टैगोर की गीतांजलि की प्रति उठाई जाय तथा पेरिस की किसी सुन्दर गायिका से गान करवाया जाय। जब सचमुच गीतांजलि के रहस्यवादी गीतों का गान करवाया गया तो प्रधानमंत्री के प्राणों में प्राण आए।

इंग्लिश चैनल को पार कर वायुयान लन्दन की ओर चला। आज से 55 वर्ष पूर्व का दृश्य नेत्रों के सम्मुख तैरता हुआ आ गया जब सन् 1907 में 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम का इतिहास लिखने पर स्वातंत्र्य वीर सावरकर को बन्दी बनाकर इंग्लैण्ड से भारत लाया जा रहा था, उस इतिहास दुर्लभ महापुरुष ने जहाज की शौच नालिका से समुद्र में छलांग लगा दी थी तथा सारा इंग्लिश चैनल अपनी भुजाओं के बल पर तैर कर फ्रांस देश में पहुँच गया था। मेरी हार्दिक मनोकामना है कि इंग्लिश चैनल के दर्शन पर उमड़े हुए मेरे अश्रुमुक्ता उस जीवित शहीद, स्वातंत्र्य वीर सावरकर के चरणों में पहुँचें।

इंग्लैण्ड में राजधानी लन्दन का दृश्य देखा। दोपहर का भोजन वहीं किया। प्राचीनकाल के इंग्लैण्ड में शेष यूरोप के समान ही सूर्यपूजा चलती थी। पुराने लन्दन नगर में भी मिट्रोडोटस का (मित्र-उदय-स्) का मन्दिर है। सारे यूरोप के समान इंग्लैण्ड के जिप्सी भी मूलतः भारत से आए हुए हैं। उनकी रोमनी भाषा में संस्कृत व हिन्दी के अनेक शब्द हैं। वे भारत के डोम, भाट तथा लोकगीत गायकों के समान अपने इकतारे पर लोकगीत गाते रहते हैं। स्वर्गीय डॉ. रघुवीर ने एक बार बताया था कि आयरलैण्ड के जिप्सी लोग हिमपात वाले दिन को हाँव दिवस (हिम दिवस का रूपान्तर) बोलते हैं। इसी इंग्लैण्ड में महान् जर्मन विद्वान मैक्समूलर भारत का यश गाते नहीं अघाता था—'If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that nature can bestow—in some parts a very paradise on earth—I should point to India. If I were asked under what sky the human mind has most fully developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found sometimes solutions of some of them which will deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant—I should point to India. And if I were to ask from myself what literature we, here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thoughts of Greeks

and Romans, and of one Cemitic race, the Jeuish, may draw that corrective which is almost wanted in order to make our inner life more perfect, more comprehensive, more universal, in fact more truly human, a life, not for this life only, but a transfigured and eternal life—again I should point to India.'

इसी इंग्लैण्ड के चैलसी गांव का सन्तकवि कार्लायल गीता का महान् भक्त हुआ। जब अमरीका के सन्त इमर्सन की कार्लायल से भेंट हुई तो दोनों ने एक-दूसरे को भगवद्गीता ही भेंट की। इस घटना को पढ़ते ही डॉ. राधाकृष्णन् ने पाश्चात्य दर्शन की पुस्तकों को उठाकर ताक पर धर दिया तथा भगवद्गीता का गम्भीर अध्ययन प्रारम्भ किया। उसी भगवद्गीता माता की कृपा से आज संसार को हिन्दुत्व का इतना बड़ा व्याख्याता, महामनीषी प्राप्त हुआ है।

अन्ध महासागर की अनन्त गहराइयाँ नीचे अंगड़ाइयाँ ले रही थीं। ऊपर वायुयान 36000 फुट की ऊँचाई पर नभ के नीले आंगन में तैरता जा रहा था। लन्दन से 2360 मील की नभयात्रा करके हम बोस्टन नगर पहुँचे। यह वह इतिहास प्रसिद्ध नगर है जहाँ ब्रिटिश साम्राज्य की दासता से मुक्ति पाने के लिए 16 दिसम्बर, 1773 को स्वातंत्र्य क्रान्ति की चिनगारी फूटी। अंगरेजों के शासन से तंग आए हुए कुछ अमरीकी लोगों ने रेड इण्डियन लोगों का वेश बनाकर बोस्टन के बन्दरगाह पर खड़े अंगरेजी चाय के 3 जहाजों का सारा सामान समुद्र में फेंक दिया तथा कहा कि आज समुद्र की मछलियाँ 'टी पार्टी' करें। इसे 'बोस्टन टी पार्टी' कहा गया। इसके 120 वर्ष पश्चात् सन् 1893 में इसी नगर की गलियों में भारत का 29 वर्ष का नवयुवक भूखा-प्यासा, मित्रहीन, धनहीन, आश्रय विहीन घूम रहा था। रात्रि की कड़ाके की सर्दी में उस एक वस्त्रधारी युवक ने रेल्वे स्टेशन के सामने एक लकड़ी के खोखे में (टूटे हुए पार्सल बक्से में) विश्राम किया। प्रातःकाल हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के ग्रीक विभाग के अध्यक्ष प्रो. डॉक्टर राईट ने उसे देखा तो घर ले गया। थोड़ी देर की बातचीत के पश्चात् उसने उस युवक को शिकागो के सर्वधर्म सम्मेलन के मंत्री के पास भेजा तथा लिखा—'Here is a holy man from India who is much more wiser than all the wisest professors of America put together.' यह वह तरुण संन्यासी था जिसको विश्व ने विश्वविश्रुत स्वामी विवेकानंद के रूप में पूजा। बोस्टन से हम पट्टन के लिए चले। मार्ग में (Concord) कानकार्ड नगर आया जो इमर्सन का नगर था। इमर्सन की गीता भक्ति एवं वेदान्त प्रेम के विषय में मैं ऊपर संकेत दे चुका हूँ। तत्पश्चात् हम वालडन पोण्ड (Waldon pond) ग्राम के पास पहुँचे, जहाँ इमर्सन का गीता प्रेमी मित्र एवं प्रेरक थोरो जंगल में आश्रम बना कर रहता था। उसकी भारत भक्ति भी अनूठी थी। (शेष अगले अंक में)

मेरी अमरीका यात्रा-II

आशा है नभ के वक्ष में 31 हजार फुट की ऊँचाई से वायुयान में लिखा हुआ मेरा यह तुच्छ पत्र निखिल ब्रह्माण्ड में प्रभु कृपा का साक्षी होगा। ऊपर अनन्त आकाश का मेघमण्डित चंदोवा है, नीचे धरती की गोदी में लहराता हुआ भूमध्य सागर। बीच में हम वायु की लहरों में तैर रहे हैं। प्रभु की अनन्त कृपा से आनंद मंगल से यात्रा चल रही है।

हम प्रातःकाल 5.30 बजे (ईरान के समयानुसार) ईरान की राजधानी तेहरान पहुँच गये थे। उस समय हमारी घड़ियों में 7 बज रहे थे किन्तु ईरान भारत से पश्चिम में होने के कारण वहाँ उस समय सूर्यनारायण का प्रकाश पहुँचा ही था। अतः वहाँ का स्थानीय समय केवल 5.30 बजे था। अतः हमें अपनी घड़ियाँ 1.30 घण्टा पीछे करनी पड़ी। तेहरान में 1 घण्टा भर विश्राम हवाई अड्डे पर ही हुआ। वहाँ कुछ ईरानी कारीगरी के सुन्दर नमूने, चाँदी के बर्तन, कलापूर्ण वस्तुएँ, ईरानी कालीन इत्यादि बड़े आकर्षक थे किन्तु धनाभाव से केवल देखने का आनन्द प्राप्त किया। ईरान का छिलकेवाला नमकीन पिस्ता, बहुत अच्छा, मोटे दाने का मिलता था किन्तु सरकार की ओर से करंसी की कठिनाइयाँ होने के कारण उन वस्तुओं का दर्शन करके ही लाभ उठाया। फिर वहाँ घंटाभर विश्राम करने के पश्चात् पुनः वायुयान चला। मार्ग में दमिश्क तथा बगदाद के प्राचीन नगरों को वायुयान से ही प्रणाम किया। हम 31 हजार फुट की ऊँचाई पर उड़ रहे हैं, हिमालय पर्वत की सबसे ऊँची चोटी से भी 2000 फुट ऊँचे। नीचे मनुष्य के बसाए हुए नगर बच्चों के खिलौने तथा घरौंदों जैसे दिखाई देते हैं। प्राचीनकाल में दमिश्क नगर भारत के व्यापार को पश्चिम से जोड़ने वाला संसार का महानतम व्यापार-केन्द्र था।

बगदाद के अरबों ने भारत से बहुत कुछ सीखा है। स्वर्गीय डा. रघुवीर के एक लेखानुसार बगदाद का प्राचीन नाम भगदत्त था। भारत के सांस्कृतिक प्रभाव का साक्षी प्राचीन मेसोपोटामिया का देश आज इराक के नाम से प्रसिद्ध है। इसी की राजधानी बगदाद प्रसिद्ध है। इसी बगदाद के खलीफा ने दुनिया के अनेक देशों पर हमले किये थे तथा हजरत मुहम्मद के देहान्त के पश्चात् लगभग दो सदियों में

एशिया एवं यूरोप के अनेक देशों पर आधिपत्य कर लिया था। अरबों के भारत पर आक्रमण की कहानी भी सहज याद आ जाती है। अरब के खलीफा के सेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने भारत के सिंध प्रदेश पर आक्रमण किया था। वह अरबों का भारत पर प्रथम आक्रमण था। सिंध के राजा दाहर ने वीरता से मुकाबला किया था किन्तु अपने ही कुछ देशवासियों के द्रोह के कारण युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। मुहम्मद बिन कासिम ने राजा दाहर की दो जवान लड़कियों को बंदी बनाकर बगदाद के खलीफा को भेंट करने के लिए भेजा। भारत की उन वीर बालाओं ने स्वाभिमान की रक्षा के लिए एक युक्ति निकाली। उन्होंने बगदाद पहुँचने पर खलीफा को झूठ-मूठ बताया कि मुहम्मद बिन कासिम ने पहले ही उनका सतीत्व भंग कर दिया है। इस पर खलीफा को इतना क्रोध आया कि उसने आदेश दिया—मुहम्मद बिन कासिम को एक बैल की खाल के अन्दर सीकर बगदाद भेजा जाय। इस प्रकार राजा दाहर की उन दो बेटियों ने नितान्त असहाय होते हुए भी अपने सम्मान एवं मातृभूमि के स्वाभिमान की ओर कुदृष्टि डालने वाले, भारत पर प्रथम अरब आक्रान्ता मुहम्मद बिन कासिम को दण्डित किया। बाद में भेद खुल जाने पर खलीफा ने उन बच्चियों को एक रथ के पीछे बंधवाकर सारे बगदाद शहर में घसीटने का आदेश दिया जिससे दूर विदेश में स्वदेश की स्वाभिमानिनी बालाओं का प्राणान्त हुआ। उन महान् स्मृतियों को जगाने वाले बगदाद नगर का नभ दर्शन भी बड़ा प्रेरक रहा।

भूमध्य सागर के तट पर यह मनोरम घाटी में बसा हुआ बेरूत नगर है। इसका हवाई अड्डा तेहरान से भी अधिक सुन्दर है। मध्य एशिया के लेबनान देश की यह राजधानी है। यहाँ हवाई अड्डे पर कलाकारी की अत्यन्त सुन्दर वस्तुएं मिलती हैं। यहाँ के लोग भी सज्जन हैं। आचार-व्यवहार एवं वेशभूषा पर यूरोप का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है।

यूरोप का प्रभाव ईरान पर भी है। बेचारा ईरान अपना स्वत्व खोता जा रहा है। प्राचीनकाल में यह आर्यान-देश (आर्यों का देश) ही था। पड़ोस में होने के कारण इसे पार्श्वदेश भी कहा गया जिससे पारस देश बना। संस्कृत साहित्य में इसे पारसीदेश कहा गया। यहाँ के ही पारसी लोग थे जो अग्निपूजक थे। इस्लाम की तबलीग की तलवार के आगे यह देश टिक न सका। कुछ पारसी लोग अपने धर्म की रक्षा के लिए अपने अग्निदेवता को छाती से लगाये भारत में भाग आए थे। तभी से वे पारसी लोग बम्बई के निकटस्थ क्षेत्रों में बसे हुए अपने धर्म का पालन करते आ रहे हैं। जहाँ भारत ने पारसी लोगों को शरण दी वहाँ वे पारसी लोग स्वयं अपने देश में भी अपने धर्म की रक्षा न कर सके तथा तलवार की नोक पर सभी को मुसलमान बना दिया गया। दुर्भाग्य से पारसियों के देश में आज भी जरदुस्त्र के

अनुयायियों (पारसियों) के लिए कोई आदर का स्थान नहीं है। ईरान की प्राचीन भाषा 'जेंद' वेद के 'छन्द' से मिलती है, उनके प्राचीन ग्रन्थ अवेस्ता में लगभग वेद की ऋचाएं ही गूंज रही हैं। किन्तु जब जाति का आनेवाला कल बीते हुए कल को पहचान नहीं पाता तो जाति का अपना वैशिष्ट्य नष्ट हो जाता है। आज ईरान के चेहरे पर ईरान का रंगरूप दिखाई नहीं देता। कई सदियों तक ईरान को विश्व के रंगमच पर अरब के इस्लाम का चेहरा पहनाकर नचाया गया, आज वह शीघ्रता से यूरोप का चेहरा लगाने के लिए बेचैन है। महिलाओं के बाल प्रायः कटे हुए हैं तथा पहनावा यूरोप की नकल का है।

फिर भी जरदुस्त्र के देश, शेराज के शेखसादी के देश, गुलिस्तां वोस्तां के देश, उमर खैयाम तथा अन्य विद्वानों के देश को देखकर अनेक प्रेरणाएं जागीं। ईरान के बाद बेरूत होकर हम साइप्रस द्वीप के ऊपर उड़ने लगे। भूमध्य सागर के तट पर यह अत्यन्त मनोरम साइप्रस द्वीप है। 35000 फुट की ऊँचाई से भी यह अत्यन्त मनोरम लगता है। समुद्र को छूता हुआ साइप्रस का भूमितट समुद्र के इस पश्चिमोत्तर किनारे को गोलाकार कटोरे का सा आकार दे रहा है। आकाश की इस महान् ऊँचाई से नीचे समुद्र से उठने वाले श्वेत बादलों का स्वतन्त्र लीलालोक दिखाई देता है। स्वच्छ रुई के अनन्त ढेरों के समान बादल सारे अन्तरिक्ष में फैले हुए हैं तथा कोई अज्ञात धुनिया धुन-धुन कर उनके हलके शुभ्र तैरते हुए खण्डों को वायु की लहरों पर फेंकता जा रहा है। हमारा वायुयान मेघदूतों के मायालोक से बहुत ऊपर उच्चतम ऊँचाई पर उड़ रहा है। साइप्रस बहुत काल तक यूनानी प्रभाव में रहा। इसके तनिक पश्चिम में यूनान इतिहास-प्रसिद्ध देश है। इसकी सुकरात, प्लेटो और अफलातूं की त्रिमूर्ति को प्रणाम। उसी यूनान का सिकन्दर साइप्रस से ईरान तक सभी देश जीतकर भारत आया था किन्तु पंजाबी सूरमाओं के सम्मुख वह विश्वविजेता भी दम तोड़ बैठा था। यूनान से होकर हमारा वायुयान अब इटली की ओर बढ़ रहा है। अतः 36000 फुट की ऊँचाई से इसी द्युलोक से ही उस प्राचीन संस्कृति के केन्द्र ज़ियस के रूप में वैदिक घोष को पूजने वाले उस यूनान देश को प्रणाम!!

मेरी दृढ़ मान्यता है कि हमारी संस्कृति के पास जितने समृद्ध भण्डार पड़े हैं उतने किसी के पास नहीं हैं। हमने अपनी अनादि संस्कृति को पहचाना ही नहीं है। हम अगर संस्कृति के अनुरूप नहीं जीये तो एक समाज के रूप में हम आत्महत्या की ओर अग्रसर होंगे।

—गांधीजी

भारतीय ज्ञान का प्रशंसक : थोरो

आज भारत के लिए संयुक्त राष्ट्र अमरीका की मित्रता बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि आज कम्यूनिस्ट चीन ने भारत की पीठ में विश्वासघाती छुरा घोंपा है। लेकिन यह सौहार्दपूर्ण घनिष्ठ सम्बन्ध केवल राजनयिक संकेत मात्र नहीं है। इस बंधन को दो महान् राष्ट्रों के बेहतरीन और मजबूत सांस्कृतिक मूल्यांकन की कड़ियों ने पाला है।

जिस तरह विवेकानन्द, रामतीर्थ, टैगोर और राधाकृष्णन का अमरीका में भारत के सांस्कृतिक दूत के रूप में स्वागत हुआ है, भारतीय भी अमरीका के थोरो ह्विटनी और होम्स जैसे प्रथम श्रेणी के यशस्वी व्यक्तियों के प्रति समान रूप से अत्यधिक सम्मान देते हैं, जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन भारतीय संस्कृति के अध्ययन और शोध में समर्पित कर दिया।

रोमां रोलां ने अपनी पुस्तक 'नये भारत के संत' (Prophets of New India) में लिखा है, 'यह जानना एक अत्यन्त रोचक एवं गंभीर चिंतन का विषय होगा कि उन्नीसवीं शताब्दी में किस प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अमेरिकी आत्मा को हिन्दू विचारों ने दृढ़ रूप से प्रभावित किया है।'—'क्योंकि इन विचारों ने अमरीका के आधुनिक चारित्रिक एवं धार्मिक मानसिकता को आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित किया है। मैं नहीं जानता कि कोई भी इतिहासकार इस के गहन चिन्तन पर अपना गंभीर समय दे सकेगा। तथापि मैं यह मानता हूँ कि सभ्यता के इतिहास से सन्नद्ध यह एक मनोवैज्ञानिक समस्या है।' रोमां रोलां ने इन शब्दों में अपना मन्तव्य प्रकट किया है।

आयरलैंड के कवि जे. डब्ल्यू. रसेल ने कहा है, 'आधुनिक चिन्तकों में गेटे, वर्ड्सवर्थ, इमर्सन और थोरो ने भारतीय ज्ञान के कुछ ही भाग के विषय में कहा है परन्तु उन्होंने जो कुछ भी कहा और लिखा है उसे प्राची (East) के पवित्र ग्रन्थों में ही पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकते हैं। श्रीमद्भगवदगीता और उपनिषद् में हम ईश्वरत्व के पूर्णता भरे ज्ञान का दिग्दर्शन कर सकेंगे। इनका अध्ययन और मनन करने वाले सहस्रों मनीषियों ने अपना पूरा जीवन खपा दिया होगा जिसके फलस्वरूप आत्मा की सत्यता का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

हेनरी डेविड थोरो (सन् 1817-1862), जिन्होंने न्यू हैम्पशायर राज्य के छोटे से शहर कानकार्ड का नाम अपने जन्म से पवित्र कर दिया है, वैसे ही उन्होंने अपने विशिष्ट आत्मिक अनुसंधान और उदार विचारों से सम्पूर्ण मानवता को पवित्र किया है। थोरो एक महान् अंतर्ज्ञान सम्पन्न आदर्शवादी थे जिन्होंने भारतीय अध्यात्म का भरपूर पान किया था।

प्राची का प्रकाश—भारतीय ज्ञान से थोरो इतने अधिक प्रभावित थे कि उनका सतत उद्घोष था कि प्रकाश प्राची दिशा से ही आता है। आज भी अध्येताओं का जीवन आदर्श यही है कि Ex-oriento Lux, प्रकाश पूर्व दिशा से ही आता है।

वेद

वेद मानवता के प्राचीनतम ग्रंथों में से हैं। मैक्समूलर ने ऋग्वेद को मानव के पुस्तकालय में सबसे पुरानी पुस्तक की संज्ञा दी थी। वेदों के प्रति थोरो का लगाव उनके प्रसिद्ध आत्मकथा लेखक हैनरी केनबाई की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट होता है, 'थोरो के साहित्यिक गुरु इमर्सन सत्रहवीं शताब्दी के अंगरेजी धार्मिक गद्य और पद्य लेखक, ग्रीक नाटककार होमर तथा संस्कृत के पवित्र लेखन विशेष रूप में वेद, मनु और भगवद्गीता आदि थे।'

भारतीय परम्परा में मनु को पृथ्वी का प्रथम पुरुष माना जाता है। उन्हें भारतीय जनश्रुति का आदम कहा जा सकता है। भाषाविद् अंगरेजी के 'मैन' शब्द को संस्कृत के मनु, मानव और मनुज शब्दों से लिया हुआ मानते हैं। मनुस्मृति (मनु की विधि) भारत की सर्वप्रथम विधिक-संहिता मानी जाती है। थोरो प्राचीन भारत की उस अद्भुत नैतिक संहिता के उत्साही प्रशंसक बन गये थे। एच.एस. केनबाई लिखते हैं—यह संभवतः सत्य था जब हैनरी थोरो ने सन् 1841 के ग्रीष्म काल में इमर्सन के पुस्तकालय में मनुविधियों को पढ़ना प्रारम्भ किया और बाद में हिन्दू साहित्य के अध्ययन की तरफ बढ़ते गये। जिससे लगता है कि जिसे उन्होंने अपने कालेज के दिनों में प्रारम्भ किया था। डा. जान टी. रीड, जो भारत में अमेरिकी दूतावास में सांस्कृतिक दूत (Cultural Attache) थे, लिखते हैं, 'ऐसा लगता है थोरो जब कालेज में थे उन्होंने हिन्दू साहित्य का अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया था। स्नातक होने के बाद वो इमर्सन के घर चले गये जहाँ उन्होंने 1841 में मनु की विधियों को पढ़ा।' थोरो द्वारा मनुस्मृति के अध्ययन की प्रतिक्रिया के सम्बन्ध में केनबाई लिखते हैं, अब उन्होंने यह खोज निकाला था कि एक महान् गुरु, महान् साहित्य और महान् सभ्यता ने बाहरी दिखावट के नीचे सत्य देख लिया था। उन्होंने अंतर्तम को शुद्ध कर लिया था, ताकि उसमें प्रकृति के मध्य में वे ईश्वर की उपस्थिति महसूस कर सकें। उन्होंने सामान्य जीवन के महत्त्व को समझ

लिया था, यद्यपि कभी-कभी आसमान में उनके सिर के ऊपर छींटे भी होते थे। बाहरी संभावनाओं की सीपी का भेदन कर चुके थे और उसके पीछे वास्तविकता को महसूस करते थे। उनके कवि और उपदेशक एक लंबी स्थापित परम्परा के अधिकारी के रूप में बोलते थे। उनमें से ज्ञानसम्पन्न व्यक्तियों द्वारा प्रसन्नता और सफलता की कुंजी सत्य की लालसा में माना जाता था....यह सिद्धान्त अथवा प्रगति होने की बजाय जीवन का सामान्य रास्ता था अथवा खोज थी।'

उपनिषद्

उपनिषद् प्राचीन भारत के दार्शनिक ग्रंथ हैं जिनमें वैदिक युग की समृद्धतम बुद्धिमत्ता समाहित है। शोपनहावर ने इन पुस्तकों की आध्यात्मिक बुद्धिमत्ता के बारे में लिखा है, 'उपनिषद् मेरे जीवन की दिलासा रहे हैं, वे मेरी मृत्यु की दिलासा भी होंगे, शोपनहावर की तरह थोरो भी उपनिषदों के महान् प्रशंसक थे। एच.एस. केनबाई लिखते हैं, 'थोरो के ऊपर इस अध्ययन का प्रथम प्रभाव बढ़ती हुई उत्तेजना थी।' थोरो ने स्वयं लिखा है कि हिन्दुओं की किताब का प्रत्येक वाक्य पढ़ने के बाद मैं अपने-आपको सामान्य स्तर से उन्नयन का एहसास करता हूँ....प्रत्येक पृष्ठ सत्य की ओर संकेत करता है लेकिन शांत है....उन भव्य वाक्यों ने मेरे ऊपर ऐसा प्रभाव डाला कि किसी भी व्यक्ति के बोलने से पहले मैं उठ गया। थोरो आगे लिखते हैं कि किसी भी महान् विद्वान द्वारा लिखित महान् पुस्तक हमारी कल्पना के समक्ष आसमान को भेदती हुई नजर आती है। इसका प्रभाव....जैसे कभी-2 आकाश में एक नया प्रभात अपनी किरणों को जमीन पर बिखेर रहा हो, हवा के किसी अदृश्य छिद्र पर टूटता हुआ....सभी कुछ सुनिश्चित लगता है। यहाँ पर वर्णित सामान्यतम जीवन का परिदृश्य हमें स्वतंत्रता की उत्तुंगता का एहसास कराता है.... आवश्यकताएं आसानी से और मर्यादापूर्ण तरीके से शांत होती हैं और यह अधिक शुद्ध और सात्त्विक प्रसन्नता जैसा महसूस होता है। अपने आप में परिपूर्ण। थोरो उपनिषद् के एक श्लोक के अत्यधिक शौकीन थे जो कहता है, 'सत्य सोने की चमक के आवरण में छिपा रहता है। मानव इस बाहरी चकाचौंध को देखता है और सत्य के प्रति अंधा बना रहता है। हे ईश्वर! इस सोने के आवरण को हटा ले और मुझे अपने समक्ष होने दे। हे सत्य के भी सत्य! मेरी सत्य के प्रति इच्छा बहुत उत्कट है।'

थोरो भारतीय संतों की तरह संग्रहण की प्रकृति के विरुद्ध थे और वाल्डन तालाब के किनारे एक झोंपड़ी में रहा करते थे। केनबाई ने थोरो की आवश्यकता रहित जीवन के प्रभाव की कथा उपनिषद् के कुछ श्लोकों में खोजी है जहाँ यम (मृत्यु के दूत) एक बालक नचिकेता को उपदेश दे रहे हैं। धन की इच्छा से पागल

सामान्य व्यक्ति भविष्य के बारे में क्या जान सकता है? वह चिल्लाता है यही दुनिया है क्योंकि वह सोचता है कि इसके अतिरिक्त और कोई दुनिया नहीं है। मैं उसे बार-बार मारता हूँ। बिल्कुल आध्यात्मिक स्वर में थोरो कहते हैं—ईश्वर ने ये वर्ष मुझे बिना किसी भार के दिये हैं। समाज का इसके ऊपर कोई भार नहीं है।

भारतीय सर्वेश्वरवाद

भारतीय सर्वेश्वरवाद को वेदांत दर्शन में प्रतिपादित किया गया है जो प्रत्येक वस्तु में ईश्वर तथा ईश्वर में प्रत्येक वस्तु देखता है। इसका थोरो के आध्यात्मिक मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव था। केनबाई का मानना है कि थोरो हिन्दुओं के उस सरल सर्वेश्वरवाद से बहुत आकर्षित थे, जो मानव और प्रकृति के बीच भेद को इस सीमा तक समाप्त कर देता है कि कल्पना किसी भी तरफ आसानी से निवास कर सकती है। थोरो की अपनी सहज बुद्धि का निष्कर्ष यह था कि एक आध्यात्मिक शक्ति मानव और पर्यावरण में इस प्रकार समान रूप से निःसृत होती है कि विश्व एकात्मकता का अनुभव होता है और थोरो ने पाया कि हिन्दुओं में यह धर्मतत्त्व का मूल माना जाता है। केनबाई का मानना था कि थोरो हिन्दू धार्मिक साहित्य में डूबता चला गया।

भगवद्गीता

भगवद्गीता, जिसका अर्थ होता है ईश्वर का गीत, भारत का शाश्वत आध्यात्मिक संगीत है। ईसाइयों के 'सरमन आन द माउन्ट' की तरह ही 'कुरुक्षेत्र के युद्ध क्षेत्र में उपदेश' है जिसका अवतरण ईसा मसीह के जन्म से तीन हजार वर्ष पूर्व हुआ। थोरो और इमर्सन इस स्वर्गिक गीत के महान् प्रशंसक थे। केनबाई का मानना था कि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि थोरो का निर्माण दो पुस्तकों ने किया, और वे दो पुस्तकें थी—भगवद्गीता तथा प्रकृति। केनबाई आगे लिखते हैं कि 'प्रकृति तथा भविष्य की आशा' (पुस्तक के दो भाग) हेनरी थोरो के न्यूटेस्टामेंट थे। इनके ऊपर थोरो ने अपने दर्शन का प्रतिपादन किया। इनसे और हिन्दू धर्मग्रंथों से उन्होंने अपने जीवन का निर्देशन किया। डा. रिड का यह विचार है कि 'सम्भवतः जिस तरह वह अपने नवीन प्रयोग के लिए वाल्डन पोण्ड की ओर गया, वह गीता को पढ़ता गया। थोरो के आध्यात्मिक मित्र इमर्सन जून,1845 में अत्यधिक उत्साह के साथ अपने संवाददाताओं को गीता के अध्ययन की सलाह देते आ रहे थे और अपने पत्र में उन्होंने 'कर्म और अकर्म' पर एक पैराग्राफ उद्धृत किया। थोरो का भगवद्गीता के ज्ञान से परिचय चार्ल्स विल्किन्स द्वारा भगवद्गीता के अनुवाद से हुआ जिसका प्रथम अंगरेजी संस्करण सन् 1785 में प्रकाशित हुआ था। इसका शानदार आमुख भारत के गवर्नर जनरल वारेन हैस्टिंग्स ने लिखा था।

केनबाई का विचार है कि थोरो के लिए कर्म और अकर्म की समस्या लोकोत्तर न होकर वास्तविक समस्या थी और इसके समाधान ने उनके बाद के जीवन की दिशा निर्धारित की। मुझे विश्वास है कि भगवद्गीता में थोरो को एक महान् नैतिक और धार्मिक नीतिकथा मिली थी।

वे आगे लिखते हैं कि मनु, कन्फ्यूसियस, वेद और उपनिषद्—इन सभी से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया और संभवतः समान निष्कर्ष निकाले। लेकिन भगवद्गीता उनके लिए बहुत स्पष्ट थी और इमर्सन की 'प्रकृति' की तरह यह उनकी चेतना में गहरी उतरती चली गई और इसने उन्हें नया जन्म दिया। वारेन हैस्टिंग्स के उद्धरण पर थोरो की टिप्पणी थी कि जीवन की वास्तविकताओं का आखिर क्या अर्थ होता है? तुरंत किये जाने वाले कार्य बहुत तुच्छ होते हैं। इस टिड्डी के गान को सुनने के लिए छोड़ सकता हूँ। मेरे अनुभवों में सर्वाधिक गौरवशाली तथ्य वह नहीं है जो मैं कर चुका हूं अथवा आशा करता हूँ कि करूंगा बल्कि कोई क्षणिक विचार, कल्पना अथवा स्वप्न जो मेरे मन में आया था। एक सच्चे अन्तर्ज्ञान के लिए मैं दुनिया की सारी दौलत अथवा सभी नायकों के महान् कृत्यों को न्योछावर कर सकता हूँ लेकिन मैं ईश्वर से विचार विनिमय कैसे कर सकता हूँ जो इस दुनिया में पागलपन से बचने के लिए पेन्सिल घिसने वाला व्यक्ति है।

थोरो द्वारा भगवद्गीता से लिया गया प्रधान विचार यह था कि 'बुद्धिमान व्यक्ति वही खोजता है जो उसकी आत्मा के अनुकूल होता है। वाल्डन ने एक ऐसा समाधान सुझाया जो इस महान् ग्रंथ के एकदम अनुकूल था और थोरो को इसका पूरा भान था। केनबाई कहते हैं, भारतीय आश्रम के समान वनों में निवास उसकी प्रकृति के अनुकूल था और आध्यात्मिक प्रकाश के लिए एकान्त आवश्यक था। डा. रीड का कहना है—थोरो की महानतम पुस्तक भारतीय साहित्य के उद्धरणों से भरी पड़ी थी। किसी को भी यह शक हो सकता है कि अपने उस एकान्त कमरे में थोरो के हाथों में भगवद्गीता और अन्य हिन्दू धर्मग्रंथ थे क्योंकि वे उनका बार-बार उद्धरण देते हैं। थोरो कालिदास रचित शकुंतला के भी शौकीन थे और अपनी पुस्तक वाल्डेन में उन्होंने कई हिन्दू कथानकों के उद्धरण दिये हैं। लेकिन गीता के प्रति उनका लगाव विशिष्ट था। थोरो के विचार में पूर्व के सभी विचारों से गीता अधिक प्रशंसनीय थी।

गीता को श्रद्धासुमन अर्पित करते हुए थोरो कहते हैं, 'यह निर्विवाद रूप से पवित्र एवं आदरणीय अभिलेख है जिसे हमने पाया है। पुस्तकों के महत्त्व का आकलन उसके विषयों की महानता, न कि उनकी लेखन शैली, से किया जाना ही समीचीन होता है। पश्चिम के लिए गीता पढ़ने की संस्तुति करते हुए वे कहते हैं, 'धार्मिक पुस्तकों के पाठकों को बताना चाहता हूँ कि यदि अच्छी

पुस्तक का अध्ययन करना हो तो कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास प्रणीत महाभारत के एक पर्व का अध्ययन करें जो लगभग चार हजार वर्ष पूर्व लिखा गया था और चार्ल्स विल्किन्स अथवा अन्य किसी द्वारा अनुवादित किया गया है। इसे अत्यन्त आदरपूर्वक पढ़ना चाहिये। 'Yankees (अंगरेजों)' द्वारा भी इन्हें धार्मिक समाज की कृतियाँ समझकर पढ़ना चाहिये। बुद्धिमान हिब्रू को भी अपनी धर्मनिष्ठ पुस्तकों की तरह इसका भी रसास्वादन करना चाहिये क्योंकि गीता में भी उच्चतम आदर्शों का प्रतिपादन हुआ है।'

हितोपदेश—थोरो भारतीय नीति कथाओं में 'हितोपदेश' के बड़े प्रशंसक और पसंद करने वाले थे। वे कहते हैं, 'हितोपदेश कथायें ज्ञान की दृष्टि से समाज के आगे और पीछे भी दृष्टि डालती हैं। ये जीवन के अन्तिम दिनों की आत्मनिर्भरता एवं उत्तम स्वास्थ्य पर अधिक बल देती हैं। मानसिक संतुलन की प्रतिज्ञा जिस पुस्तक में न हो उसका प्रभाव उसी पर परिलक्षित होता है। इस पुस्तक की कहानियों एवं नीति कथाओं की प्रत्येक पंक्ति मरुस्थल में ऊँट के पदचिह्नों को आबद्ध करती प्रतीत होती है, जो 'मोरजक' और 'डारफर' के अन्तर को भी स्पष्ट करती हैं। आधुनिक पुस्तकों पर ये टीका-टिप्पणी भी करती हैं। पाठक एक सोपान से दूसरे सोपान पर अग्रसर होता जाता है जब वह एक वाक्य पढ़कर उत्तरोत्तर आगे पढ़ता है। कहानी में अग्रेतर बढ़ते रहने का प्रवाह सा प्रतीत होता है।

'सादा जीवन उच्च विचार'—भारतीय प्राचीन चिन्तकों एवं महात्मा गाँधी की तरह थोरो भी सादगीपूर्ण जीवन के लिए उत्तम एवं उच्च विचारों को ही महत्त्वपूर्ण मानते हैं। थोरो आडम्बरपूर्ण सभ्यता के घोर विरोधी थे जो मानव के वास्तविक स्वभाव का हनन कर देती है वे कहते हैं, 'हमें उस मानवीय प्रकृति को तुच्छता नहीं प्रदान करनी चाहिये जो मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है क्योंकि कोई भी विचार उसकी महत्ता का अवमूल्यन नहीं कर सकता। वह प्रभु की सत्ता की प्रतिच्छाया है, उसकी अनन्तता का द्योतक है। उसके विस्तार और व्यापकता को सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। थोरो कहते थे कि मनुष्य को अपने परिश्रम से अर्जित वस्तुओं से अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करके संतुष्ट रहना चाहिये जिससे वह आत्मनिर्भर एवं स्वतन्त्र रह सके। वे सोचते थे कि परिश्रम करने वाले व्यक्ति को एक मशीन की भाँति अतिरिक्त समय नहीं मिलता। भौतिक आवश्यकताओं की दौड़ ने मानव को शक्तिशाली लोगों का दास बना दिया है। वे कहते हैं, 'आधुनिक औद्योगिक सभ्यता के विषय में सोचें तो पायेंगे कि हम रेल की पटरियों पर नहीं दौड़ते अपितु पटरियाँ ही हमारे ऊपर चढ़ जाती हैं। आगे वे कहते हैं कि पटरी का प्रत्येक स्लीपर एक आदमी हो गया है। रेल तो उन पर ही बिछायी जाती है और उन्हें रेत से ढक दिया जाता है, जिन पर गाड़ी आराम से दौड़ती है।'

'थोरो' का मत है कि सादगी ब्रह्माण्ड के उन मधुर गीतों के रहस्य को उद्घाटित करती है जो मनुष्य को एक कवि बना देती है। वे आगे पूछते हैं कि 'मनुष्य ने अपने रहने का आवास निर्मित कर लिया, अपने और अपने परिवार के लिए खाद्य पदार्थों का सादगी और ईमानदारी से प्रबन्ध कर लिया तो काव्य प्रतिभा का प्रस्फुटन स्वतः हो गया। आप देखते हैं कि पक्षियों के व्यस्त रहने पर भी उनका गायन चलता रहता है।

थोरो ने दीनता को इतना महिमामंडित किया है कि वे कबीर और गाँधी के प्रारूप प्रतीत होने लगते हैं। वे कहते हैं बाह्य दीनता के विपरीत उसी मात्रा में आन्तरिक वैभव का उदय होता है। भारतीय ऋषियों की भांति वे कंद-मूल-फल पर ही अपना जीवन निर्वाह करते थे—मूँगफली, पौधों की जड़ों का वे बड़े चाव से आनन्दपूर्वक सेवन करते थे।

थोरो एक दार्शनिक और एक आदिवासी की सादगी का अन्तर बताते हुए कहते हैं, 'एक दार्शनिक की सादगी एक बाह्याडम्बर है लेकिन अन्तर्द्वन्द्व भी है। आदिवासी की सादगी बाह्य और आन्तरिक दोनों ही समान हैं।'

मौन एवं एकान्त—थोरो आत्मदर्शन एवं आत्म-साक्षात्कार के लिए मौन को अत्यन्त महत्त्व देते हैं। भारतीय शास्त्रों का यह उद्घोष है कि जहाँ वाणी प्रभावकारी नहीं होती वहाँ मौन अत्यन्त प्रभावोत्पादक हो जाता है। उसी सांस में थोरो आगे कहते हैं कि वाणी बधिर व्यक्तियों की सुविधा हेतु होती है। अपनी आत्मा के आन्तरिक गायन को सुनने हेतु मनुष्य के लिए एकान्त सेवन ही उपाय है जैसा कि भारत के ऋषि-मुनियों द्वारा किया जाता था। थोरो कहते हैं, 'जब मेरे पास कोई नहीं आता है उस समय मुझे अधिक संग का अनुभव होता है।' थोरो के लिए एकान्त आत्मविश्वास उत्पन्न करता है एवं उसके अस्तित्व का बोध कराता है तथा प्रकृति की प्रचुरता एवं ज्ञानमय अज्ञानता को उद्घाटित करता है।

निरामिषत्व (शाकाहारीपन)—थोरो कहते हैं, 'मेरी अपनी जो भी आदत या व्यवहार हो मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि मानव मात्र की यह नियति है और इसी के क्रमिक विकास का परिणाम है कि उसने पशुओं का भक्षण छोड़ दिया, जिस प्रकार आदिमानव ने एक दूसरे मानव का भक्षण भी, जब वह सभ्य समाज की सभ्यता के सम्पर्क में आया, छोड़ दिया।' थोरो के इस विश्वास में भगवान बुद्ध या महावीर या कबीर अथवा गाँधी का स्पष्ट उद्घोष प्रतिध्वनित हो रहा है।

प्रकृति का ईश्वरत्व—थोरो सर्वेश्वरवादी थे, जो प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में ईश्वर का स्वरूप देखते थे। वे पूछते हैं, 'क्या हम ईश्वर का साक्षात्कार नहीं

कर सकते? या हम प्रतीक कथाओं में वर्णित अमूर्त की भावना से ही आनन्दित होते रहेंगे? वास्तव में क्या हम उस प्रकृति को, जो उस ईश्वर का ही प्रतीक मात्र है, मानने से असहमत रहेंगे? भारतीय चिन्तकों का पुरुष को प्रकृति में सन्निहित मानना भी एक अत्यन्त शुभ साधना है।'

संगीत और काव्य—थोरो की दृष्टि में काव्य मानव का एक स्वतःस्फूर्त सत्य का दिग्दर्शन है और संगीत आन्तरिक अनुभूति की साधना है। थोरो कहते हैं, 'काव्य पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति है। दर्शनशास्त्र उसके एक अंशमात्र को ही उद्घाटित करता है।' आगे वे कहते हैं, 'मैं जो भी वस्तु देखता हूँ जो पूर्ण है, वह काव्य है'। वे ध्वनियाँ जिन्हें मैं अपनी इन्द्रियों के द्वारा अप्रत्याशित अथवा ज्ञात रूप से सुनता हूँ वे अर्थपूर्ण संगीत हैं। वे ही सुने भी जाते हैं।' एक अन्य स्थान पर थोरो कहते हैं, 'मनुष्य का जीवन एक वैभवशाली यात्रा की तरह संगीत को सुनने हेतु होना चाहिये।' यह विचार भारतीय कवि की संकल्पना से अत्यन्त मिलता-जुलता है—उस कवि की तरह, जो शब्दों को केवल छंद-बद्ध ही नहीं करता वरन्, उस मनीषी की तरह जो उस परम सत्य ईश्वर का द्रष्टा होता है।

आधुनिक सभ्यता—थोरो पाश्चात्य सभ्यता के कटु आलोचक थे। गाँधी की तरह वे भी मशीनी कारोबार के घोर विरोधी थे, जिसने मानव को मशीन की भाँति गर्दनतोड़ प्रतिस्पर्धा हेतु यंत्रवत् बना दिया है, जिसने उसे वस्तुओं की तरह व्यापार में आदान-प्रदान करने की ही वस्तु बना दिया है। थोरो व्यंग्य करते हैं : आज का सभ्य मानव एक सभ्य आदिवासी मात्र हो गया है। अपने एक अत्यन्त तीखे भाषण में थोरो पश्चिम के व्यापारीकरण के घोर विरोधी दीखते हैं। वे कहते हैं—यह व्यापारीकरण काव्य के प्रति अपराध ही है।

दर्शनशास्त्र का उद्देश्य-आत्मबोध—भारतीय चिन्तन की भाँति ही थोरो दर्शनशास्त्र को एक अटकलबाजी या उसका विश्लेषण मात्र ही नहीं मानते बल्कि उसे जीवनशैली को संवारने की विधा मानते हैं। भारतीय मनीषी की भाँति दर्शनशास्त्र को 'आत्मदर्शन' के उच्चतम आदर्श की प्राप्ति में थोरो भी भौतिक सुख को खोजने वालों को सचेत करते हैं। अपने अनुभव एवं चरित्र के द्वारा भौतिकवादी दौड़ के खतरों एवं नवीन आविष्कारों से आगाह करते हुए थोरो वर्तमान में लौट आने की सलाह देते हैं। थोरो अपने रोजनामचा में बड़े ही रोचक ढंग से कहते हैं, 'मैं स्वयं से बात करता हूं।' अपने आप से बात करने की यह विधा वास्तव में भारतीय ही है। गीता कहती है अपना उद्धार अपने आप करो। बुद्ध का भी यही उद्घोष है 'अत्ताहि अत्तनो नाथो' अर्थात् आत्मा ही आत्मा का स्वामी है अतः स्वयं प्रकाशपुंज बनो, ऐसा कहा गया है।

श्रद्धा—थोरो कहते हैं, 'हम जो देखते हैं, वही है। श्रद्धा ही ज्ञान दृष्टि है'। यह गीता के वचनानुसार भी 'यह पुरुष श्रद्धामय ही है जैसा वह श्रद्धा से जानता है, वही है।' यह मानव श्रद्धा का ही मूर्तरूप है। जैसी उसकी श्रद्धा है वैसा ही उसका स्वरूप होता है।

ब्राह्ममुहूर्त में जागना—भारतीय परम्परानुसार ब्राह्म मुहूर्त में जागने को थोरो भी अत्यन्त महत्त्व (बल) देते हैं। 'वाल्डन' नदी के किनारे भारतीय ऋषियों की तरह नन्ही-सी कुटिया में निवास करते हुए थोरो उषा के नक्षत्रों से बातें करते हैं, पक्षियों और मीनों से, प्रकृति के सभी तत्त्वों से वार्तालाप करते हैं। इस प्रकार उनसे सम्पृक्त हो जाते हैं जैसे महान् रहस्यवादी व्यावहारिक रूप से रम जाता है। आत्मिक जागृति के लिए ब्राह्ममुहूर्त में उठना आलस्य भरी निद्रा की अपेक्षा अत्यधिक उपयोगी होता है। थोरो कहते हैं, 'यह प्रक्रिया राष्ट्र को समुन्नत करती है। हम दिन-प्रतिदिन प्रातः जागरण से उत्तरोत्तर स्वस्थ, धनवान एवं बुद्धिमान होते जायेंगे।' इसको एक आध्यात्मिक बोध देते हुए कहते हैं, 'जब ही जागें तभी सवेरा'। हमारे भीतर ही उषाकाल है। निद्रा से जाग जाना ही चारित्रिक सुधार का सोपान है। उपनिषद् के शक्तिशाली उद्‌घोष 'उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' (उठो, जागो एवं उत्तम गुणों का आधान करो)। भारत का प्रत्येक सुधारक चारित्रिक जागृति का पोषक रहा। पाँच शताब्दी पूर्व गुरु नानक गाया करते थे, 'जागो रे जिण जागणा, अब जागण की बार, फेर के जागो नानका, जब सोवण पाँव पसार।' अर्थात् जागृति-जागरण के इच्छुक व्यक्तियों को आज और अभी जागना है क्योंकि अभी वह समय है, जब टाँग फैलाकर पड़े रहोगे तो फिर कैसा जागना। महात्मा का प्रिय भजन जिसे प्रातःकाल गाया करते थे, 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहाँ जो सोवत है, जो जागत है सौ पावत है जो सोवत है वह खोवत है।'

वसन्त ऋतु आध्यात्मिक जागृति का प्रतीक—थोरो शीतऋतु को आध्यात्मिक समाधि का प्रतीक मानते हैं और वसन्त ऋतु को आध्यात्मिक जागृति का प्रतीक। यह प्रतीकत्व भी भारतीय चिन्तन ही है। थोरो के शब्दों में, 'यदि वे वसन्त के निर्झरों के प्रभाव की अनुभूति प्राप्त करते हैं तो उन्हें लोकोत्तर आनन्द की प्राप्ति होगी। 'मधुवाता ऋतायते, मधु क्षरन्ति सिन्धवः' अर्थात् वायु मधु की वर्षा करते हैं और क्षार समुद्र मधु का प्रवाह करता है।' चरित्रवान संस्कार के व्यक्ति के लिए वसन्त के दृश्य प्रकृति के सामंजस्य एवं सहयोग के भाव प्रकट करते हैं। थोरो शुद्धता पर अत्यधिक बल देते हैं जो अमरीका की अपेक्षा भारतीय जीवनमूल्यों को ही प्रतिपादित करते हैं।

सांसारिकता से विरक्ति और आत्मा में आसक्ति—थोरो के अनुसार मनुष्य जितना अधिक सांसारिकता से विरक्त होगा उतना ही आत्मा की

वास्तविकता के प्रति जागृत होगा। एक व्यावहारिक रहस्यवादी की भाँति वे मानते हैं—जब तक हम तिरोहित नहीं हो जाते हैं अर्थात् जब तक हम संसार से विदा नहीं हो जाते और अनन्त सत्य को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक गीता के स्थितप्रज्ञ दर्शन की पुनरावृत्ति ही पाते हैं। 'आत्मन्ये-वात्मना तुष्टः, स्थित-प्रज्ञस्-तदोच्यते'।। (गीता 2/55) जब मनुष्य अपनी कामनाओं का और संसार का परित्याग कर देता है तो उसका मन स्वयं से संतुष्ट होने लगता है। वही स्थितप्रज्ञ कहलाता है।'

थोरो तथा गाँधी

अपने निबंध 'सिविल डिसओबिडिएन्स' के माध्यम से थोरो ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम के महानतम व्यक्तित्व महात्मा गाँधी को बहुत प्रभावित किया था। गाँधी जी ने इस निबन्ध को तब पढ़ा था जब वे दक्षिण अफ्रीका की जेल में थे। महात्मा गाँधी उस समय 'भारतीय विचार' नाम से प्रकाशित एक पत्र का सम्पादन किया करते थे, जिसके लिए उन्होंने इस निबंध के कुछ हिस्सों का अनुवाद किया था। इस निबन्ध ने महात्मा गाँधी को असहयोग आंदोलन के रूप में अन्याय से लड़ने के लिए एक ऐसा अहिंसक हथियार उपलब्ध कराया था, जिसका उपयोग उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन से लड़ने के लिए प्रभावी रूप से किया। इस तरह थोरो ने न केवल भारत की बौद्धिक परम्परा की प्रशंसा की बल्कि अप्रत्यक्ष रूप से भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए युद्ध को भी प्रभावित किया।

संक्षेप में हम केनबाई के उस कथन से सहमत हो सकते हैं कि थोरो अपने पूर्व के गहन आध्यात्मिक ओज को हमेशा साथ रखते थे, जिससे उनके जीवन के प्रति उत्साह में वृद्धि हुई। यही वह आध्यात्मिक ओज है, जिससे देशों के बीच मित्रता के सम्बन्धों में प्रगाढ़ता आती है और इसी सांस्कृतिक समझ के कारण भारत अमरीका को अपना विश्वसनीय मित्र और प्रजातंत्र का रक्षक मानता है।

गाँधी जी कहते हैं, 'थोरो के मुख से भारतीय ऋषि की आत्मा ही बोल रही है।' क्या पूरब के युवा पश्चिम के इस महान् संत के प्राच्य संस्कृति की अभिव्यक्ति को महत्त्व देंगे?

हे प्रभु! अगर तुम हमें दोबारा इस धरती पर जन्म दो मनुष्य का तो भारत में ही देना। क्योंकि वहाँ गरीबी होगी, गुलामी भी होगी लेकिन वह जिसे में जीवन में आत्मसात् करके कृत-कृत्य होना चाहूँगा, वह आत्मिक ज्ञान, वहाँ कि हिन्दू जाति में ही मुझे मिलेगा।

—**हरबर्ट स्पेन्सर**

नेपाल

नेपाल हमारा पड़ोसी देश है, वहां पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति है। वहां का रहन-सहन, वेश-भूषा, धर्म आदि सब हिन्दू रंग में रंगे हुए हैं।

1. संसार का एकमात्र हिन्दू राष्ट्र।
2. राजवंश परम्परा में वाड से।
3. पशुपतिनाथ का महान् शिव तीर्थ।
4. अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति।
5. पाटन में श्रीकृष्ण का स्वर्ण मन्दिर।
6. भात गांव में भगवती के स्वर्ण मन्दिर।
7. नीलकंठ में शेषशायी की विशालतम मूर्ति।
8. भगवान बुद्ध की जन्म-भूमि लुंबिनी।
9. संसार का सर्वोच्च पर्वत सरग माथा।
10. दत्तात्रेय एवं गोरखनाथ की तपस्या भूमि।
11. भानुभक्त की रामायण, तुलसी रामायण।
12. जाति गोरखा, व्रत गोरक्षा।
13. हनुमान ढोका का मंडप।
14. त्रिवेणी।
15. वाल्मीकि आश्रम, सीता वनवास, लवकुश की जन्म-भूमि।
16. जनकपुरधाम सीता पितृगृह।
17. पाण्डवों के अज्ञातवास का स्थान विराटनगर।

चीन

36\. ई.पू. चीन में भारतीय ग्रंथ प्रवेश।

251\. ई. वाल्मीकि रामायण का चीनी अनुवाद।

400\. ई. चीनी यात्री फाहियान द्वारा भारत यात्रा एवं ग्रंथ संग्रह—दशरथ जातक कथा, अनामक जातक।

472\. ई. दशरथ निदान का चीनी अनुवाद
6वीं-7वीं शती में इत्सिंग, ह्यूनत्सांग की भारत यात्रा।

936\. ई. तक चीनी लोग भारत को सुखावती (वैकुण्ठ) मानकर पुण्य यात्रा करते थे।

16 वीं शती चीनी भाषा में वानर (हनुमान) उपन्यास।

1936 ई. तक चीन में भारतीय ग्रंथों का अनुवाद पुण्यकृत्य।

1936 ई. चीन में कम्यूनिस्ट पार्टी। साम्यवाद के आगमन के बाद से चीन का रूप ही बदल गया है और भारतीय संस्कृति पर निरन्तर प्रहार जारी है।

जापान पर भारत की छाप

1. जापान के धर्म, सभ्यता और रीति-रिवाज के प्रत्येक पृष्ठ पर भारत की छाप है। जापान पूरा हिन्दू देश है।
2. जापान के लोग भारत की तरह मानते हैं कि आत्मा अमर है और जैसे व्यक्ति चोला बदलता है, उसी प्रकार आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है। चीन और जापान देश में आत्मा के चोला बदलने की अनेक घटनाएं प्रचलित है।
3. देवालय—भगवान् बुद्ध की पूजा प्रतिष्ठा सर्वाधिक। जापान में ऐसे देवालय हैं जिसे बुत्सुदप्न कहते हैं। बुद्ध के पुजारी इसमें बुद्ध मूर्ति रखते हैं। शिन्नोयत धर्म के मानने वाले अपने 5-6, पूर्वजों के नाम लकड़ी की तख्ती पर लिखकर उस मंदिर में रखते हैं। कई ईसाई शिन्तो लोग भी बुद्ध की मूर्ति रखते हैं।
4. चंगेज खा के घेरा डालने पर मन्दिरों में शिव की सामूहिक स्तुति।
5. ब्रह्मा, सरस्वती, अग्नि, गणेश, कार्तिकेय, कृष्ण, तारा, कालभैरव की मूर्तियां, रथयात्रा।
6. आचार्य बोधिसेन भारद्वाज द्वारा जापानी जनलिपि का आविष्कार।
7. आचार्य नागार्जुन, नागसेन, नागबोद्धि आदि की प्रतिष्ठा।
8. श्राद्ध—सब जापानी पितृ-पूजा में पक्का विश्वास रखते हैं और श्राद्ध का त्योहार बड़ी धूमधाम से श्रावण के (जुलाई) महीने में मनाते हैं। यह प्रथा बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ-साथ सनातन धर्म का भी प्रचार हुआ। 3 दिनों

में परिवारों के अन्दर सच्ची आत्मिक भक्ति, पितृ प्रेम और आनन्द के दृश्य देखने में आते हैं। घरों को सजाया जाता है, रोशनी की जाती है, घर के लोग समाधि पर जाते हैं, फूल चढाते हैं। मृत सम्बन्धियों की आत्मायें भोज के लिये बुलाई जाती है। नदियों पर आतिशबाजी की जाती है।

9. कार्तिक स्नान—कड़ी सर्दी में भी नदियों में एवं झरनों के नीचे स्नान करते तथा मंदिरों की यात्रा करते हैं। कई लोग 10 महीने तक सारे देश के प्रसिद्ध मंदिरों की यात्रा करते हैं। पड़ोसी उनको मिठाइयाँ एवं पैसा भेंट करते हैं। यात्री लौटने पर पड़ोसियों के लिये प्रसाद एवं स्मृति योग्य वस्तुएं लाते हैं।
10. कुछ सौ वर्ष पूर्व तक जापान के लोग भारत की ओर कभी पीठ करके नहीं चलते थे।
11. ऐसे मत भी है जो ॐ की पूजा करते हैं। तांबे की एक बहुत बड़ी प्लेट पर ओऽम् शब्द लिखा होता है।

मुसलमानों पर नकेल कसे हुए, ईसाई पादरियों को निष्कासित करने वाले जापान ने भारतीय संस्कृति को हृदय से लगाये रखा है।

रोम

1. पलमिरा और सिकंदरिया के रास्ते भारत एवं रोम के बीच भारी व्यापार तीसरी शती तक चलता है।
2. ई. की प्रथम तीन शतियों में भारतीय राजाओं ने रोम सम्राटों के पास कम से कम 9 बार दूत मंडल भेजे।
3. भारत से निर्यात मसाला, सुगंध, औषध, रंग, मोती, हीरा, नीलम और वैदूर्य आदि मणियाँ, चमड़ा, सूती कपड़ा, रेशमी धागे, मलमल, नील, हाथी-दांत, चीनी मिट्टी के बर्तन, कच्छप पृष्ठ।
4. बाहर से आयात—कपड़ा, सुगंध, औषध, शीशा के बर्तन, सोना, चाँदी, ताँबा, टीन, सीसा, रांगा, रंग, मणि, मूंगा।
5. व्यापार का मूल्य प्लिनी के उस कथन से आंका जा सकता है 'भारत प्रति वर्ष रोम साम्राज्य से 50,00,000 (पचास लाख) सेस्टसेस दूह लेता।'
6. भारत में रोमन-सम्राटों के अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं।

विज्ञान का जनक पश्चिम नहीं, भारत है

नेतरहाट विद्यालय में डॉ.ओबराय का व्याख्यान

तीसरी शती के ईसा पूर्व के यूनानी वैज्ञानिक आर्किमिडिज़ से लेकर 17 वीं शती के ब्रिटिश वैज्ञानिक न्यूटन तक पश्चिम में लगभग 2000 वर्षों तक जब विज्ञान मर चुका था तब भी भारत में आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, जीवक वैद्य, वैद्यराज चरक, सुश्रुत (शल्य चिकित्सक), शालिहोत्र, बोधायन, लगध, मेधातिथि, ब्रह्मगुप्त, नागार्जुन, उमास्वाति जैसे महान् वैज्ञानिक विश्व को महान् वैज्ञानिक ज्ञानालोक बांट रहे थे। इन शब्दों में विगत दिवस नेतरहाट विद्यालय में एक विशेष व्याख्यान में भारत की वैज्ञानिक प्रतिभा पर बोलते हुए संस्कृति विहार, रांची के निदेशक डॉ. हरवंश लाल ओबराय ने भारतीय वैज्ञानिक परम्परा का महत्त्व दर्शाया।

प्रो. ओबराय ने कहा, 'जहाँ पश्चिम में 17 वीं शती में धरती को गोल कहने पर गैलिलियो को कारागार में तड़पा-तड़पा कर मारा गया, कोपरनिकस को डराया, धमकाया गया, ब्रूनो को रोम के चौराहे पर जीवित जलाया गया, जीनो नामक दार्शनिक, वैज्ञानिक को घर समेत अग्नि में फूंक डाला गया, हियोफिया नामक रोमन महिला को ज्यामिति पढ़ाने के अपराध में नंगा कर उसे रोम के बाजारों में कोड़े मार-मार कर मार डाला गया, वहाँ भारत की वैदिक-परम्परा में ही भूगोल (भूमि गोल), खगोल, ब्रह्माण्ड, अखण्ड मण्डलाकारम् शब्द ही भारत को विज्ञान का जनक घोषित कर रहे हैं।

विद्वान् वक्ता ने अपने सचित्र भाषण में बड़े रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक चित्र एवं मानचित्र भी दिखाए।

महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. मिथिलेश कान्ति ने धन्यवाद ज्ञापन में कहा कि प्रायः लोग यही धारणा बनाए रहते हैं कि भारत तो सुन्दर काल्पनिक साहित्य एवं उदात्त चिन्तनदर्शन की ही जन्मभूमि है। डॉ. ओबराय के व्याख्यान ने सिद्ध कर दिया है कि भारत विज्ञान का भी जनक रहा है। भविष्य में हम विद्वान् वक्ता के सान्निध्य में भिन्न विज्ञानों में भारत की उपलब्धियों पर एक व्याख्यानमाला का आयोजन करेंगे।

पश्चिम की कालगणना

1. पहले यूनान में ओलिम्पियद् संवत् चलता था, जिसने 360 दिन का वर्ष था।

2. रोमन सम्राट् जूलियस सीजर ने 360 दिन के बदले 365¼ दिन के वर्ष को प्रचलित किया।

3. छठी शती में डायोनिसियस ने इस सन् में फिर संशोधन किया, किन्तु फिर भी प्रतिवर्ष 27 पल, 55 विपल का अन्तर पड़ता ही रहा।

4. सन् 1739 में यह अन्तर बढ़ते-बढ़ते 11 दिन का हो गया, तब पोप ग्रेगरी ने आज्ञा निकाली कि इस वर्ष 2 सितम्बर के पश्चात् 3 सितम्बर को 14 सितम्बर कहा जाए और जो ईस्वी सन् 4 की संख्या पर विभाजित हो सके, उसका फरवरी 29 दिन का हो, वर्ष का प्रारंभ 25 मार्च के स्थान पर 1 जनवरी से माना जाए।

5. इस आज्ञा को इटली, डेनमार्क, हालैण्ड ने उसी वर्ष स्वीकार कर लिया।

6. जर्मनी और स्विटजरलैण्ड ने सन् 1758 में, इंग्लैंड ने सन् 1808 में, प्रशिया ने 1835 में, आयर्लैंड ने 1838 में, रूस ने 1859 में स्वीकार किया।

7. ईस्वी सन् में अभी भी सूर्य की रात्रि के अनुसार प्रतिवर्ष एक पल का अन्तर पड़ जाता है।

जो 3600 वर्षों में 1 दिन का अन्तर बन जाएगा। 36000 वर्षों में 10 दिन का अन्तर पड़ जाएगा और यदि यही क्रम जारी रहा तो जून का महिना वर्तमान अक्टूबर के शीतल समय में पड़ेगा।

भारतीय सभ्यता इतिहास की प्राचीनतम सभ्यता है, उसकी संस्कृति मानव की समृद्धतम संस्कृति।

—प्रो. ओबराय

आधुनिक कालगणना में भारत की देन

काल की गति अगम्य है। जहाँ सारा विश्व काल की क्रीड़ा मात्र है, वहाँ वह अन्त में काल के गाल में समा भी जाता है। अतः काल विश्वलीला का कला-स्रष्टा भी है तथा कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों को पचा जाने वाला विकराल कालभैरव भी। भारतीय मनीषियों ने काल तथा महाकाल में अन्तर किया है। जो काल सापेक्ष है, सान्त है, बुद्धिगम्य है, उसी काल को गणनयोग्य माना गया है। जो अनादि, अनन्त, निरन्तर प्रवहमान, सर्वदा निरपेक्ष कालधारा है, उसे महाकाल, कालातीत, अकाल, कालेश्वर इत्यादि नामों से पुकारा गया है। वह कालातीत महाकाल ही सृष्टि की सान्त कालधारा का नियामक है।

गणना काल के सान्त घेरे के भीतर ही हो सकती है। अनन्त महाकाल गणना से नितान्त परे है। गणना के विज्ञान को गणित कहते हैं। विश्व सभ्यता के इतिहास में सारा संसार गणित, ज्योतिष, दर्शन, आयुर्वेद इत्यादि के क्षेत्र में सदा भारत का ऋणी रहेगा। भारतीय विचारकों ने देश-काल, वस्तु एवं पात्र की विधिवत् गणना के लिए भारतीय अंकों का विकास किया; एक से नौ तक अंक; शून्य की कल्पना; इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार इत्यादि का पद्म, महापद्म एवं शंख इत्यादि तक का स्थान; मूल्य निर्धारण, दशमलव प्रणाली का विकास, भिन्न की लेखन प्रणाली, अनुपात नियमों का विकास, यज्ञवेदी के आकार-प्रकारों से ज्यामिति का विकास, भिन्न की गणना के लिए बीजगणित का विकास इत्यादि करके भारत को गणना अथवा गणित के क्षेत्र में विश्वगुरु के आसन पर आसीन किया। रोमवासियों की गिनती केवल एक हजार तक जाती थी, जिसे मिल्ली (Mille) कहा जाता था। इटैलियन शब्द 'मिलियन' का अर्थ केवल एक हजार ही था, किन्तु आज अंग्रेजी भाषा में मिलियन का अर्थ दस लाख हो गया है जो एक हजार का भी हजार गुना है। यूनानियों की सबसे बड़ी संख्या 'मीरीयेड' (Myriad) या दस हजार तक थी। भारत में 'ललितविस्तर' नामक ग्रन्थ में अंक दस की 53 वीं शक्ति (10^{53}) का वर्णन है। 'शीर्ष प्रहेलिका' नामक ग्रन्थ में 194 स्थान मूल्य वाले अंकों की संख्या का वर्णन है।

बारह राशियाँ

भारतीय कालगणकों ने आकाश मण्डल के नक्षत्र समूहों को बारह समान अंशों में विभाजित किया। यदि हम 12 अरों वाले छाते को आकाश में खोलकर खड़े हों तथा छाते की निकली हुई धुरी को ध्रुवतारे की ओर लक्ष्य करें तो छाते के बारह अरों द्वारा सारा आकाशमण्डल 30-30 अंश के कोण वाले 12 समान वृत्तखण्डों में विभक्त हो जाएगा। एक-एक वृत्तखण्ड के भीतर पड़ने वाले नक्षत्रों की राशि को परिचित वस्तुओं या जीवों के आकार की समानता के आधार पर 12 राशियों को 12 नाम दिये गये हैं यथा—1. मेष (ग्रीक भाषा में Aries) 2. वृष (Taurus) 3. मिथुन (Gemini) 4. कर्क (Cancer) 5. सिंह (Leo) 6. कन्या (Virgo) 7. तुला (Libra) 8. वृश्चिक (Scorpio) 9. धनु (Sagittarius) 10. मकर (Capricorn) 11. कुंभ (Aquarius) और 12. मीन (Pisces)।

ऋग्वेद में सूर्य के 12 अरों वाले वार्षिक गति चक्र का वर्णन है। इसकी व्याख्या द्वादश राशि-चक्र के रूप में ही की गयी है। 12 राशियों के कालातीत को चक्र का क्रान्ति वृत्त कहा जाता है। धरती की अपेक्षा से जब सूर्य क्रान्ति-वृत्त में एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करता सा दिखाई देता है तो उसे मास संक्रांति कहा जाता है। प्रतिवर्ष 13 अथवा 14 जनवरी को जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है तो उसे मकर संक्रांति कहा जाता है। मकर का आकार एक मछली जैसा होता है, जिसे यूनानी भाषा में Capricorn कहा गया है। इसी प्रकार मकर रेखा को Tropic of Capricorn तथा कर्क रेखा को Tropic of Cancer कहा गया है। 12 आदित्यों का अर्थ है 12 राशियों में बारी-बारी से प्रवेश करने वाले सूर्य के 12 रूप।

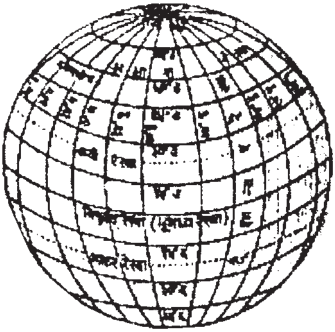

वर्ष की 12 राशियों के विभाजन के आधार पर ही वर्ष को 12 मास में विभाजित किया गया है जिसे आज सारे सभ्य संसार ने स्वीकार कर लिया है। चेल्डिया, बेबीलोनिया तथा यूनान में भारतीयों द्वारा कल्पित द्वादश राशि-चक्र को वैसा ही स्वीकार कर लिया तथा राशियों के लिए समानार्थक नाम भी दिये। वर्ष के

12 वें भाग को संस्कृत में मास कहा गया है जिसे लैटिन में Mensum कहा गया है। आज अंग्रेजी में Mensal तथा Mensual का अर्थ भी मासिक ही है। इस प्रकार 12 मास तथा मास के लिए नाम भी भारत की देन है।

भारत में वर्ष

भारत में वर्ष दो प्रकार का माना गया है—1. धरती द्वारा सूर्य की परिक्रमा के आधार पर सौर वर्ष तथा 2. चन्द्रमा द्वारा धरती की 12 परिक्रमा पूर्ण करने के आधार पर चान्द्र वर्ष। रोम में पहले चान्द्र वर्ष चलता था। अरब में अभी भी चान्द्र वर्ष ही चलता है। यूनान का ओलम्पियाद संवत् (Olympiad Era) भी 360 दिन का चान्द्र वर्ष ही था। वर्तमान पाश्चात्य देशों में सौर वर्ष का प्रचलन है। संस्कृत के 'सौर' शब्द से ही लैटिन के 'Solar' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। संस्कृत में सूर्य का एक अन्य नाम है मित्र। सारे यूरोप में ईसाइयत के प्रवेश से पूर्व सूर्य-पूजा (मित्र पूजा) प्रचलित थी। इस मित्र पूजा के धर्म को Mithraism कहा जाता था। स्वयं रोम में सूर्य देवता का महाविशाल मन्दिर था जिसे आदित्यालय कहा जाता था। जिस प्रकार आदित्यवार का नाम बिगड़कर ऐतवार और इतवार हो गया है, उसी प्रकार आदित्यालय का नाम 'ऐतालय' और 'इतालय' रूढ़ हो गया। उस विश्व प्रसिद्ध मन्दिर, आदित्यालय (इतालय) से पूरे देश का नाम 'इतालिया' प्रसिद्ध हो गया।

भारत में वर्ष को 'संवत्सर' नाम दिया गया है। इसका अर्थ है कि वर्ष का आरम्भ केवल उसी दिन से होना चाहिए जिस दिन वत्सर (वार) सम हो अर्थात् सारे भूमण्डल में दिन और रात बराबर हो; गर्मी-सर्दी बराबर हो; ऋतु में भी सुखद साम्य हो। यह स्थिति केवल वसन्त सम्पात (21 मार्च) को ही संभव है। तैत्तिरीयोपनिषद में कहा गया है—मुखं ऋतुनामिह कुसमाकरः' अर्थात् कुसुमाकर (वसन्त ऋतु) ही सब ऋतुओं की मुखिया है। मुखिया के रूप में वसन्त वर्ष के कालचक्र में सबसे प्रथम होता है। भारत के विक्रम संवत् एवं शक संवत्—दोनों अब भी वसन्त सम्पात से प्रारम्भ होते हैं। एक समय था जब भारत द्वारा प्रचलित वसन्त सम्पात से नववर्षारम्भ की प्रथा सारे संसार में प्रचलित थी। ईसा के जन्म से 332 वर्ष पूर्व जनमे रोम के मित्र पूजक (सूर्य पूजक) राजा जूलियन ने रोम में जो जूलियन कैलंडर प्रारम्भ किया वह मार्च से प्रारम्भ होकर फरवरी में समाप्त होता था। कैलंडर शब्द रोमन भाषा के केलेन्द (Calend, Kalend) शब्द से बना है, जिसका अर्थ है धार्मिक एवं नागरिक पर्व-त्योहारों के लिए काल का विभाजन।

नामों में अलौकिक साम्य

भारत में भी संवत्सर का प्रयोजन यागादि धार्मिक कृत्यों के लिए होता था। रोमन का केलेन्द शब्द सम्भवतः संस्कृत के 'कालांश' शब्द से कालान्तर में व्युत्पन्न

हुआ है। दोनों में अर्थ साम्य एवं उद्देश्य साम्य अलौकिक है। विक्रमादित्य के संवत् प्रवर्तन से आठ वर्ष पश्चात् (45 ई. पू.) रोम के सुप्रसिद्ध सम्राट जूलियस सीजर ने रोम के संवत् में यह सुधार किया कि वर्ष 365 दिन 6 घंटे का माना जाए, जिससे प्रति चौथे वर्ष अन्तिम मास फरवरी में एक दिन बढ़ा दिया जाए। उस समय तक भारत के समान वर्षारम्भ वसन्त सम्पात (25 मार्च) से होता था। दिसम्बर दसवां मास था, इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'दशम' (लैटिन : Deca) से है। इसी प्रकार नवम्बर मास का नामकरण संस्कृत के 'नवम्' शब्द से है। अक्टूबर आठवां मास था तथा इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के अष्ट शब्द से है। सेप्टेम्बर का अर्थ है सातवां मास तथा यह संस्कृत के सप्तम शब्द से बना है। छठा मास हैक्सेम्बर (Hexamber) जिसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'षष्ठ' (लैटिन : Hex) से है। पांचवें मांस को पेंटेम्बर कहा जाता था। जिसका नामकरण संस्कृत के पंच शब्द से स्पष्ट ही है। जूलियस सीजर का जन्म इसी मास में हुआ था इसलिए उसने पेंटेम्बर का नाम बदलकर 'जुलाई' कर दिया। जूलियस सीजर ने प्रति चौथे वर्ष फरवरी के 30 दिन रखने का आदेश दिया था। उस समय मई, जुलाई, सितम्बर, नवम्बर और जनवरी के 31 दिन माने जाते थे। फरवरी के सामान्य दिन 29 दिन तथा लीप वर्ष में 30 दिन। अन्य मासों के 30 दिन चलते थे। सन् 325 ई. में रोम के शासक ऑगस्टस को ज्ञात हुआ कि रोम के पादरियों ने प्रति चौथे वर्ष में फरवरी का एक दिन बढ़ाने के बजाय प्रति तीसरे वर्ष एक दिन बढ़ाने की प्रथा चला दी थी। ऑगस्टस का जन्म छठे मास में हुआ था इसलिए उसने हैक्सेम्बर का नाम अगस्त कर दिया। उस समय तक अगस्ट मास में 30 दिन हुआ करते थे। ऑगस्टस ने अपने नाम के गौरव की रक्षा के लिये अगस्त में भी 31 दिन कर दिए तथा अन्तिम मास फरवरी से एक दिन उधार लेकर अगस्त में बढ़ा दिया। उसने लीप वर्ष के एक दिन बढ़ाने की प्रथा भी तब तक के लिए खण्डित कर दी जब तक पादरियों की गलत प्रथा के कारण पैदा हुई भूल का सुधार न हो जाए। 1582 ई. में रोम के पोप ग्रेगरी XIII ने ऑगस्टस से साढ़े बारह शती पश्चात् पुनः रोम के कैलंडर में सुधार किया। जूलियस सीजर ने सोचा था कि वर्ष 365 दिन 6 घंटे का होता है किन्तु ग्रेगरी ने विचार किया कि 1 वर्ष 365 दिन, 5 घंटे, 48 मिनट 46 सेकण्ड का होता है अतः 128 वर्षों में जूलियस कैलंडर के अनुसार एक दिन बढ़ जाएगा। ग्रेगरी ने वर्ष को 10 दिन पीछे धकेलने की घोषणा रोम के सम्राट से करवा दी। अतः वर्ष 1582, 365 के स्थान पर 355 दिन का रह गया। पोप ने वर्ष को 1 जनवरी से प्रारम्भ करने की घोषणा करवाई जिसका संसार भर में प्रबल विरोध हुआ। इंग्लैण्ड तथा इंग्लैण्ड के अमरीकी उपनिवेशों में 1732 ई. तक नववर्ष 25 मार्च से ही प्रारम्भ होता रहा। अतः जहाँ ग्रेगेरियन कैलंडर में दसवां मास (दिसम्बर) 12 वां मास बन गया था, वहाँ 18 वीं शताब्दी के मध्यकाल तक ब्रिटेन तथा ब्रिटिश साम्राज्य उसे दशम मास ही मानता रहा। 1923 ई. तक रूस

के ग्रीक चर्च तथा बलकान राज्यों में वर्ष मार्च से फरवरी तक ही चलता रहा। 25 दिसम्बर को प्राचीन रोम में सूर्य पूजा का महानतम महोत्सव मकर संक्रांति मनाया जाता था। राधाकृष्णन के मत में रोम में ईसाइयत के प्रवेश के पश्चात् उसी सूर्य पूजा महोत्सव को क्रिसमस के रूप में प्रचारित किया जाने लगा।

सप्ताह के सात दिनों के नाम जिस क्रम में भारतीय गणितज्ञों ने नियत किए थे, उसी क्रम में उसे सारे संसार ने मान लिया है। सूर्य तथा पृथ्वी के बीच ग्रह-पथ वाले बुध और शुक्र 'अन्तश्चर' कहलाते हैं तथा पृथ्वी के ग्रह-पथ से बाहर घूमने वाले ग्रह मंगल बृहस्पति और शनि 'बहिश्चर' कहलाते हैं। अब यदि एक बिन्दु से भिन्न-भिन्न दिशाओं में सात रेखाएं निकाली जाएं तथा उन पर सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र, शनि, बृहस्पति, मंगल आदि क्रमशः लिखे जाएं और सूर्य से दाहिनी ओर चक्र में 24 होरा (Hour) अर्थात् घंटा गिना जाये तो स्वाभाविक ही 25वां होरा चन्द्रवार (Monday) को पड़ेगा। इसी प्रकार चन्द्र से गिनती पर अगला 25वां होरा मंगल (Mars-Tiu) में पड़ेगा। लैटिन में इसे Dies Martis (मंगल दिवस) कहते थे जिसे एंग्लो सैक्सन में Tiws-Day कहा गया। इसी प्रकार क्रम में अगला दिन बुध (Mercury-Woden) बनेगा। इससे अगला बृहस्पति (Jupeter-Thursday) बनेगा। इससे अगला शुक्र (Venus-Freya) बनेगा। शुक्र को वेद में कहा गया है—अयं वेनश्च शुक्रः। सप्ताह का अन्तिम दिन शनैश्चर (शनैः-शनैः चरति, Saturn) पड़ेगा। संस्कृत दिव, दिवस से यूरोपीय भाषाओं में Day, Dien, Den Dies इत्यादि शब्द बने हैं संस्कृत के नक्त शब्द से यूरोपीय भाषाओं में Nacht, Night, Noct इत्यादि शब्द बने हैं। मध्याह्न से Midday, प्रतिदिन से Perday नवदिवस से New Day (फारसी में नवरोज) इत्यादि शब्द कालगणना पर भारतीय प्रभाव के सुस्पष्ट परिचायक हैं। थाईलैण्ड के नववर्ष को साँक्रान्त कहते है जो मेष संक्रांति (13 अप्रेल) को पड़ता है। इण्डोनेशिया, कम्बोडिया, लाओस, अफगानिस्तान, ईरान आदि के नववर्ष दिवस अभी भी वसन्त सम्पात (21 मार्च) के निकट पड़ते हैं। सूर्य तथा चन्द्रग्रहण के काल का निर्णय आज भी भारतीय कालगणना के अनुसार सर्वशुद्ध माना जाता है। इस प्रकार विश्व की आधुनिक कालगणना में भारत की जो देन है वह सर्वाधिक गौरवमयी है।

'हम कई मायनों में भारत के ऋणी हैं जिसने हमें गिनती सिखायी जिसके अभाव में कोई भी सही वैज्ञानिक अन्वेषण सम्भव ही नहीं हो पाता'।

—आइन्स्टाइन

भारतीय आयुर्विज्ञान का सार्वभौम महत्त्व

भारत को व्यापक स्तर पर 'संस्कृति का घर' कहा जाता है। लेकिन निश्चयात्मक विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत का योगदान यद्यपि तुलनात्मक रूप से कम जाना जाता है लेकिन फिर भी वैभवशाली है। आधुनिक काल के शिक्षित युवाओं के मस्तिष्क पर यह गलत जानकारी अंकित है कि जिस तरह से विज्ञान पश्चिमी सभ्यता का योगदान है उसी तरह धर्म और संस्कृति पूर्व का योगदान है।

प्रो. मैकडॉनल के अनुसार विज्ञान के क्षेत्र में भी भारत का यूरोप पर यथेष्ट एवं पर्याप्त ऋण है। प्रथमतः यह तथ्य है कि भारत ने संख्यात्मक अंकों का आविष्कार किया जिनका उपयोग विश्वभर में किया जाता है। इन अंकों के आधार पर गणना की दशमलव प्रणाली का प्रभाव न केवल गणित विज्ञान बल्कि सभ्यता के विकास पर भी महत्त्वपूर्ण है। आठवीं और नवीं शताब्दी के दौरान भारतीय अरबों के गणित और बीजगणित में शिक्षक बने और उनके माध्यम से पश्चिमी सभ्यता के भी गुरु बन गये।

भारतीय आयुर्विज्ञान को आयुर्वेद कहा गया था, जिसका अर्थ होता है, आयु का विज्ञान न कि केवल औषधि तथा चिकित्सा का विज्ञान।

डॉ. एलेक्सिस कैरल, जिन्हें चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार (1912) से सम्मानित किया गया था तथा जो न्यूयार्क के रोकफेलर आयुर्विज्ञान शोध संस्थान में 30 वर्षों से अधिक समय तक कार्यरत थे, उनके अनुसार, 'आधुनिक औषधि-विज्ञान अपने दावों के अनुरूप मानव रोगों और कष्टों का समाधान उपलब्ध नहीं करा पाया है। हम विकृत बीमारियों से पहले के मुकाबले अधिक अनुपात में मर रहे हैं तथा चिरकालिक रोगों से पीड़ित, मृत्यु हमारे ऊपर मंडराती है।'

भारतीय आयुर्विज्ञान एक ऐसे समय में, जब पृथ्वी पर किसी भी राष्ट्र को इस विज्ञान का पता नहीं था, पूर्ण रूप से विकसित रूप में विद्यमान था। चरक कहते हैं कि 'आयुर्वेद स्वस्थ एवं भव्य जीवन की बुद्धि एवं विज्ञान है।'

भारत में आयुर्विज्ञान इतना अधिक विकसित था कि इस क्षेत्र में भी इतिहास के स्वर्णयुग में अग्रणी रहा और, विश्वगुरु का सम्मानित दर्जा प्राप्त कर लिया था।

हिन्दू आयुर्विज्ञान का एशिया पर प्रभाव

तथ्यतः आयुर्वेद औषधि-विज्ञान न होकर जीवन का विज्ञान है। लेकिन आधुनिककाल के शिक्षित युवक को आसानी से समझाने की दृष्टि से भारतीय आयुर्विज्ञान अथवा हिन्दू आयुर्विज्ञान शब्द का प्रयोग सही होगा। आयुर्वेद, वेद की शाखा के रूप में यह विश्वास करता है कि जीवन शरीर, मन और आत्मा की रहस्यपूर्ण पादार्थिक समष्टि है। पश्चिमी आयुर्विज्ञान मन को बहुत हद तक नकारता है और आत्मा के अस्तित्व को यह कतई स्वीकार नहीं करता जो जीवन का मूल साधन है।

श्रीलंका, थाईलैण्ड, मंगोलिया और तिब्बत में आयुर्वेद को अभी भी राष्ट्रीय आयुर्विज्ञान प्रणाली माना जाता है। तिब्बती, मंगोलियाई, थाई और इण्डोनेशियाई भाषाओं में हमें आयुर्वेद के विरल अनुवाद उपलब्ध होते हैं। हमारे 'संस्कृति विहार' म्यूजियम में मंगोलिया से प्राप्त एक चित्र में धन्वन्तरि को अमृत का घड़ा उठाये हुए दिखाया गया है। धन्वन्तरि के आयु एवं आयुर्वेद के साथ जुड़ाव के कारण मंगोलिया भाषा में उन्हें 'आयुषी' कहा गया है। हमें शल्य-क्रिया के कई विरल यंत्र इत्यादि भी मिले हैं, जो सुश्रुत के अनुसार तिब्बत में शल्य-क्रिया इत्यादि के लिये प्रयोग किये जाते थे। भारत में औषधि-विज्ञान का संस्कृत ग्रन्थ 'अमृत अष्टांग हृदय-गुह्योपदेश तंत्र', जो भारत में आठवीं शताब्दी में गायब हो गया था, तिब्बत में ग्यूशी (Gyushi) के नाम से उपलब्ध है। एक समय में पूरे दक्षिण-पूर्व एशिया, उत्तर एशिया तथा मध्य-पूर्व में आयुर्वेद अत्यधिक प्रसिद्ध था।

मध्य-पूर्व पर प्रभाव

सातवीं शताब्दी में चरक संहिता और सुश्रुत संहिता का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया था। फरिश्ता (Farishta) जो एक प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार थे उन्होंने लिखा है कि 'आठवीं सदी में अरब लोगों को हिन्दू औषधि-विज्ञान के लगभग 16 ग्रंथों की जानकारी थी।'

पण्डित नेहरू ने 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' भारत : एक खोज में लिखा है कि 'अरबों के द्वारा बहुत से भारतीय चिकित्सकों को अरब देशों में बुलाया गया था। बगदाद के सर्वाधिक लोकप्रिय खलीफा हारून-अल-रशीद की बीमारी के दौरान मानक नाम के एक भारतीय चिकित्सक को भेजा गया था। मानक बगदाद में बस गया था तथा वहाँ उसे एक बड़े अस्पताल का मुख्य चिकित्सक बनाया गया था। बहुत से अरबी विद्वानों ने मानक के अतिरिक्त छः अन्य भारतीय चिकित्सकों के बगदाद में रहने का उल्लेख किया है। बगदाद में औषधिशास्त्र, गणित, खगोलशास्त्र तथा दर्शन का अध्ययन कराने के लिए ब्राह्मण विद्वानों को आमंत्रित किया जाता था। बहुत वर्षों तक बगदाद भारतीय चिकित्सा शास्त्र तथा

दर्शन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा। 1258 ई. में हलाक द्वारा बगदाद पर आधिपत्य जमाने के साथ भारतीय प्रभाव समाप्त हो गया।

पण्डित नेहरू कहते हैं कि विद्वानों के समूह अपनी पुस्तकों के साथ बगदाद से काहिरा तथा स्पेन की ओर गये और इससे वहाँ पर अध्ययन और कला का पुनर्जागरण काल प्रारम्भ हुआ। इस तरह से चिकित्साशास्त्र, गणित तथा खगोलशास्त्र में अरबी विद्वान यूरोप के शिक्षक बने। भारतीय सभ्यता और अध्ययन इस तरह अरबों के माध्यम से यूरोप पहुँचा।

ग्रीस तथा मिस्र

औषधि की ग्रीक (यूनानी) प्रणाली मानव की चार दशाओं (पित्त, कफ, वसा तथा रक्त) में विश्वास करती है जबकि आयुर्वेद प्रथम तीन में विश्वास करता है। भारत व ग्रीकों के संबंधों में पारस्परिक आदान-प्रदान हुआ। लेकिन भारतीयों ने ग्रीस और मिस्र से लेने के बजाय उन्हें ज्यादा दिया। रोगनाशक एवं रोगनिरोधक— दोनों ही तरह के आयुर्विज्ञान तथा शल्य क्रिया, जो यूरोप तथा विश्व के अन्य भागों में पारसियों, अरबों, मिस्रवासियों, ग्रीकों तथा रोम वासियों के माध्यम से फैला, वस्तुतः भारत में पैदा हुआ।

गैरीसन के अनुसार 'सिकन्दर के समय में भारतीय चिकित्सकों एवं शल्य-चिकित्सकों को उनके उच्च ज्ञान एवं तकनीक के कारण बहुत प्रसिद्धि प्राप्त थी। 'डॉ. ए.एल. बैशम की प्रसिद्ध कृति 'वंडर दैट वाज इण्डिया' में कुछ विद्वानों के अनुसार 'अरस्तू भी पारसियों और अरबों की भांति अपने आपको ऋणी मानता था।'

डॉ. रायले ने यह सिद्ध किया है कि 'पश्चिमी औषधशास्त्र का जनक हिप्पोक्रेटस ने अपने 'मैटेरिया मेडिका' को भारत से प्राप्त किया।

बसरा के अमीर बाहुजहीज ने 869 ई. में अपनी कृति में लिखा है कि 'चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्रों में हिन्दू अत्यधिक आगे हैं। उन्हें कुछ गंभीर बीमारियों के कुछ विशिष्ट रहस्य पता हैं!

इजराइलस्थविर पुत्र : थेराप्युते

भारत के बौद्ध-भिक्षुओं को 'स्थविर' (वृद्ध-पुरुष) कहा जाता है। जब अशोक ने भगवान् बुद्ध के संदेश को विदेशों में प्रसारित करने हेतु युवकों से अपील की तो इन युवा भिक्षुओं को 'स्थविर पुत्र' कहा गया। वे इजराइल तक गये तथा वहाँ अहिंसा के संदेश के साथ बीमारों को चिकित्सकीय सेवा भी उपलब्ध कराई। वे अपने कंधों पर दवाओं का थैला लटकाकर चलते थे तथा बीमार और पीड़ितों को दवाएं वितरित करते थे। बाइबिल में उन्हें 'थेराप्युत' कहा गया है।

उनका निरामिष भोजन, भिक्षु जीवन, ध्यान, प्रार्थना, एकांतता, ब्रह्मचर्य तथा सेवा भाव बौद्ध धर्म के गुण थे। उन्होंने ईसा मसीह के जन्म से पूर्व ईसाई मत के लिये मानसिक वातावरण तैयार किया। थेराप्युतो की वजह से चिकित्साशास्त्र में 'थेराप्युटिक' तथा 'थिरैपी'—जैसे शब्दों का समावेश हो गया है।

जर्मनी

जर्मनी में प्राच्यविद्या शोध संस्थानों तथा पुस्तकालयों में हिन्दू चिकित्साशास्त्र की बहुत-सी पांडुलिपियाँ आज भी सुरक्षित हैं।

डॉ. बुबलर (Dr. Bubler) द्वारा संपादित 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडो-आर्यन-रिसर्च' (वोल्यूम-पार्ट 10) के क्रम में डॉ. जै. जौली का औषधशास्त्र भी शामिल है।

डॉ. हेनरिक जिमर ने सही लिखा है कि चरक, सुश्रुत तथा वागभट प्राचीन समय की त्रिमूर्ति है जिन्हें बाद के युगों में चिकित्सा के क्षेत्र में तीन महानतम कहा जाता है। (हिन्दू औषधशास्त्रि, पृष्ठ 60)

हौम्योपैथी के जनक सैम्युअल हैनीमैन भी हिन्दू औषधशास्त्र से अत्यधिक प्रभावित थे।

फ्रांस

फ्रांस के चिकित्सक डॉ. पी. कार्डिए के संग्रह में ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद् सहित अन्य ग्रन्थों और विधि की पुस्तकों पर टीकाएं बहुत ही प्रसिद्ध है।

रोम

प्लास्टिक सर्जरी भारत में सफलतापूर्वक प्रचलित रही। फ्रांस का एक यात्री वीन 1835 ई. में भारत आया और उसने जम्मू तथा हिमाचल के कांगड़ा क्षेत्र का भ्रमण किया। वहाँ नाक की तथा शरीर के अन्य भागों की प्लास्टिक सर्जरी का चलन देखकर वह अत्यधिक आश्चर्यचकित हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी में एक इटालियन चिकित्सक ने प्लास्टिक सर्जरी भारतीय से सीखी थी तथा रोम में उसने उसका खूब प्रयोग किया। जब उसकी मृत्यु हुई तो उसे ईसाई की तरह से दफनाया नहीं गया क्योंकि उसने शल्यविद्या एक हिन्दू (गैर-ईसाई) से प्राप्त की थी।

पुर्तगाल तथा हालैण्ड

पुर्तगाल के गार्सियो-दो-ओरता ने सोलहवीं शताब्दी में हिन्दू औषधशास्त्र का अध्ययन किया और 17 वीं शताब्दी में हालैण्ड के डच बंटियस (Duch Buntius) द्वारा हिन्दू औषधशास्त्र को जाना गया और फिर उत्तर-पश्चिम यूरोप ले जाया गया। 19 वीं शताब्दी में पश्चिमी विद्वानों से इसे प्रोत्साहन मिला।

फ्रांस में हिन्दू औषधशास्त्र के ऊपर लेखन हुआ और 1864-1889 ई. के मध्य प्रकाशित औषधविज्ञान के विश्वकोश में इसे स्थान मिला।

इंग्लैण्ड

विलियम हंटर ने लिखा है कि 'भारतीय औषधशास्त्र विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र का लेखा-जोखा देता है। यह शरीर के ढांचे का विवरण देता है, इसके अंग-प्रत्यंग, मांसपेशियों, रक्तवाहिनियों और ऊतकों का भी विवरण देता है। हिन्दुओं का मैटेरिया मेडिका खनिजों, सब्जियों तथा पशु क्षेत्र से संबंधित अनेक दवाओं को शामिल करता है जो बाद में यूरोप के विद्वानों द्वारा स्वीकार कर ली गयी। उनका औषध निर्माण विज्ञान औषध निर्माण की प्रवीण प्रक्रियाओं और औषधियों को खिलाने तथा उनके वर्गीकरण को विस्तृत निर्देश प्रदान करता है। शरीर की स्वच्छता की प्रक्रिया तथा शरीर के पोषण पर इसका विशेष ध्यान था।'

वेबर के अनुसार 'भारत में आयुर्विज्ञान की पुस्तकों और विद्वानों की संख्या काफी बड़ी है। शल्यक्रिया में भी भारतीयों को विशिष्ट प्रवीणता प्राप्त है और इस क्षेत्र में यूरोपीय शल्य-चिकित्सक उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं जैसा कि उन्होंने राइनो प्लास्टरी के क्षेत्र में पहले भी सीखा है।'

श्रीमती ई. एलफिंस्टन के अनुसार—'भारतीयों की शल्यक्रिया उनके औषधविज्ञान की ही तरह विलक्षण है।'

श्रीमति मैनिग के अनुसार हिन्दुओं के शल्य-चिकित्सा के यंत्र इतने पैने होते हैं कि बालों को भी लम्बवत् काट सकते हैं।

लॉर्ड एम्पथिल (1869-1935 ई.) जो एक समय मद्रास के गवर्नर थे, उनके अनुसार मुझे ठीक से निश्चित यह पता नहीं पर सामान्य तौर पर ऐसा माना जाता है कि चिकित्सा का विज्ञान भारत में पैदा हुआ। लेकिन यह सत्य है कि विज्ञान प्रथम यहाँ से अरब और फिर यूरोप को निर्यात हुआ।

प्रो. एच. एच. विल्सन, जो प्रसिद्ध प्राच्यविद् एवं भाषाशास्त्री थे, उनकी महान् कृतियों के माध्यम से हिन्दू औषधशास्त्र पश्चिम तक पहुँचा। उन्होंने 1823 ई. से अपने निबन्ध आयुर्विज्ञान और शल्यचिकित्सा पर लिखे। 1837 ई. में प्रो. रायले का निबन्ध 'हिन्दू औषधशास्त्र की प्राचीनता' शीर्षक से लंदन में प्रकाशित हुआ।

वाइज, स्टेंजलर्स, हैजलर्स, वुल्लर्स, रायले जैसे—आधुनिक औषधशास्त्र के विद्वानों तथा भारत में गोन्डल के महाराजा, गणनाथसेन, जैमिनीभूषणराय, कप्तान श्रीनिवास मूर्ति, डॉ. एन. बनर्जी, अगास्थे, के. एस. महास्कर, आर. डब्ल्यू. चौपड़ा जैसे विद्वानों ने चरक संहिता तथा सुश्रुत संहिता पर अच्छे अध्ययन प्रस्तुत किये जिसमें उन्होंने आयुर्वेद तथा अन्य भारतीय औषधियों की महत्त्वपूर्ण

बातों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। उन्होंने प्राचीन प्रणालियों की वैज्ञानिकता पर ध्यान आकर्षित किया है।

अमरीका

अथर्ववेद की ऋचाओं का ह्विटनी द्वारा अनुवाद सर्वप्रथम प्रकाश में आया तथा उसके बाद चरक, सुश्रुत तथा वागभट की संहिताओं के अनुवाद प्रकाशित हुए। जूलियस जॉली का प्रबन्ध अत्यधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। जॉली ने अपनी कृति Indische Mediuim (भारतीय औषधिशास्त्र) में उपलब्ध सामग्री का समग्र सर्वेक्षण प्रस्तुत किया है।

स्वच्छता-संहिता

सन् 1905 में लॉर्ड एम्पथिल ने मद्रास में कहा—'अब हमें पता लग रहा है कि हिन्दू शास्त्रों में स्वच्छता संहिता का समावेश भी है। मनु, जिसे विधि-प्रदाता कहा जाता है, उनको महानतम स्वच्छता-संहिता देने वाला विद्वान भी माना जाना चाहिये। विश्व ने ऐसा महान् पूर्व में नहीं देखा।'

प्रो. वेबर के अनुसार 'वैदिक समय में पशु शरीर-रचना विज्ञान पूरी तरह समझ लिया गया था और इसके प्रत्येक भाग का एक विशिष्ट नाम हुआ करता था। अमरकोष के मानव शरीर-संबंधी अध्याय में जिस तरह से बीमारियों का उल्लेख है, उससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में चिकित्सा-विज्ञान काफी आगे जा चुका था।'

प्रो. विल्सन के अनुसार 'संस्कृत में चिकित्सा विज्ञान-संबंधी साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जिनमें से कुछ कृतियों का अरबी लेखकों ने उल्लेख किया है तथा 9 वीं शताब्दी में बगदाद में कुछ ग्रन्थों का अनुवाद भी उपलब्ध था। यह साहित्य चिकित्सा-विज्ञान की सभी शाखाओं, जिसमें शल्य-क्रिया भी शामिल है, पर उपलब्ध था। ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं, जिनमें कई तरह की व्याधियों का समुचित समाधान किया गया था।' लार्ड एम्पथिल ने एक अन्य स्थान पर कहा है कि 'भारत के लोगों को कर्नल किंग का धन्यवाद व्यक्त करना चाहिये जिसने उन्हें इस ज्ञान से अवगत कराया कि उनके पास रोगनिरोधक एवं रोगनाशक चिकित्सा सिद्धान्त प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। एक ऐसे समय में जब यूरोप असभ्य समाजों की श्रेणी में आता था। मुझे पता नहीं कि यह माना जाता है अथवा नहीं कि चिकित्सा-विज्ञान का प्रादुर्भाव भारत में हुआ, लेकिन यह सच है कि इस विज्ञान को सबसे पहले भारत से अरब दुनिया और फिर वहाँ से यूरोप में निर्यात किया गया। लगभग 17 वीं शताब्दी के आने तक यूरोप के चिकित्सा-शास्त्रियों ने विज्ञान को अरब दुनिया के चिकित्सकों की मदद से समझा जबकि कई सदी पहले

इसी विज्ञान को अरब के चिकित्सकों ने भारत के महान् चिकित्सक धन्वंतरि, चरक एवं सुश्रुत आदि से सीखा।

सर डब्ल्यू. हंटर का कहना है कि हिन्दू औषधशास्त्र का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ जबकि अरबी औषधशास्त्र बगदाद के खलीफा (950-960 ई.) के आदेश पर संस्कृत ग्रंथों के अनुवाद के आधार पर हुआ। यूरोपीय औषधशास्त्र 17वीं शताब्दी तक अरबी अनुवाद पर आधारित रहा, जिसमें भारतीय चिकित्साशास्त्रियों, यथा—चरक इत्यादि के नाम लगातार आते हैं। (अबुसीना, अबरासी एवं अबुसराबी आदि के अनुवाद)

कोसोमाडिकोरस ऐसा पहला व्यक्ति था जिसने यह घोषणा की कि तिब्बत की तनलुर चरक सुश्रुत व वाग्भट के ग्रन्थों के अनुवाद हैं।

श्रीमती मैनिग के अनुसार यूनानियों ने बाद में बगदाद में हिन्दू चिकित्साशास्त्रों की जानकारी प्राप्त की और इलाज के तरीकों को भी सीखा। सिरेपियन, जो कि अरब संसार के प्रारम्भिक लेखकों में गिना जाता है, ने भारतीय चिकित्सक चरक का उल्लेख किया तथा उन्हें चिकित्साशास्त्र का महान् वैज्ञानिक बताते हुए माइरोबोलान्स को चरक के विवरणों का हिस्सा बताया।

एक और अन्य अरबी चिकित्साशास्त्री, जिसेरेज ने चरक को उद्धृत करते हुए उन्हें पादपों और दवाओं के संदर्भ में अधिकृत विवरण देने वाला बताया है।

डॉ. फरनैल, जो मद्रास में सेनेटरी कमिश्नर के पद पर कार्यरत थे, उन्होंने अपने अप्रेल 1882 ई. के एक व्याख्यान में हिन्दू औषधशास्त्र के दावों का समर्थन करते हुए कहा कि भारतीय चिकित्सा-पद्धति दुनिया में सर्वाधिक प्राचीन एवं विकसित चिकित्सा-पद्धति थी। शुद्ध जल के सेवन का महत्त्व स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि प्राचीन हिन्दू न केवल अन्य सभी मामलों में दूसरों से श्रेष्ठ था बल्कि वह इसलिए भी अधिक श्रेष्ठ था कि उन्होंने शुद्ध जल के महत्त्व को पहचाना और सभी तरह के जल-प्रदूषण को पूरी तरह निषिद्ध किया। 1879 ई. में उन्होंने अपने एक अन्य सम्बोधन में बताया कि हिन्दू चिकित्साशास्त्री चिकित्सा विज्ञान की सभी शाखाओं में अतुल्य थे, एक ऐसे समय में जब ब्रिटेन के लोग असभ्य थे और संभवतः नंगे घूमते थे। कोलकाता के एक समाचार पत्र 'द इंग्लिश मैन' में 1880 ई. में लिखा कि भारतीय चिकित्साशास्त्र के संस्कृत ग्रन्थों को पढ़ने के बाद कोई भी यह निष्कर्ष निकाले बगैर नहीं रह सकता कि ज्ञान और जानकारी के संबंध में प्राचीन हिन्दू न केवल यूनानियों और रोमनों से आगे थे बल्कि मध्यकालीन यूरोप से भी बहुत आगे थे।

एलफिंस्टन का कहना है—'उन्हें सल्फ्यूरिक एसिड, नाइट्रिक एसिड, मोरेटिक एसिड, कॉपर ऑक्साइड, लोहा, जस्ता, टीन, जिंक, लोहे का सल्फरेट, तांबा, मर्करी

तथा ऐसे ही अन्य कई तरह के धातु और अधातु बनाने आते थे। इन वस्तुओं को तैयार करने का इनका तरीका कई मामलों में अद्‌भुत हुआ करता था। औषध-निर्माण के क्षेत्र में उनके प्रयोग बहुत निर्भीक थे। वे दुनिया के ऐसे प्रथम राष्ट्र थे, जिन्होंने खनिजों का प्रयोग औषध-निर्माण क्षेत्र में किया। मर्करी और आर्सेनिक जैसे पदार्थों का उपयोग कर उन्होंने उपचार-पद्धति विकसित की। उन्होंने धूमीकरण हेतु सिन्दूर का उपयोग बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया था जिसके माध्यम से वे वेगवान् तथा सुरक्षित लालाश्रवण का परिणाम उत्पन्न करते थे। उन्होंने टीकाकरण की व्यवस्था को बहुत पहले प्रारम्भ कर दिया। ऐसा महसूस होता है कि औषधविज्ञान की उनकी जानकारी बहुत विस्तृत थी। सामान्य वस्तुओं की उनकी जानकारी से हमें आश्चर्य नहीं होता, जिनके बारे में उन्होंने यूरोप को प्राथमिक शिक्षा दी, यथा—अस्थमा में धतूरे का धूम्रपान तथा कीड़ों के विरुद्ध कोविच का उपयोग।

कोलोनल किंग ने स्पष्ट सबूत उपलब्ध कराएं हैं कि प्राचीन भारत में जातिप्रथा-संबंधी व्यादेश बीमारी के संक्रमणीय अभिकर्ताओं के अस्तित्व के विश्वास पर आधारित था। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि हिन्दू और मुसलमान—दोनों ही चेचक से बचाव के लिए चेचक के वायरस से टीकाकरण किया करते थे तथा यह कि टीकाकरण जेनर की महान् खोज से पूर्व भी यूरोप में इस विधि का प्रयोग हो चुका था जिसे मध्य-पूर्व में (कॉन्स्टेन्टिनोपल) तथा लगभग पूर्व एशिया तक औषधविज्ञान की जानकारी से प्राप्त किया गया था। यह स्थिति ईसाकाल से प्रारम्भ की है। लॉर्ड एम्फथिल ने भारत के प्रसिद्ध चिकित्साशास्त्री धन्वंतरि को उद्धृत किया है—'फुंसी से निकले हुए तरल पदार्थ को गाय के थन पर लेकर अथवा किसी व्यक्ति के कंधे व कोहनी के बीच में रखकर नस्तर से इतनी जोर से दबाएँ कि वहाँ रक्त प्रकट होने लगे, इस तरह उस तरल पदार्थ को व्यक्ति के खून से मिला देने से चेचक का बुखार प्रादुर्भूत होगा। साधारण रूप से इसी को 'टीकाकरण' कहा जाता है। इस तरह से ऐसा महसूस होता है कि प्राचीन हिन्दुओं ने जेनर की महान् खोज की उद्‌घोषणा पहले से ही कर दी थी।

पूरे विश्व में हमें कोई भी ऐसा प्रारूप नहीं दिखता जिसमें हम चेतना के एक से ज्यादा रूप प्राप्त कर सकें, यदि है तो वो भी इसलिये कि हम क्षणभंगुर मनुष्यों की अनगिनत संख्या को देखकर ऐसा महसूस करते हैं। जबकि यह सर्वथा भ्रामक तथा गलत सोच है....इस द्वन्द्व का एक ही समाधान है और वह उपनिषदों की सूक्तियों में ही निहित है।'

—एडविन श्रोडिंजर

भारतीय दर्शन की पूर्णता

दर्शन का इतिहास भारत से न कि यूनान से

दर्शन के क्षेत्र में भारत विश्व का शिरोमणि देश है। वास्तव में भारत ने अन्तर्जगत् में डुबकी लगा कर जिन अमूल्य विचार-रत्नों की उपलब्धि प्राप्त की है उसके सम्मुख शेष विश्व की समस्त सम्पदा फीकी पड़ जाती है। यह दुर्भाग्य की बात है कि पश्चिम में लिखित अधिकांश दर्शन के इतिहास की कथा यूनान से प्रारम्भ करते हैं। यूनान में छठी शताब्दी ई. पू. से दार्शनिक चिन्तन प्रारम्भ होता है, जबकि भारत में यह काल प्रखर दार्शनिक वाद-विवाद का भास्वर मध्याह्न काल है। पश्चिम में जब प्रथम दार्शनिक थेल्स अनुमान लगा रहा है कि सम्भवतः जल ही सृष्टि का परम सत्य है। उस समय तक भारत में वैदिक दर्शन, उपनिषदों का महानतम वेदांत दर्शन, कल्पसूत्र, जैन एवं बौद्ध आचार्य दर्शन—सभी पूर्णतः विकसित एवं प्रतिष्ठित हो चुके थे। अतः संसार में दर्शनशास्त्र का इतिहास भारत से प्रारम्भ होना चाहिए न कि यूनान से।

संसार में श्रेष्ठतम आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि एवं बौद्धिक दर्शन

डॉ. राधाकृष्णन् के शब्दों में—'संसार भर में सम्भवतः आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि अथवा बौद्धिक दर्शन की ऐसी कोई भी ऊँचाई नहीं है कि जिसका सममूल्य वैदिक ऋषियों और अर्वाचीन नैयायिकों के मध्यवर्ती विस्तृत ऐतिहासिक-काल में न पाया जाता हो।'

भारतीय दर्शन की पाश्चात्य दर्शन की तुलना में श्रेष्ठता

सर डब्ल्यू हंटर के शब्दों में—'भारतीय दर्शन ने उन समस्त दार्शनिक गुत्थियों के संभावित समाधान खोज लिए थे, जो गुत्थियाँ प्रारम्भ से यूनानियों, रोमनों और मध्यकालीन यूरोपीय चिन्तकों को परेशान करती रहीं और आज तक वैज्ञानिकों को भी उलझन में डाले हुए हैं।'

मिसेज़ मैनिंग़ के शब्दों में—'हिंदुओं के मन एवं चिन्तन का उतना अधिकतम विस्तार हो चुका था जितना मानव के लिए कभी भी सम्भव हो सकता है।'

प्रो. श्लेग़ल (जर्मनी) कहते हैं—'यूरोप का सर्वोच्च दर्शन, बौद्धिक अध्यात्मवाद, जो यूनानी दार्शनिकों से प्रारम्भ हुआ, प्राच्य अध्यात्मवाद के अनंत प्रकाश एवं प्रखर तेज के सम्मुख ऐसा प्रतीत होता है जैसे मध्याह्न के प्रखर सूर्य के दिव्य प्रकाश के भरपूर वेग के सम्मुख एक मन्द-सी चिनगारी हो जो धीरे-धीरे टिमटिमा रही हो और किसी भी समय बुझ सकती है।'

काउंट जॉर्न्स जेर्ना का कथन है—'यूनान और रोम के दार्शनिकों की तुलना में हिंदू दार्शनिक बहुत-बहुत आगे थे।'

प्रो. वेबर का मूल्यांकन है—'दर्शन के ही क्षेत्र में भारतीय मनीषा ने चमत्कारी प्रतिभा के सर्वोच्च शिखर को प्राप्त किया था।'

दर्शन मात्र बौद्धिक वाणी-विलास नहीं वरन् जीवन की सर्वोच्च साधना

भारत में पश्चिम की तरह दर्शन केवल बुद्धि व्यायाम अथवा वाणी का विलास मात्र नहीं था वरन् वह तो जीवन की सर्वोच्च साधना ही थी। जीवन का परम लक्ष्य है पूर्णत्व, अमरत्व अथवा मोक्ष को प्राप्त करना। तदर्थ सत्य का साक्षात्कार अनिवार्य है। सत्य की उपेक्षा करके केवल दिमागी उछल-कूद या बुद्धि के बन्दर-नाच से कोई पूर्ण पुरुष या मुक्त पुरुष नहीं बन सकता। गुरुग्रंथ साहिब में लिखा है—

चतुराई न चतुर्मुख पाया।
भोले भाव मिले रघुराया।। (रविदास)

पश्चिम ने आर्मचेयर फ़िलॉसफ़र (आरामकुर्सी दार्शनिक) अधिक पैदा किए हैं। उदाहरण के रूप में इंग्लैण्ड के बर्ट्रेण्ड रसेल पश्चिम के महानतम विचारक माने जाते थे, किन्तु 80 वर्ष की अवस्था में 16 वर्ष की सुन्दरी से जीवन का 16वाँ विवाह रचाते हैं, आराम से कुर्सी में पड़े हुए, मुख में सिगार लिए, एक ओर सुरा दूसरी ओर सुन्दरी को थामे हुए दार्शनिक समस्याओं पर लिखने या बोलने वाले विलासी व्यक्ति के दर्शन को खोपड़ी के खेल से अधिक और क्या कहा जा सकता है?

भारत में दर्शन को जीवन की परम साधना एवं सर्वोच्च सिद्धि माना गया है।

गीता के दार्शनिक भगवान् कृष्ण, भगवान् बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य आदि क्रियात्मक दार्शनिक थे, जिनकी कथनी-करनी में खाई नहीं थी। इसलिए भारत में दर्शन केवल मनोरंजन या बुद्धिरंजन का विषय न होकर जीवन की जीवन्त साधना का अंग रहा है।

कल्याणकारी शिव का विश्वव्यापी रूप

'शैव धर्म का अध्ययन भारतीय सभ्यता का अध्ययन है।' यह शब्द डॉ. यदुवंशी ने साधु आश्रम, होशियारपुर द्वारा प्रकाशित एक ग्रन्थ में संकलित लेख 'शैवधर्म के ऐतिहासिक आधार', में लिखे हैं। श्री अवनीन्द्र कुमार विद्यालंकार ने लिखा है, विभिन्न जातियों की एकता और सम्मिश्रण को 'शिव' के समान और कोई देवता व्यक्त नहीं करता।' वे पुनः कहते हैं, 'जावा, बाली, चम्पा आदि देशों में भी शिव का यही रूप पहुँचा और पूजा गया। तेरहवीं शती के बाद सम्भवतः महादेव की पूजा विधि और उसके स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आया। इस सदी तक के सांस्कृतिक और दैशिक-इतिहास को यदि एक शब्द में कहना हो तो हम 'शिव' कह सकते हैं। यह है इस देवता का महत्त्व और इसी कारण इसको देवाधिदेव और महादेव कहा गया। भारत और वृहत्तर भारत को जोड़ने वाला दृढ़ और स्थायी पुल भी यही है। इसकी पूजा करना भारतीय संस्कृति और अपने राष्ट्र-निर्माता पूर्वजों की पुण्य स्मृति का आदर और उनको श्रद्धांजलि अर्पित करना है।'

वेद में भगवान् के कल्याणकारी स्वरूप को शिव, शंकर, शंभु नाम से स्मरण कर वन्दना गाई गई है—

नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च,
नमः शंकराय च, मयस्कराय च,
नमः शिवाय च, शिवतराय च।।

जगत्गुरु भारत ने विश्वकल्याण का सन्देश सारे संसार को देने हेतु अनेकानेक देशों में शिवसंकल्प धारण करने वाले वीरव्रत, ज्योतिर्धर देवदूतों को भेजा तथा सारे विश्व में भारतीय संस्कृति के अन्य आदर्शों एवं मूल्यों के प्रचार के साथ-साथ शिवत्व का भी प्रचार हुआ। आजतक दुनिया भर के देशों में शिवपूजा के प्रचलन के जीवंत प्रमाण अपनी मौन-मुखर भाषा में भारत एवं भारतीयता का यश गा रहे हैं।

उत्तरी अफ्रीका—फ्रांस देश के विद्वान् लुइस साहब ने लिखा है कि अफ्रीका के मिस्र देश में मेफिस और अशीरस नामक क्षेत्रों में नन्दी पर विराजमान,

त्रिशूलहस्त एवं व्याघ्र चर्मधारी शिव, की अनेक मूर्तियाँ हैं, जिनका वहाँ के लोग बेल पत्र से पूजन और दुग्ध से अभिषेक करते हैं।

हिस्टोरिकल हिस्ट्री ऑफ दी वर्ल्ड में लिखा है 'इजिप्टवासी पणिकों की ही शाखा हैं। वे लोग पर्शियन गल्फ से होते हुए लाल समुद्र के दक्षिण में पांत नामक प्रदेश से गए। ये पांत शब्द भारतीय 'पांडय' शब्द का ही अपभ्रंश है।' भविष्य पुराण के अनुसार कण्व ऋषि सरस्वती की आज्ञा से मिस्र देश में गए। मिस्र में कई सूर्य मन्दिर मिले हैं और पवित्र नगर में 'महांकाल म्यो' नामक एक मन्दिर भी है। मन्दिर के एक भाग में मच्छिन्दरनाथ की मूर्ति है और दूसरे भाग में दत्तात्रेय के पदचिह्न हैं। मिस्री देवता 'हर' शिव का ही नाम है तथा 'सुर' सूर्य का रूपान्तर है।

तुर्किस्तान—तुर्किस्तान के बाबीलान के नगर में एक हजार दो सौ फुट का एक महालिंग है। पृथ्वी पर इतना बड़ा शिवलिंग अन्यत्र नहीं है।

इसी प्रकार हेड्रापोलिस नगर में एक विशाल शिवालय है, जिसमें 300 फुट का एक शिवलिंग है।

अरब—अरब देश में भी हजरत मुहम्मद के जन्म से पूर्व हिन्दू तथा बौद्ध-धर्म का प्रचार था। मक्का के पवित्र मन्दिर में 360 मूर्तियाँ धरी थीं और एक काले रंग का बड़ा पत्थर था जिसे 'संगे असवद' कहते थे। लोगों में इस पत्थर की पूजा का बड़ा प्रचलन था। हजरत मुहम्मद जब मक्का के प्राचीन धर्मावलम्बियों से लड़ाई लड़ रहे थे तो उन्होंने दुआ मांगी कि या संगे असवद! अगर मैं यह लड़ाई जीत गया तो तुझे खाना काबा से न हटाऊंगा। हजरत ने लड़ाई जीतने के बाद बाकी मूर्तियों को तुड़वा दिया किन्तु संगे असवद को आकर बोसा दिया (चूमा)। तब से यह काला पत्थर वहीं रखा है और हाजी मुसलमान इसे चूमते चले आ रहे हैं। वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी ने अपने एक गवेषणा पूर्ण लेख में लिखा है कि वह काला पत्थर एक महान् शिवलिंग है जो कम से कम 20 बैलगाड़ियों पर उठाया जा सकता है। उसे भारतीय ग्रन्थों में मक्केश्वर महादेव कहा जाता है। वहाँ के जमजम नामक कुएं में भी एक शिवलिंग है जिसकी पूजा खजूर की पत्तियों से होती है। हजरत मुहम्मद के चाचा 'अब्दुलहिक्म' ने महादेव की स्तुति में लिखा था—

बअहलोलहा अजहू अरमीमन महादेव औ।
मनाजेल इल मुद्दीनें मिनहुम व सयत्तरू।।

अर्थात् एक बार भी यदि मनुष्य सच्चे हृदय से महादेवजी की पूजा करे तो धर्म मार्ग में उच्च से उच्च पद पा सकता है।

अमरीका—भिक्षु चमनलाल ने 'हिन्दू अमरीका' में लिखा है कि कोलम्बस के अमरीका खोजने से हजार वर्ष पहले अमरीका विशेषकर पेरू, बोलिविया

तथा मैक्सिको में हिन्दू धर्म का प्रचलन था। उन्होंने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक में मैक्सिको के महान् शिव मन्दिर, बोलिविया के कैलास मन्दिर तथा पेरू की शिव एवं गणेश मूर्तियों के चित्र भी दिए हैं। ब्राजील में अभी तक अनेक शिव मन्दिर तथा शिवलिंग मिलते हैं।

यूरोप—कारिन्थ नगर में तो पार्वती मन्दिर भी पाया जाता है।

इटली के अनेक ईसाई अभी तक शिव पूजा करते हैं।

श्री काशीनाथ शास्त्री (मैसूर) ने लिखा है कि स्काटलैण्ड (ग्लासगो) में एक सुवर्णाच्छादित शिवलिंग है जिसकी पूजा यहाँ के लोग बड़ी भक्ति से करते हैं।

मध्यपूर्व—'फिजियन' के 'एटिस' या 'निनिवा' नगर में 'एषीर' नामक शिवलिंग है।

इसी प्रकार यहूदियों के देश में भी अनेक शिवलिंग मिले हैं।

मोहंजोदरो तथा हड़प्पा से प्राप्त पशुपति शिव की मूर्ति तथा लिंग और उन्हीं की अनुकृति की सभ्यता का सुमेरिया, बेबिलोनिया में पाया जाना भी वृहत्तर भारत का एक महत्त्वपूर्ण अध्याय है।

अफगानिस्तान और ईरान—'अफरीदिस्तान, चित्राल, काबुल-बलख, बुखारा आदि स्थानों पर शिवलिंग मिले हैं। भगवद रिसर्च स्कालर ने वेदों के कल्याणकारी शिव के अतिरिक्त एक ऐतिहासिक पुरुष शिव का भी वर्णन किया है। ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार माता सुरभि और कश्यप प्रजापति के ग्यारह पुत्र थे। इनमें से एक शिव थे। उनसे नाग जाति का आरम्भ हुआ। शिवजी सभी भाइयों से अधिक तपस्वी, ज्ञानवान, समर्थ एवं दीर्घजीवी हुए। माता सुरभि का देश अफगानिस्तान से परे और फारस के नीचे था। शिवजी का जन्म वहीं का माना जाता है, कैलास उनके तप का स्थान है। वे अनेक स्थानों पर घूमते रहे। पुराणों के अनुसार ब्रह्माजी के दिए हुए ज्ञान का सार-संक्षेप शिवजी ने मानवता को दिया।

ईरान के सासानी राजाओं के सिक्के में शिवमूर्ति होती थी। वहाँ शिव त्रिशूल हाथ में लिये, ईरानी पोशाक में वृषभ के साथ दिखाए गये हैं। कल्याण गोरखपुर के शिवांक में उक्त सिक्के का वृहताकार छायाचित्र दिया है।

चम्पा (अनाम)—हिन्द-चीन का प्राचीन नाम चम्पा है। श्री आर. सी. मजूमदार ने अपने 'सुदूरपूर्व में प्राचीन भारतीय उपनिवेश' (आंग्ल भाषा) नामक ग्रन्थ में बताया है कि अनाम में 92 शिलालेखों में भगवान् शिवशंकर का स्तवन किया गया है। 'ओम नमः शिवाय' नामक भारत का 'कल्याण को नमस्कार' करने वाला मन्त्र सभी ओर बहुतायत से प्रयोग हुआ है। वहाँ के सभी राजा शिवभक्त थे। उस देश का 'मीसोनखेड़ा' नामक स्थान शिवालयों की अधिकता के कारण

काशी की समानता करता था। एक शिलालेख के अनुसार राजा मप्रवर्मा ने भद्रेश्वर महादेव की स्थापना की। शिलालेख के एक श्लोक में शिव-स्तुति के साथ उक्त घटना को अंकित किया गया है—

सृष्टं येन त्रितय मग्विलं भू र्भुवः स्वः स्वशक्तया।
येनोत्खातं भुवन दुरित वन्हिने बान्धकारम्।
यस्याचिन्त्यो जगति महिमा यस्य नादिर्नचान्त-
चम्पादेशे जनयतु सुखं शंभु भद्रेश्वरोयम्।।

अर्थात्—जिसने निज शक्ति से भू, भुवः स्वः तथा अखिल त्रिलोक की सर्जना की है, जिसने अपनी ज्ञानाग्नि से निखिल भुवन के पाप अन्धकार को नष्ट कर दिया है, जगत् में जिसकी महिमा अचिन्त्य है तथा जिसका आदि और अन्त नहीं है वह शंभु भद्रेश्वर महादेव चम्पादेश में सुख की वर्षा करे।

16वें लेख में एक अन्य बड़ी अनूठी स्तुति है—

यं सर्व देवाः ससुरेशमुख्या, ध्यायान्ति तत्तत्वविदश्च सन्तः।
स्वस्थः सुशुद्धः परमो वरेण्यो, ईशान नाथः स जयत्य जस्रम्।।

अथवा—

जिसे देवता-इन्द्रादिक सब, और तत्त्वदर्शी हैं ध्याते। स्वस्थ शुद्ध परमोवरेण्य जो, उस ईशान नाथ की जय हो।

उस महान् शिवालय की सेवा का खर्च चलाने के लिए महाराजा ने एक कोष की स्थापना की। तद्विषयक शिलालेख है—

श्री ज्ञानेश्वर कोशं संस्थाप्य यथा विधि स्वभक्ति वशात्।
श्रीमान् प्रकाश धर्मो मुकुटं भद्रेश्वरायादात्।।

राजा नरवाहन वर्मा ने मन्दिर की वेदी को सोने का बनवाया। शिलालेख प्रमाण है—

नरवाहन वर्म श्रीररोतां शिल्प।
मयीम, रुक्म रौप्य बर्बिद्धां ब्रह्मा मेरु शिखामिवां
स्वर्णं राप्यमयी लक्ष्मी विभ्रात वैदिका पुन।
विद्युत ज्योति प्रभा भांति हिमगिरेरिव।।

42वें श्लोक में भगवान् शंकर की हृदय हारी वन्दना गाई गई है—

यो भस्मराश्यां बहुसंचायायां, दिव्यः रूखासान उरु प्रभाव।
देदीप्यते सूर्य इवांशुमाला, प्रद्योतितः रवे विनतांबुदेये।।

शंकर एवं नारायण की संयुक्त मूर्ति जो भारत में हरिहर के नाम से प्रसिद्ध है। हिन्द-चीन में भी मिलती है। इस देश का रक्षक देवता ही शिव माना जाता था।

कम्बुज (कम्बोडिया) की विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय संस्कृति के एक पूर्ण प्रफुल्ल पुष्प से उपमा की है। अनुकूल पवन से उस सुगन्धित फूल के बीज संसार के अनेकानेक देशों में फैल गए तथा उन देशों को भी संस्कृति की सुवास से भर दिया। कौडिन्य नाम के भारतीय पण्डित ने ईसा की शती में कम्बोडिया में चरण रखे तथा वहाँ भारतीय संस्कृति का बिरवा आरोपित किया। वहाँ के अन्कारथाम के महान् ऐतिहासिक स्थल पर बायोन मन्दिर में शिव की मूर्ति स्थापित है। हरिहर संयुक्त मूर्ति का दर्शन भी कम्बुज में बहुत है। कम्बुज के 'स्काद काक थाम' का शिलालेख 60 इंच ऊँचा है तथा शिव-महिमा से भरा हुआ है। शैवधर्म 600 वर्षों तक कम्बोडिया का राजधर्म बना रहा।

जैसे गया में विष्णुपाद तीर्थ है, श्रीलंका में बुद्धपाद तीर्थ है, शिवपाद तीर्थ कम्बोडिया में ही है, किन्तु जगत् में अन्यत्र कहीं नहीं। भारतीयता के प्रभाव से पूर्व के जो खमेर देवता थे वे सब भी शिव के रूप में लीन हो गए तथा शिव के लिए अनेक नाम खमेर भाषा में दिए गए।

जावा (यव द्वीप)—जावा में भारतीय प्रभाव का श्रीगणेश महर्षि अगस्त्य के समुद्र लंघन कर वहाँ पहुँचने की घटना से प्रारम्भ होता है। आज तक भी जावा के मन्दिरों में शिव एवं अगस्त्य की संयुक्त मूर्तियों के दर्शन होते हैं। कहीं अगस्त्य रूपी शिव हैं कहीं शिव रूपी अगस्त्य। एक शिव मूर्ति 1 फुट 1 इंच ऊँची है, जिसकी जटाओं पर ऊँचा ताज शोभित है तथा बालचन्द्र से विभूषित हैं। मूर्ति की चार भुजाएं हैं, एक में कमंडलु है। इसी प्रकार त्रैलोक्य विजयी शिव की मूर्ति चतुर्मुखी है। हर के शीश पर मुकुट है। जोग्जाकार्ता (योग्यकर्ता) नगर के मुसलमान सुलतान अभी तक अपने नाम के साथ 'भुवन सेनापति' लिखते हैं। 'प्रम्बनन' में एक अनूठा मन्दिर है। वहाँ चंडी शिव का मन्दिर 60 फुट ऊँचा है। उस मन्दिर की मूर्ति का छायाचित्र कल्याण ने प्रकाशित किया है।

बाली—बाली द्वीप तो आज तक भी पूर्णतया भारतीय (हिन्दू) है, शिव प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं कपूर और शिवशंकर की अर्चना में नृत्य करते हैं। सूर्य को भी वे शिव का ही रूप मानते हैं। मन्दिर के प्रवेशद्वार को विभूषित करने के लिए गणेश तथा नन्दी की प्रतिमाएँ हैं। शिव पूजा का सर्वाधिक प्रचलन है। वहाँ लिंग पूजा नहीं, शिव के विग्रह की मूर्तियाँ हैं। त्रिशूल के स्थान पर शिव के हाथ में चक्र दिखाया गया है जो कि सती के मृत शरीर को कई भागों में काटने के लिए प्रयोग किया गया था। घंटियाँ, तिलक, धूप-दीप, आरती, चरणामृत—सभी कुछ भारतीय हैं।

विश्व भर में भारतीय संस्कृति के कल्याण सन्देश को प्रसारित करने वाले विश्व के अनादि शिवतत्त्व की वन्दना में हम वेदों की वाणी में गाते हैं—

एकोहि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य, इमांल्लोकान ईशत ईशनीभिः।
प्रत्ङजनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले, संसृज्य विश्वाः भुवनानि गोपाः।।

'हिन्दुत्व एक प्रवाह है, कोई स्थिर स्थिति नहीं, यह प्रक्रिया है परिणाम नहीं। यह एक परम्परा है कोई स्थिर प्रकटीकरण नहीं। इसका पिछला इतिहास हमें इस बात का विश्वास दिलाता है कि भविष्य में किसी भी वैचारिक या ऐतिहासिक आपात् परिस्थिति में ऐसी ही खरी उतरेगी।'

—डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

× × ×

'भारतीय सभ्यता यूनानी सभ्यता से कहीं अधिक उच्चाकांक्षी, अधिक सूक्ष्म, बहुमुखी, अनुसंधान प्रिय और गंभीर, रोमन सभ्यता की अपेक्षा कहीं अधिक उच्च और कोमल, पुरानी मिस्री सभ्यता से अधिक उदार और आध्यात्मिक, अन्य किसी भी एशियाई सभ्यता से कहीं अधिक विशाल और मौलिक, अठारहवीं सदी से पहले के यूरोप की सभ्यता से कहीं अधिक बौद्धिक, इन सब सभ्यताओं में जो कुछ था, उस सबकी तथा उससे भी अधिक की स्वामिनी यह भारतीय सभ्यता सभी अतीत मानव संस्कृतियों से अधिक शक्तिशाली, आत्मस्थित, प्रेरणादात्री तथा महाप्रतापशाली रही है।'

—ऋषि अरविन्द

गणपति गणेश की भू-परिक्रमा

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपनी प्रख्यात रचना 'विनय पत्रिका' के प्रथमपद में ही गाया है—

गाइए गणपति जगवन्दन, शंकर सुवन भवानी नन्दन।

इसका व्यापक अर्थ होगा—'हम उन जग वन्दित गणेश की वंदना करते हैं जो शंकर (कल्याण) का पुत्र तथा भवानी (धरती-माता, प्रकृति माता) का आनन्द बढ़ाने वाला है। गणपति को भारत वन्दन न कह कर तुलसीदासजी ने जगवंदन कहा है सो क्यों? खोज करने पर मुझे असंदिग्ध रूप से ज्ञात हुआ कि गणपति (गणेश) न केवल भारत वरन् विश्व भर के आराध्य देवता हैं।

पुराण गाथाओं के अनुसार कहा जाता है कि एक बार सभी देवताओं में धरती की परिक्रमा करने की प्रतियोगिता तय हुई। यह निश्चित हुआ कि जो सर्वप्रथम धरती की परिक्रमा कर ले। उसे सर्व प्रथम पूजा का पात्र माना जाए। कहा जाता है कि गणेशजी ने ॐ लिख कर जल्दी से अपने मूषक वाहन पर बैठकर उस ओंकार रूपी ब्रह्म की प्रदक्षिणा कर ली तथा यही धरती भर की परिक्रमा हो गई। और, विस्मय की बात यही है कि आज हम विश्व के अधिकांश देशों में गणपति पूजन के सुस्पष्ट चिह्न एवं प्रमाण पाते हैं।

गणेश पूजा का मूल स्रोत क्या है? इस विषय में पर्याप्त विवाद है किन्तु डा. सम्पूर्णानन्द के शब्दों में 'पृथ्वी भर में किसी दूसरे उपास्य के जीवन की गणेश चरित के साथ तुलना नहीं हो सकती। आज बुद्ध, ईसा और मुहम्मद के अनुयायी देश-विदेश में करोड़ों हैं परन्तु इन लोगों के स्वरूप और पद में कोई परिवर्तन, कोई वृद्धि नहीं हुई। विघ्नहर्ता का, ग्राम्य उपास्यदेव से उठकर सर्वदेव में अग्रगण्य बनना, फिर परमात्मा और ब्रह्मदृष्टि से मान्यता लाभ करना, विदेशों में पहुँच कर वैरोचन और अवलोकितेश्वर बोधिसत्वों से तादात्म्य प्राप्त करके योग के अनिर्वचनीय रहस्यों का प्रतीक बनना, गणेशजी की ही महिमा है। उनके अप्रतिम व्यक्तित्व के सामने सिर झुकाना ही पड़ता है।'

सम्भवतः गणपति किसी गणराज्य के राष्ट्रपति हुए हों। उनके नाम गणेश,

विनायक इत्यादि नेता अथवा सेनापति पद के द्योतक हैं। चाहे वे राजनीतिक विश्वविजय के लिए भारत से बाहर न निकले हों पर वे हमारी सांस्कृतिक दिग्विजय के अप्रतिम नेता अवश्य बन गए हैं। डा. सम्पूर्णानन्द पुनः कहते हैं, 'गणेशजी आर्यों की देव पार्षद में चाहे जहाँ से आ मिले हों, पर अब तो वह सर्वथा हमारे ही हो गए हैं। उनके अनार्य मूल के ऊपर आर्य संस्कारों का इतना गम्भीर वेष्टन पड़ गया है और पिछले दो सहस्र वर्षों में आर्य संस्कृति के विकास में उन्होंने ऐसा भाग लिया है कि अब उनको पराया नहीं माना जा सकता। उनके स्वभाव की परिशुद्धि हमारे विद्वानों की बुद्धिमत्ता का चमत्कारिक उदाहरण है। उनकी दिग्विजय यात्रा भारतीय संस्कृति की विजययात्रा थी। हमको उन पर गर्व है।

ब्रह्मदेश (म्यांमार)

जब अपने छोटे से वाहन मूषक पर बैठकर गणपति (गणेशजी) ने अपनी भू-परिक्रमा प्रारम्भ की तो पहले-पहल वे ब्रह्मदेश (बर्मा) पहुँचे होंगे। बर्मा में आज भी गणेशजी की अनेक मूर्तियाँ मिलती हैं। उत्तरी ब्रह्मदेश में, बाद में जब महायान बौद्ध सम्प्रदाय का प्रचार बढ़ा तो गणेशजी की मूर्तियाँ बहुत बढ़ गईं तथा उनका 'महापियेन' नाम से पूजन होने लगा। सम्भवतः 'पियेन' शब्द विनायक का ही विकृत रूप है।

कम्बुज

उसके पश्चात् गणेशजी कम्बोडिया (कम्बुज) पहुँचे होंगे। यह देश आज भी अपनी मूर्तिराशि के लिए प्रख्यात है। आज कम्बोडिया हिन्द-चीन का भाग है। उसकी प्राचीन राजधानी 'अंकुरवट' को तो प्रतिमाओं की खान कहा जा सकता है। वहाँ अनेक हिन्दू रीति-रिवाजों के साथ गणेशजी की प्रतिमाएं भी हैं। फ्रेंच आधिपत्य के कारण गणेशजी का नाम गणेश से बदल कर केनेस हो गया है।

श्याम

प्राचीन श्यामदेश आज थाईलैण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इस देश में भी मूषक-वाहन गणपति (गणेश) के दर्शन होते हैं। हीरे-मोतियों से जड़ी हुई मूर्तियाँ श्याम की मूर्तिकला का बेजोड़ नमूना है। इस मूर्तिशैली को श्याम की प्राचीन राजधानी अयोध्या (अयूथिया) के नाम पर अयूथियन शैली कहते हैं। यहाँ विघ्न विनायक के रूप में गणपति की प्रतिष्ठा है। 17वीं शती तक वहाँ के राजाओं के गले में सोने के गणेश की छोटी मूर्ति कण्ठी के रूप में लटकती रहती थी।

नेपाल

'नयपाल' देश तो पूर्णतः हिंदू प्रदेश है, किन्तु वहाँ के बौद्ध तथा जैन साधु भी विनायक और हेरम्ब नामों से गणपति की पूजा करते हैं।

चम्पा

चम्पा (वर्तमान अनाम) के मन्दिरों में भी शिव-परिवार के साथ गणेशजी की सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। गजमस्तक, यज्ञोपवीत धारण किये हुए गणपति प्रतिष्ठित हैं। कुछ मूर्तियों में शिव के समान गणेश के भी तीसरा नेत्र तथा गले में सर्पमाला है।

जकार्ता

इन्डोनेशिया (भारत द्वीप समूह) की राजधानी जकार्ता के मुख्य रेलवे स्टेशन से उतरते ही सामने एक सुन्दर बगीचे के केन्द्र में काफी ऊँचाई पर गणपति (गणेश) की सोने की वृद्ध मूर्ति प्रस्थापित है। मानो गणेशजी वहाँ बैठ कर आने-जाने वाले समस्त यात्रियों को शुभ एवं मंगलमय आशिष् दे रहे हैं।

जावा

यव द्वीप (जावा) में भारतीय सांस्कृतिक अभियान के विशेष नायक, श्री विनायक गणेश भी पहुँचे। जावा के मन्दिरों की मूर्तियों में गणेशजी इस प्रकार पालथी मार कर बैठे हैं कि दोनों पांव समान रूप से धरती पर पड़ते हैं और तलवे मिलते हैं। उनकी सूंड नीचे जाकर केवल सिरे पर मिष्टान्न पात्र की ओर थोड़ी सी मुड़ी है। मूर्तियाँ अधिकांश चतुर्भुजी है। डा. सम्पूर्णानन्द के अनुसार जावा की नदियों के घाटों और दूसरे स्थानों पर गणेशजी की मूर्तियाँ मिलती हैं। जावा की एक मूर्ति जो अब हालैंड उठ गई है बड़ी विलक्षण है। इसमें योनि के बीच में शिवलिंग के स्थान पर गणेशजी बने हुए हैं। जावा की एक और मूर्ति की बहुत प्रशंसा है। कहा जाता है कि वैसी सुन्दर मूर्ति भारत में भी नहीं है। इसमें दो आंखें और चार हाथ हैं। एक हाथ में टूटा दांत दूसरे में भोजनपात्र। तीसरे में परशु और चौथे में माला है। सूंड सीधे लटकती है, फिर भोजनपात्र के बायीं ओर घूम गई है।

तिब्बत

तिब्बत (त्रिविष्टय) के प्रायः प्रत्येक मठ में अधिरक्षक के रूप में गणेश पूजा प्रचलित थी। चीनी आक्रमण के पश्चात् न जाने पूजा के प्रचलन का क्या रूप हो गया है। गणपति की देवयुगल मूर्ति (अपनी शक्ति के साथ) तिब्बत तथा जापान में मिली है। तिब्बत में इन्हें यवयुम कहते हैं तथा जापान में कांगितेन।

चीन

चीन से होती हुई भारतीय संस्कृति मंगोलिया, मंचूरिया, तुर्किस्तान तथा दक्षिणी साइबेरिया तक पहुँची। साइबेरिया के अर्ध जंगली जादूगर (पुरोहित) आज तक समन (श्रमण) कहलाते हैं।

चीन की तुनहुआंग की गुफा पर सूर्य, चन्द्र, कामदेव तथा गणेश की सुन्दर मूर्तियाँ भारत की अजन्ता शैली पर बनी हुई है। विचित्रता यह है कि गणेशजी को वहाँ सिर पर पगड़ी तथा नीचे सलवार पहना रखी है। कुंगहिसएन के गुफा मंदिर में विनायक की मूर्ति सं. 588 की बनी हुई है तथा चीनी अक्षरों में लिखा है, 'हाथियों के अमानुष राजा की मूर्ति।' क्योंकि भगवान् बुद्ध के जन्म से पूर्व उनकी माता को हाथी का स्वप्न आया था इसलिए चीन में हाथी भगवान् बुद्ध का प्रतीक माना जाता है। इसी कारण वहाँ हस्तिमुख गणपति तथा भगवान् बुद्ध का समन्वय कर दिया गया।

तान्त्रिकों के वज्र धातु सम्प्रदाय में गणेश की मूर्ति इस प्रकार बनी है : चार विनायक चारों दिशाओं में रक्षक के रूप में हैं और पांचवें उत्तर वाले विनायक के नीचे हैं। वहाँ विनायक के एक हाथ में हस्तिदन्त के स्थान पर मूली है। सं. 1074 में सम्राट् चेनासुंग ने आदेश निकाला कि बौद्ध त्रिपिटक के साथ विनायक पूजा का चतुर्ग्रन्थीय सूत्र न जोड़ा जाय। इस प्रकार राजशक्ति के प्रभाव से चीन में विनायक सम्प्रदाय का लोप कर दिया गया।

अमरीका

भिक्षु चमनलाल ने अपनी महान् कृति 'हिन्दू अमरीका' में दर्शाया है कि कोलम्बस के अमरीका खोजने से 1000 वर्ष पूर्व अमरीका (मैक्सिको, बोलिविया) में हिन्दू साम्राज्य था। मैक्सिको के कोपन मन्दिर में आज भी गणपति (गणेश) भगवान् के भव्य दर्शन होते हैं।

मलय, बाली, बोर्नियों, जापान, तुर्किस्तान, मिस्र, रोम आदि देशों में भी गणपति की पूजा अपने-अपने ढंग से होती है।

इस प्रकार सारे संसार की विजय यात्रा करने वाले, भारतीय संस्कृति की विश्वविजय के प्रतीक गणपति (गणेश) की स्तुति में हम वेद की शाश्वत वाणी में ही गाते हैं—

गणानांत्वा गणपतिं हवामहे,
प्रियाणांत्वा प्रियपतिं हवामहे।
निधिनांत्वा निधिपतिं हवामहे वसोमम्,
आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम्।।

रामायण का विश्व को अवदान

भगवान् रामचन्द्र का जन्म भारत के ही नहीं वरन् विश्व के सांस्कृतिक इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। राम हमारे देवविग्रह ही नहीं, अवतार विग्रह कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परात्पर ही नहीं, हमारे राष्ट्रीय महापुरुष भी है जो पारिवारिक समरसता, राष्ट्रीय एकात्मता एवं अन्तरराष्ट्रीय मैत्री व सौहार्द के आधार भी है। इसलिए राममनोहर लोहिया स्वयं नास्तिक होते हुए भी राम, कृष्ण, शिव की चर्चा करते हैं। उन्होंने ही अन्तरराष्ट्रीय रामायण मेले की योजना प्रस्तुत की और उसको प्रारम्भ करवाया।

प्रायः इतिहासकार विस्मय करते हैं कि वैदिक काल की इन्द्र पूजा का स्थान विष्णु पूजा ने कैसे ले लिया? इसका उत्तर है कि भगवान् विष्णु के राम-कृष्णादि रूपों ने सौ-सौ इन्द्रों से भी ऊंचा आदर्श स्थापित किया। वेद का आदेश है—आचारः प्रथमो धर्मः। आचार नीति के क्षेत्र में मातृमोदवर्धक पितृनिर्देश पालक, सुहृदय, दुःखविमोचक एक पत्नीव्रतधारी प्रजापालक, दशरथ यशवर्धक, सर्वगुणागार भगवान् राम के चरित्र के सम्मुख स्वर्ग में अप्सराओं के नृत्य में आनन्द मानने वाले इन्द्र देवता का क्या मूल्य रहता है? इसलिए राम के प्रताप से भारत स्वर्ग से भी ऊंचा बन गया।

इसलिए वाल्मीकिजी जब नारदजी से पूछते हैं किसे आदर्श के रूप में स्वीकारे—किसके चरणों में अपना जीवन समर्पित करे तब नारदजी रामचरित्र का गान करते है क्योंकि भारतीय परम्परा में जो कुछ भी उदात्त और अनुकरणीय है, श्रीराम उसके मूर्त रूप है। सभी मानवीय गुण हमें श्रीराम के चरित्र में देखने को मिलते हैं। श्रीराम हिन्दू हृदय सम्राट् भारत की आत्मा एवं भारतीय संस्कृति का सार है। वह भारतीय समाज के उच्चतम आदर्श है। वह हर हिन्दू हृदय में एक अमर तत्त्व के रूप में अधिष्ठित है जिसमें ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक और धार्मिक सभी रूप समाहित है। वह आदर्श पुत्र है, भाई है, आदर्श राजा है। वह सर्वगुण सम्पन्न महापुरुष है, अतः भगवान् के अवतार हैं। यही कारण है कि लाखों वर्ष व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी श्रीराम भारतीय जनजीवन में इस प्रकार रचे बसे है मानो आज भी हमारे बीच में सशरीर विराजमान है।

रामायण भारत की आत्मा का महाकाव्य है। यह शब्द नोबेल पुरस्कार विजेता रवीन्द्रनाथ टैगोर के हैं। भारत में रामायण और रामायण में भारत प्रतिष्ठित है। वास्तव में रामायण और महाभारत दो महान् ग्रंथ है जिन्होंने पूरे विश्व की कला, इतिहास, संस्कृति और सभ्यता पर वहां मनीषियों एवं जन-जीवन पर बहुत प्रभाव डाला है।

कविवर रहीम—कविवर रहीम अकबर के सेनापति तथा उसकी राज्यसभा के नवरत्न मण्डल के उज्ज्वल रत्न थे। वे रामचरित मानस पर अर्ध्य चढ़ाते हुए कहते हैं—

रामचरितमानस विमल, सन्तन जीवन प्राण।
हिन्दुवान को वेद सम, यवनन प्रगट कुरान।।

रामचरित मानस के विषय में कहते है हिन्दुओं के लिए वेद समान और मुसलमानों के लिए कुरान के समान है। जब कविवर रहीम को विपतियों की मार पड़ी तो चित्रकूट पहुंचते हैं और भगवान् राम पर अर्ध्य चढ़ाते हुए कहते हैं—

चित्रकूट में रमि रहे, रहीमन अवध नरेश।
जापर विपदा परत है, सो आवत यहि देश।।

रहीम स्वयं मुगल सेनापति होते हुए भी मन व हृदय से प्रताप की विजय चाहते थे। प्रताप को नैतिक एवं आध्यात्मिक बल देने के लिए उन्हें कहलवाया—

धर्म रहसि रहसि धरा, खिस जासी खुरसाण,
अमर विश्वम्भर ऊपरे, रखियो निहचो राण।।

हे राणा प्रताप! धर्म रहेगा तो धरा भी रहेगी, यह खुरसाण (मुगल) को नष्ट हो जाने वाला है। इसलिए अमर विश्वम्भर भगवान् महादेव पर अपना दृढ़-निश्चय रखकर संघर्ष करते जाओ।

सरमद् शहीद व दाराशिकोह

औरंगजेब के समय एक फकीर था। उसका नाम सरमद शहीद था। वह आया था फिलिस्तीन से (पैलेस्टाइन से)। उन्होंने औरंगजेब के बड़े भाई दाराशिकोह को अपना शिष्य बनाया। उसको रामायण, उपनिषद और गीता पढ़ायी। औरंगजेब ने दाराशिकोह को हाथी के पैर के नीचे कुचलवा दिया और सरमद् का दिल्ली के लालकिले पर फांसी चढ़वा दिया। फांसी पर चढ़ते हुए सरमद् ने एक रूबाई गायी। जो बड़ी मार्मिक है इसका भावार्थ यह है—सरमद् इश्क की गली में बदनाम हुआ। यहूदी के दीन से तू इस्लाम में आ गया और फिर मालूम नहीं क्या हुआ तूने अल्लाह को भी छोड़ दिया। असली सत्य की खोज के लिए अंत में लक्ष्मण और

राम की शरण में आ गया। राम और लक्ष्मण की जय बोलकर उसने प्राण छोड़े। दिल्ली की जामा मस्जिद की सीढ़ियों के पास उसक समाधि बनी हुई है।

जिन्ना और रामायण

1917 में जिन्ना ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों की सम्बोधित करते हुए कहा था—रामायण और महाभारत इस देश के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं। इनके समझे बिना आप भारत से एकात्म नहीं हो सकते।

प्रसिद्ध क्रान्तिकारी रामप्रसाद बिस्मिल की दूसरे क्रान्तिकारी अश्फाक उल्ला से बड़ी दोस्ती थी वे उसे अपना छोटा भाई मानते, उसने अपने घर ले जाते और उसे लक्ष्मण कहकर पुकारते। सब की नजर में वह राम-लखन की जोड़ी बड़ी प्यारी थी। वे घर पर साथ खाना खाते, साथ खेलते, साथ देशभक्ति के तराने गाते और अंत में दोनों साथ-साथ फांसी पर चढ़ गए। एक बार अश्फाक उल्ला के पेट में भीषण दर्द हुआ, वे बेहोश हो गए, वे राम-राम चिल्लाने लगे। लोगों ने कहा—'अल्लाह-अल्लाह बोलो।' किन्तु वे राम-राम चिल्लाने लगे। जब रामप्रसाद बिस्मिल पहुंचे तो वे उठकर उनके गले लिपट गए और कहा—'अब मेरा राम आ गया है। इस दृश्य को देखकर लोगों को रामायण में वर्णित लक्ष्मण की बेहोशी के बाद राम से मिलने की बात याद हो आई। यह हमारी संस्कृति हमारी नस-नस में है। इसने सबके दिलों को जोड़ा है। अश्फाक और बिस्मिल के दिलों को एक बना दिया है, पूरे देश को एक बना दिया है।

डॉ. ग्रियर्सन—1857 की क्रान्ति के बाद कलकता में पोर्ट विलियम् कालेज खोला गया। डॉ. ग्रियर्सन को पोर्ट विलियम् कालेज का प्रिंसिपल बना कर भेजा गया। वे रामायण पढ़कर बड़ा कृत-कृत्यता का, कृतज्ञता का अनुभव किया। वे कहते हैं अरे इंग्लैण्ड! तुम्हारे पास सबसे ऊंचा नैतिक आदर्श बाइबिल और सबसे ऊंचा साहित्यकार शेक्सपियर है। अरे इंग्लैण्ड! यदि एक पलड़े में बाइबिल और शेक्सपियर दोनों की एक साथ रखो और दूसरे पलड़े में भारत की सिर्फ तुलसीकृत रामायण रखो तो तुलसी रामायण का पलड़ा भारी होगा। तुम्हारी बाइबिल और शेक्सपियर रामायण के सामने तुच्छ है।

ब्रिटिश पादरी ए.जी. एटकिन्स

ए.जी. एटकिन्स की इंग्लैण्ड से बिहार और उत्तरप्रदेश भेजा गया हिन्दुओं को ईसाई बनाने के लिए। उसने देखा 'तुलसी रामायण' उत्तर भारत की बाइबिल है। तो उसने सोचा पहले रामायण का अच्छे से अध्ययन कर, इसकी आलोचना करूंगा, फिर बाइबिल लोगों को दूंगा। वह स्वयं अच्छा साहित्यकार कवि भी था। उसने सोचा अध्ययन के साथ-साथ अंग्रेजी में पद्यानुवाद भी करना शुरू किया,

उसे आनन्द आना शुरू हुआ और पूरी होते-होते रामायण के रंग में रंग गया। उसने बाइबिल सोसायटी को लिखा कि तुम्हारा बाइबिल तुम अपने पास रखो। मैं तो तुलसीदास का हो गया हूं। इतने श्रेष्ठ ग्रंथ को छोड़कर बाइबिल जैसे घटिया ग्रंथ को पढ़ाना, यह मानवता का अपमान होगा।

साहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शॉ—वह कहता है अरे इंग्लैण्ड! तुम्हारे पास सबसे बड़ा महाकाव्य है मिल्टन का Paradise lost उसमें शैतान को धक्का मारकर निकाल दिया स्वर्ग से। शैतान कहता है ए गॉड! मैं तुम्हारा पहले नम्बर का शत्रु हूं। गॉड, तुमने प्रचारक रखे हुए हैं। पादरी रखे हुए हैं जो दिन-रात तेरा प्रचार करते रहते हैं। मेरा कौन प्रचार करता है? शैतान का कोई प्रचार करता है? कोई प्रचार नहीं करता। तुमने ग्रंथ बना रखे है प्रचार के लिए। शैतान का कोई ग्रंथ है? तुमने गिरजाघर बना रखे है, हमने कुछ नहीं बना रखा है, तुम्हारे पादरी दिन-रात धर्म का प्रचार करते रहते हैं फिर भी देख लो चर्च में ज्यादा लोग जाते है या वेश्यालयों में। ज्यादा लोग मेरी तरफ ही आते है। देख लो खुदा मैं तुमको एक घूंसा मारकर गिरा दूंगा। मैं पहले नम्बर का शत्रु हूं। मिल्टन कृत Paradise lost में यही भाव है, यही तथ्य है।

बर्नार्ड शॉ लिखता है—तुलसी रामायण में मिल्टन का महाकाव्य Paradise lost वैसा ही है जैसे उत्तम वारी (शराब) की तुलना में किसी गंदी नाली का पानी। तुलसी रामायण उत्तम वारी है। तुलसी रामायण की तुलना अच्छी शराब से दी है। क्योंकि पश्चिम के लोग शराब को अच्छा समझते है। भारत का होता तो कहता उत्तम अमृत की तुलना में गंदी नाली का पानी।

एफ.एस. ग्राउस (फ्रैड्रिक सालोमन)

आई.सी.एस. परीक्षा पास कर जो अंग्रेज भारत में उच्च पदों पर आए उनमें एफ.एस. ग्राउस (फ्रैड्रिक सालोमन) जो वर्तमान उत्तरप्रदेश के मथुरा तथा बुलन्दशहर जैसे जिलों में कलक्टर के पद पर रहे, उन्होंने अंग्रेजी में 'रामचरितमानस' का प्रामाणिक गद्यानुवाद किया। ग्राउस के बारे में यहां तक प्रसिद्ध है कि वे अपने वार्तालाप में यथाप्रसंग मानस की चौपाइयों को उद्धृत करते रहते थे। एक ऐसा ही रोचक प्रसंग तब आया जब वे मथुरा के जिला मजिस्ट्रेट थे और उनके सामने वैरागी साधु को किसी अपराध के कारण पेश किया गया। जब ग्राउस ने उसे अपनी सफाई देने के लिए कहा तो उसने इतना ही कहा कि वह अपने पक्ष में कुछ खास कहना नहीं चाहता। उसने तो सब कुछ भगवान् पर छोड़ दिया है और वह मानस की यह चौपाई कह बैठा—

होइहि सोइ जो राम रचि राखा।
को करि तर्क बढ़ावै साखा।।

ग्राउस साहब अपराधी के मनोभाव को समझ गए और मानस की भाषा में ही उसे उत्तर दिया—

कर्म प्रधान बिस्व करि राखा।
जो जस करहिं सो तस फल चाखा।।

अब वैरागी को मौन साधना पड़ा।

आर.टी.एच. ग्रिफिथ

ग्रिफिथ ने तो चारों वेदों का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया था तथा वाल्मीकीय रामायण का भी अंग्रेजी में उल्था किया था। ग्रिफिथ का रामचरितमानस पर भी असाधारण अधिकार था और इस महाकाव्य के अनेक मार्मिक प्रसंग उन्हें कण्ठस्थ थे। एक प्रसंग ऐसा उपस्थित हुआ जब कॉलेज के एक उद्दण्ड छात्र को उनके सामने लाया गया तो छात्र ने ग्रिफिथ साहब के मानस प्रेम का फायदा उठाने के भाव से निम्न चौपाई कही—

जो लरिका कछु अनुचित करहीं।
गुरु पितु मातु मोद जिय भरहीं।।

यदि बच्चे कुछ अनुचित भी करते हैं तो माता-पिता व गुरु उसका बुरा नहीं मानते। ग्रिफिथ साहब लड़के का आशय समझ गए और उसकी अनुशासनहीनता को क्षमा के योग्य न मानते हुए उसी शैली में उत्तर दिया—

जौं न देउँ सठ दण्ड कठोरा।
वृथा होहि श्रुति मारग मोरा।।

यदि मैं तुझे दण्ड नहीं दूं तो यह उचित नहीं होगा।

रामभक्त अंग्रेज न्यायाधीश पी. डब्ल्यू मार्श

सन् 1930 में मेरठ में एक अंग्रेज कमिश्नर श्री पी. डब्ल्यू मार्श थे। अंग्रेज होते हुए भी वे श्रीराम के भक्त थे। वे निष्पक्ष न्याय के लिए भी प्रसिद्ध थे।

एक दिन उनकी अदालत में एक पटवारी के विरुद्ध मुकदमा आया कि उसने रिश्वत लेकर किसी की जमीन दूसरे के नाम चढ़ा दी है। पटवारी अत्यंत चालाक था तथा यह जानता था कि मार्श साहब भगवान् राम के भक्त हैं एवं रामायण के अच्छे जानकार हैं। अतः अपने को रामभक्त साबित करने के लिए सुनवाई के समय अदालत में रामायण की निम्न चौपाई सुनाई—

दीन दयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी।।

मार्श साहब पूरी पड़ताल के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंच चुके थे कि पटवारी ने जान-बूझकर अपराध किया है। पटवारी की चौपाई का उत्तर चौपाई से ही देते हुए बोले—

जौ नहिं दंड करौं खल तोरा।
भ्रष्ट होई श्रुति मारग मोरा।।

पटवारी उनके हृदय की बात समझ गया तथा दंड से नहीं बच पाया।

होमर के मानस पर भारतीय महाकाव्यों का प्रभाव

यूनान के सबसे महान् महाकाव्य लिखे इलियड और ओडिसी। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इलियड की कथा रामायण से उधार ली गयी है या प्रभावित या पूरी तरह प्रेरित है क्योंकि इलियड की कथा से कई शताब्दियों पूर्व रामायण की कथा प्रचलित थी।

रूस का भारी विद्वान वरान्निकोव

उसने अपने जीवन के 25-30 वर्ष लगाकर पहले वाल्मीकि रामायण का फिर तुलसी रामायण का रूसी भाषा में अनुवाद किया। अनुवाद चल रहा था द्वितीय महायुद्ध शुरू हो गया। जर्मनी ने लेनिन ग्राड पर हमला कर दिया। इस अनुवाद कार्य की महत्ता समझते हुए स्टालिन ने एक सेना की टुकड़ी को आदेश देकर उसकी सारी लाइब्रेरी अजरेबजान (या अरबजान) रूस की सीमा पर जहां ईरान से सीमा लगता है काकेशिखर पर्वत के पास वह शांतिपूर्ण स्थान है वहां भिजवा दी। तब उसने वहां अपना अनुवाद कार्य पूरा किया।

क्या यह उल्लेखनीय नहीं है कि जब रूस महायुद्ध में फंसा था, उस कठिन वेला में भी रूसी कम्युनिस्ट पार्टी तथा वहां के शासन ने अपने देश के ऐसे सांस्कृतिक कार्य को पूरा होने में सहयोग दिया जिसका मूलाधार एकमात्र गोस्वामी तुलसीदास का लिखा ग्रंथ रामचरितमानस था। दूसरा देश होता तो कह सकता था कि यहां तो लड़ाई आंगन में आ गई और आपको रामायण की पड़ी है। यही नहीं सरकार ने रामायण पं. वरनिकोव को 'लेनिन पदक' प्रदान कर के सम्मानित किया। लेनिनि पदक कम्युनिस्ट पार्टी शासन वाले देश का सर्वोच्च गरिमा मण्डित सम्मान या पुरस्कार माना जाता है। ये कोई मार्क्सवाद के न कार्यकर्ता थे न मार्क्सवाद के पंडिता वरन् वे तो एक साधक थे रामायण और भाषा विज्ञान के।

कम्युनिस्ट देश में रहकर तुलसी के प्रति कितना सम्मान एवं समर्पण प्रस्तुत किया है। केवल इतना ही नहीं अब वहां एक रिवाज चल पड़ा है। वे लोग अपने मन को ठीक करने के लिए मास्को में रामायण का मंचन करते हैं। वे रामायण पर लीलाएं

करते हैं। क्योंकि उनके यहां भयंकर भोगवादी लीला है। उससे वे तंग आ चुके हैं। उसके कारण वे अपने जीवन को शांत करने के लिए रामायण की शरण में आते हैं।

राम सीता उत्सव अमेरीका में वहां के आदिवासी (रेड इंडियन्स) अभी तक खेलते हैं।

प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासकार मिचलेट ने वाल्मीकि रामायण के मूल्यांकन में लिखा है, 'जिस किसी ने भी महान् कार्य किया है या महान् आकांक्षाएं संजोयी हैं, उसे रामायणरूपी अमृत की प्याली से जीवन और यौवन का एक लम्बा घूंट पीने दो। पश्चिम में सभी कुछ संकीर्ण है, यूनान छोटा और तंग है तथा वहाँ मेरा दम घुटता है। जुडिया शुष्क है तथा मैं वहाँ हांफ जाता हूँ। मुझे महान् एशिया और गहन प्राची की ओर देखने दो। वहाँ मिलता है मेरे मन का महाकाव्य रामायण—हिन्द महासागर जैसा विस्तृत, सूर्य से ज्योतित एवं धन्य एक दिव्य संगीत का ग्रन्थ, जिसमें कहीं लय भंग नहीं। वहाँ एक अपार शान्ति का राज्य है, कर्तव्यों के संघर्ष के बीच भी अपार माधुर्य है, अनन्त सौहार्द्र है जो सब जीवों पर प्रेम, दया, क्षमा का अपार और अथाह सागर लहरा देता है।'

H.G. Wells और रामायण

संसार के वाङ्मय में नैतिक जीवनमूल्यों को जीवन की प्रत्यक्ष परिस्थितियों में उतार कर इतनी सुन्दर रीति से कहीं अन्यत्र प्रस्तुत नहीं किया गया जितना कि रामायण के कथानक में। नैतिकता कर्तव्य की आन्तरिक पुकार है। जब H.G. Wells ने महात्मा गांधी को Charter of Human Rights (मानवाधिकारों का घोषणापत्र) के लिए प्रारूप भेजने को कहा तो उन्होंने लिखा कि मानव अधिकारों का घोषणापत्र बनाने से पूर्व संयुक्त राष्ट्रसंघ को मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र (Charter of Human Duties) बनाना चाहिए। जब वेल्ज ने मानव कर्तव्यों का घोषणापत्र भेजने को कहा तो गांधीजी ने उन्हें रामचरितमानस की एक प्रति भेज दी तथा लिखा कि 'रामायण हम भारतीयों के कर्तव्यों का घोषणापत्र है।'

मारीशस, फिजी, सूरीनाम, गिआना

भारत से साढ़े चार हजार मील दूर मारीशस, सात हजार मील पूर्व का फिजी और बारह हजार मील दूर पश्चिम का सूरीनाम और गिआना में अंग्रेज आरा, बलिया छपरा से गिरमिटिया (बंधुआ) मजदूर लेकर गए कृषि के लिए पानी के जहाजों में भर कर। वहां इनकी बड़ी दुर्दशा हुई। कोड़े मारकर काम लिया जाता था। धर्मान्तरण के भी बहुत प्रलोभन थे। कुछ को मारीशस में उतार दिया। कुछ लोगों को सूरीनाम, कुछ लोगों को गिआना और कुछ को फिजी में उतारा। भाई से भाई, पति से पत्नी, पिता से पुत्र बिछुड़ गया, परिवार उजड़ गए। लोग बहुत

दुःखी हुए, रास्ते में जंगली और समुद्र के जंतुओं ने आक्रमण किए, वहां पहुंचने पर जंगली पशुओं ने आक्रमण किए, वहां के आदिवासी थे जो सिर को काट खा जाने वाले, इन सबके साथ संघर्ष हुआ। कई इसमें मारे गए। फिर कोड़े मार-मार कर काम लिया जाता था। इस तरह बहुत कष्ट में पड़े, बहुत दुःखी हुए। अपने मन को शांत करने के लिए रात को तुलसी रामायण लेकर बैठते थे जो अपने साथ ले गये थे। उससे मन शांत होता था आंसु बहा-बहा करके अयोध्या कांड ऐसा है। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—मैंने बचपन में पहली बार रामचरितमानस पढ़ा तब से अब तक (मैं राष्ट्रपति बन गया) मेरे लिए एक बार भी तुलसी रामायण के अयोध्या कांड को आंख के आंसुओं की श्रद्धांजलि चढ़ाये बिना, पढ़ना सम्भव नहीं हुआ है। जब-जब अयोध्या कांड पढ़ा है आंखें छल-छल करके बहती है। रामायण तो करुणा का काव्य है। आंखों के मैल को आंसुओं में बरसा देता है। उससे हृदय निर्मल हो जाता है। दुःख हलका हो जाता है। तुलसी रामायण की कृपा से वे पढ़ने-लिखने लगे। धीरे-धीरे हिन्दी का प्रचार हुआ। धीरे-धीरे बहुसंख्यक हो गए। धीरे-धीरे हिन्दी राजभाषा बन गयी, हिन्दू प्रधानमंत्री बन गया। तुलसी रामायण की कृपा से कोई धर्मान्तरण नहीं हुए और आज वे सम्मानपूर्ण पदों तक पहुंच गए तुलसी रामायण की कृपा से।

जनकपुर धाम नेपाल में है। जब भगवान राम वहां गए। जानकी से विवाह हुआ।

भारत के पूर्व में ब्रह्म देश है वह सन् 1936 तक भारत का ही अंग था। यह बहुत रोचक तथ्य है कि वर्तमान राजधानी रंगून का नाम ही रामावती अर्थात् राम की नगरी था। रामावती से रम्मनवती, रंगनवती इत्यादि नाम परिवर्तित होते-होते रंगून हो गया है।

थाईलैण्ड तो पूरा राममय है।

इंडोनेशिया के मुसलमान राम को अपना राष्ट्रीय महापुरुष (National Hero) मानते हैं। वे बड़ी श्रद्धा के साथ रामलीला खेलते हैं। इस पर पाकिस्तान के राजदूत ने कहा कि कुरान में रामलीला का आदेश कहां है? इस पर इंडोनेशिया के राजदूत ने कहा—We have not changed our history. We cannot change our blood. Ramayan & Mahabhart are in my blood.

अगला देश कम्बुज है जिसे कंबोडिया कहते हैं। जिसे कुम्भ ऋषि ने बसाया है। उससे अगला देश लाओश (लवदेश) नाम श्रीराम के पुत्र पर पड़ा है। वियतनाम-भारत के ऋषि कौडिल्य भारतीय संस्कृति की ज्योति वियतनाम ले गए थे। उन्होंने इस देश को चम्पा नाम दिया। सिंगापुर में अभी भी भारतीय उत्सवों

का प्रचलन है। चीन में चीनी भाषा में रामायण लिखा गया। प्रम्बनम में संसार का विशालतम सुन्दरतम रामायण मूर्तिशिल्प तीर्थ है। इंडोनेशिया ने सर्वप्रथम अन्तरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव आयोजित किया। कम्बुज, लवदेश, चंपा, चीन, जापान, तिब्बत, मंगोलिया, नेपाल सभी में रामायण प्रतिष्ठित है। ईरान, अरब, मध्यपूर्व अफ्रीका तक में रामायण के अनुवाद हुए हैं। यूरोप एवं अमेरीका के विद्वान रामायण पर मुग्ध है। सूरीनाम, मारीशस, फिजी, गियाना में रामायण ही वहां के भारतवंशियों का जीवन प्राण है। रामानन्द सागर कृत रामायण सिरियल दिखायी जा रही थी तो विश्व के विद्वान मंत्र मुग्ध थे कि ऐसे भी आदर्श चरित्र हो सकते हैं। जापान आदि कई देशों में उसका अपनी भाषा में अनुवाद कर प्रसारित किया था। हालैण्ड में स्थित महर्षि वैदिक विश्वविद्यालय के शोध से पता चला है विश्वभर में एक हजार नगर ऐसे हैं जिनका नाम राम से ही शुरू होता है। ये शहर संसार के कोने-कोने में है। इस प्रकार राम कथा संसार व्यापी है जिसने सारे विश्व का मन मोहा है। ऐसे ही नास्तिक डॉ. राममनोहर लोहिया के मन को मोहा है। वे भी राम-कृष्ण शिव की चर्चा करते हैं। ये तीनों ही राष्ट्रीय एक्य के साथ ही विश्व एक्य एवं मानव जाति के आदर्श पुरुष है, और भारतीय संस्कृति के आधार है इसलिए उन्होंने अन्तरराष्ट्रीय रामायण मले की योजना प्रस्तुत की और उसे क्रियान्वित करवाया।

पूर्व और पश्चिम, किसी भी दिशा के किसी भी देश में, किसी भी साहित्यकार को ऐसे नायक नहीं मिले हैं जैसे भारत के साहित्यकारों को राम और कृष्ण के रूप में मिले हैं।

× × ×

इसी प्रकार सीता के प्रति प्रेम और राधा तथा गोपियों के विशुद्ध एवं अनन्य प्रेम के सदृश, प्रेम का वर्णन भी मुझे तो अंग्रेजी द्वारा विदेशी साहित्य का निरंतर अध्ययन करते रहने पर भी किसी भी विदेशी साहित्य में पढ़ने को नहीं मिला।

—**सेठ गोविन्ददास**

कर्तव्य (पृष्ठ-ख)

भगवान् श्रीकृष्ण का विश्वव्यापी व्यक्तित्व

भगवान् श्रीकृष्ण से अधिक व्यापक एवं सर्वतोमुखी व्यक्तित्व विश्व के इतिहास में सम्भवतः कोई नहीं हुआ होगा। लोक और परलोक, आदर्श एवं यथार्थ, कर्म एवं ज्ञान, प्रवृत्ति एवं निवृत्ति, शक्ति और शील, लीला और मर्यादा, यज्ञ एवं युद्ध, वैभव एवं विरक्ति, राजनीति एवं ब्रह्मज्ञान—सभी में वे चरमोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित अलौकिक महाविभूति हैं।

यानी भगवान् श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व इतना अनन्तमुखी है कि यह कहना कठिन है कि वे क्या नहीं थे। योग-योगेश्वर, ज्ञानदाता, सिद्ध, साधक, मित्र, सारथि, रक्षक, राष्ट्रनिर्माता, आदर्श कर्मयोगी, आदर्श प्रेमी, आदर्श शासक, सफल राजनीतिज्ञ, शूर शिरोमणि, मानवता के गौरव, लोकनायक, लोक शिक्षक—वे सभी कुछ थे। पिछले 5000 वर्षों की गंभीर गवेषणा के पश्चात् भी अभी तक उनके बहुरंगी जीवन की अनेक-अनेक अज्ञात दिशायें खोजनी शेष हैं।

भगवान् कृष्ण का व्यक्तित्व इतना मोहक एवं हृदयस्पर्शी रहा है कि अनेक मुसलमान भक्त यथा रसखान, रहीम, बीबी चाँद, उस्मान, नजीर, मुर्तजा अली, ख्वाजा दिल मुहम्मद, रैहाना तैय्यब जी, अनेक सिक्ख गुरुओं एवं अनेक पश्चिमी ईसाई भक्तों एवं संतों ने भी उन्हें एवं उनकी गीता को अलौकिक काव्य पुष्पांजलियां चढ़ाकर पूजा है।

इंडोनेशिया का मुस्लिम नागरिक भी आज तक श्रीकृष्ण भगवान् की मनीषा एवं भीम, अर्जुन के बल-पौरुष की सौगंध खाता है। थाई देश, कम्बोडिया, लवदेश एवं मलाया आदि में असंख्य श्रीकृष्ण मंदिर विद्यमान हैं। नारा (जापान) में मुरली मनोहर श्रीकृष्ण की मूर्ति, आर्मेनिया के प्राचीन कृष्ण मंदिर, मंगोल भाषा में प्रचलित कृष्ण काव्य, अरब में हजरत मुहम्मद के चाचा श्री अबुल हिक्म द्वारा राम-कृष्ण की भूमि (भारत) की वंदना। ईरान, इराक, मिस्र, जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड, अमेरीका आदि में गीता भक्तों की अलौकिक परम्परा, अणु बम के आविष्कारक डॉ. राबर्ट ओपनहीमर की गीता भक्ति तथा आधुनिक काल में सारे पश्चिमी देशों में कृष्ण भावनामृत संघ (हरे कृष्ण आंदोलन) के माध्यम से सहस्त्रावधि विदेशियों की श्रीकृष्ण भक्ति एवं अमेरीका में न्यू वृंदावन एवं नवीनपुरी नगरी की स्थापना भगवान् कृष्ण के विश्वव्यापी व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं।

विश्व मानस पर गीता दर्शन का प्रभाव

श्रीमद्भगवद्गीता मानव इतिहास का वह अविनश्वर अध्यात्म संगीत है जो युगों से मानव को ब्यामोह एवं विकृति से बचाकर सत्यं एवं ऋतं के कल्याण पथ की ओर आकर्षित करता रहा है। दुर्योधन एवं दुःशासन विकृति के प्रतीक है तथा अर्जुन ब्यामोह के कारण उन विकृतजनों के सामने भी हथियार डाल रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण ने आपने गीता संदेश द्वारा सज्जनों का ब्यामोह दूर किया तथा विकृतजनों को उचित दण्ड देने का विधान किया। गीता का सशक्त संदेश है राग-द्वेष मुक्त, न्यायपरक, निष्काम, निःस्वार्थ कर्तव्य पालन जो आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

गीता में देशीय और कालीय तत्त्व न होने से और उसके वैचारिक जादू ने विश्व मनीषा को प्रारम्भ से आज तक आकृष्ट करता आ रहा है। ईसा के तीन हजार वर्ष पूर्व के मिश्र के प्राचीनतम पिरामिडों में शव (ममी) को सुरक्षित रखने के लिए भारतीय मलमल के कपड़े और भारतीय सागवान के लकड़ी का प्रयोग तो होता ही था। आत्मा की अमरता के लिए लिखित गीता में जो श्लोक है—

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥2/20

इसका इजिप्सियन भाषा में अनुवाद मिश्र के राजा के पिरामिड के ऊपर सागवान की लकड़ी पर लिखा हुआ पाया गया है। सिकन्दर के परम गुरु सुकरात से भारतीय संतों ने यूनान में जाकर जब शास्त्रार्थ किया और भारतीय गीतोक्त दर्शन का आत्मा की अमरता का दर्शन समझाया तो सुकरात उससे बहुत प्रभावित हुआ। यूनानी दार्शनिक लोग भारतीय दर्शन के प्रभाव के उपरान्त यूनानी दर्शन में आत्मा की अमरता का उल्लेख किए। उसके पहले यूनानी भाषा में आत्मा शब्द नहीं था। उसके बाद आत्मा के लिए औटो (Auto) शब्द बना। आत्मा को पाली भाषा में उतो कहते हैं। भारत ने यूनानी दर्शन को न केवल आत्मा का विचार दिया वरन् उसके लिए शब्द भी दिया। पाइथोगोरस का आत्मा की अमरता और पुनर्जन्म का सिद्धान्त भारत की ही देने है। प्लेटो का Republic ग्रंथ तो पूरी तौर

भारतीय विचारों से ओतप्रोत है और उसने अपने दर्शन में उपनिषदों के उद्धरण दिए हैं। और यह तो सुविदित ही है सिकन्दर के गुरु अरस्तू ने भारत से उपहार के रूप में गीता के साथ-साथ एक संत की मांग की। गीता का प्रभाव बाइबिल पर भी स्पष्ट परिलक्षित होता है। इसका स्पष्ट विवेचन The sermon on the mount according to Vedanta में रामकृष्ण मिशन के स्वामी प्रभवानन्दजी ने किया है।

स्वयं पैगम्बर मुहम्मद साहब की भारत से दिव्य सुगंधी मिलती है। उनके चाचा अब्बुल हिक्म को भगवान् शंकर स्तुति गाते हुए पाते है। कुरान तथा सूफियों की वाणी में गीता की गूंज है। कुरान पर गीता का स्पष्ट प्रभाव है जिसे सुन्दरलाल ने गीता और कुरान नामक पुस्तक में दर्शाया है। वेद एवं गीता में प्रतिपादित प्रणव (ओमकार) ॐ विश्वव्यापी स्वाभाविक दिव्य ध्वनि है। जो शंखनाद प्रणव ध्वनि, योगियों के अनहद नाद से लेकर लैटिन भाषा के Omni Present, Omniscent Omnipotent शब्दों में सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान के पीछे के 'सर्व' का सूचक है। तथा ईसाई एवं इस्लामी प्रार्थना के अन्त में उच्चारित हिब्रू (यहूदी) शब्द आमीन में गूंज रहा है। अब वैज्ञानिक भी स्वीकारने लगे हैं कि सूर्य की रश्मि में स्पष्ट तीन ध्वनियां अ+ऊ+म् सुनाई पड़ रही है। अतः हनुमानजी एवं याज्ञवल्क्य ऋषि ने सूर्य की उपासना से वेद ज्ञान प्राप्त किया यह पौराणिक नहीं ऐतिहासिक सत्य है। सूर्य की रश्मियों में वेद ज्ञान निहित है। मेरे परम पूज्य गुरुदेव स्वामी संवित् सोमगिरिजी महाराज कहते हैं—सूर्य के केन्द्र में यजुर्वेद के मंत्र हैं, परिधि में ऋग्वेद के मंत्र हैं। इसकी रश्मियों में सामवेद के मंत्र हैं जिसका ऋषियों ने प्रत्यक्ष किया है। हमारे सूर्य से निरन्तर वाइब्रेशनस् (Vibrations) निकल रहे हैं। वेद प्रकट होने के पूर्व (प्रणव) ॐ रूप में था। अलबरूनी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारत' लिखी जिसमें गीता के कई श्लोक उद्धृत करते हुए इसे आध्यात्मिक दृष्टि से बड़ी ऊंच कोटि की पवित्र पुस्तक बताया। मुगलकाल में अकबर के आदेश से फैजी ने इसका अनुवाद फारसी भाषा में किया। दाराशिकोह ने इसका नाम 'सरे अकबर' रखा और भूमिका में गीता की अद्भुत प्रशंसा करते हुए लिखा कि प्लेटों के गुरु पर भी गीता का अत्यधिक प्रभाव था, इससे ब्यास की महानता का अनुमान किया जा सकता है। भारत के अन्तिम मुगल बादशाह जफर स्वयं गीता से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने गीता के 3/37वें श्लोक का भाव पिरोते हुए कहा है—

जफर आदमी उसको न जानिएगा, चाहे कितना हो इल्मो फहमे बका।
जिसे ऐश में यादें खुदा न रही, जिसे तैश में खौफे खुदा न रहा।।

अर्थात् कोई व्यक्ति कितना ही पढ़ा-लिखा विद्वान क्यों न हो वह मनुष्य कहलाने योग्य सो नहीं है। जिसे ऐश में (ऐश्वर्य में) ईश्वर की याद न रहे, जिसे

तैश में (क्रोधावेश) में ईश्वर के दण्डविधान का भय भी न रहे। ऐश्वर्य में भी अंधा होकर ईश्वर के प्रेम को भूल जाता है और क्रोधावेश में भी अंधा होकर ईश्वर के न्याय विधान को भूल जाता है।

'मैंने भगवद्गीता को सर्वदा महानतम सम्मान युक्त प्रशंसा की दृष्टि से देखा है।' —सर मोहम्मद इकबाल (इस्लाम के विश्वकवि)

1917 में जिन्ना ने अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा था—रामायण और महाभारत इस देश के राष्ट्रीय महाकाव्य है। इनको समझे बिना आप भारत से एकात्म नहीं हो सकते।

डॉ. सैयद महमूद अपने विद्यार्थी जीवन में जर्मनी में कानून का अध्ययन करने गए थे। वहां उनके साथ अनोखी घटना घटी जिससे वे गीता के सम्पर्क में आए और आजीवन उससे प्रभावित रहे। वे उस समय कांग्रेस कमेटी के सदस्य थे तथा बाद में बिहार के मंत्री रहे।

गुजरात के मुस्लिम परिवार में जन्मी बहन रैहाना तैयबजी जो गांधीजी की अनुयायी थी। सन् 1923 में उसके जीवन में गीता प्रकट हुई। 'यंग इंडिया' में बापू द्वारा गीता की तारीफ पढ़ गीता में प्रवृत हुई और आजीवन भगवान् कृष्ण और गीता की दीवानी हो गयी पारिवारिकजनों के विरोध के बावजूद।

भारत के उपराष्ट्रपति स्व. श्र मोहम्मद करीम छागला आजीवन गीता के गीत गाते रहे। सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश महामहिम बेग साहब ने गीता का अध्ययन कर अपने विचार तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को एक विशेष नोट लिख, प्रेषित कर राय दी थी कि यह एक ऐसी अनमोल पुस्तक है जो सभी मजहब तो क्या मनुष्य मात्र के पढ़ने की जरूरी किताब है। इसका अध्ययन शिक्षण संस्थाओं में प्रारम्भ से लेकर कालेज तक अनिवार्य होना चाहिए। हकीकत तो यह है कि श्रीमद्भगवद्गीता भारत की सही पहचान है।

ईरान के मुस्लिम संत मेहरबान शहरयार (मेहर बाबा) ने कहा था कि गीता केवल हिन्दुओं के लिए नहीं है, यह तो मनुष्य मात्र के लिए है। धरती पर बसने वाली सभी जातियां गीता को जीवन में उतार लें तो सम्पूर्ण संसार प्रेममय बन जाए तथा सभी झगड़े-फसाद समूल नष्ट हो जाएं।

टर्की के प्रधानमंत्री—तुर्कीस्तान के प्रधानमंत्री मुसलमान हैं। गीता का नित्य पारायण करते हैं। पत्रकार पूछते हैं—आप गीता पढ़ते हैं क्या? हां पढ़ता हूं। उन्होंने कहा—यह कुफ्र की दुकान है। उन्होंने कहा—It gives me light consolation and solution how to solve and takle the problem. उसने कहा, इस्लाम से निकाल दिए जाएंगे। उन्होंने कहा मुल्ला-मौलवियों ने मुझे

इस्लाम नहीं दिया। खुदा ने दिया है, ये कौन होते हैं मुझे इस्लाम से निकाल देंगे। पर मैं गीता रोज पढ़ता हूं। यह मुझे जीवन की समस्याओं का समाधान देती है और इसलिए उन्होंने गीता के कुछ श्लोकों को To devlop and control the morality. आज तुर्की के अन्दर वह उनकी शिक्षा का हिस्सा है।

भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. अबुल कलामजी भी नियमित गीता का स्वाध्याय करते हैं।

संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् तथा वर्ष 2001 में राष्ट्रीय सद्भावना पुरस्कार से सम्मानित आचार्य हनीफखां कहते हैं कि 'मेरा पंथ इस्लाम है किन्तु मेरा जीवन जीने का मार्ग श्रीमद्भगवद्गीता है।

'श्रीमद्भगवद्गीता राष्ट्रीय एकता की जबरदस्त मिसाल है। वह जाति, सम्प्रदाय और राष्ट्र की सीमा से ऊपर है। गीता एक सिद्धान्त है, जीवनशैली है और सभी को इसे पढ़ना चाहिए।' ऐसा कहना है बिंत जेहरा रिज़वी का जिन्होंने 'गीता' का उर्दू में अनुवाद कर अपने खर्चे से हाल ही में प्रकाशित किया है।

इंडोनेशिया के स्वाधीनता के अवसर पर लोगों ने हाथ में गीता लेकर स्वाधीनता की रक्षा की शपथ ली। राष्ट्रपति सुकर्ण ने कहा कि हममें अर्जुन का बल और कृष्ण की बुद्धि है।

आधुनिक यूरोप में गीता का सर्वप्रथम परिचय 1776 ई. में हुआ जब ईस्ट इंडिया कम्पनी के आदेश पर सर विल्किन्स ने गीता का अंग्रेजी अनुवाद किया। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के अंग्रेज प्रशासकों ने अपनी न्यायिक एवं प्रशासनिक सुविधा के लिए गीता का अनुवाद कराया जिसने पूरे यूरोप के विचार जगत् में उथल-पुथल मचा दी। इसकी भूमिका में स्वयं गवर्नर जनरल वारेन हस्टिंग्स ने लिखा—'भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के ध्वस्त हो जाने के उपरान्त भी भारतीय दर्शन के अमर गायक पूजे जाते रहेंगे। वह पुनः कहता है गीता का उपदेश किसी भी जाति को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने में अद्वितीय है।

दो वर्ष बाद फ्रेंच विद्वान् डुपरो ने गीता का फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद किया। गीता का 700 श्लोक का छोटा-सा काव्य जिसने भोगवाद से पीड़ित पश्चिम की आत्मा को अत्यधिक शान्ति प्रदान की है। दार्शनिक श्लेगल इसको देखकर स्तम्भित हो गया। वह कहता है, 'यूरोप का सर्वोच्च दर्शन, उसका बौद्धिक अध्यात्मवाद जो यूनानी दार्शनिकों से प्रारम्भ हुआ, प्राच्य अध्यात्मवाद के अनन्त प्रकाश एवं प्रखर तेज के सम्मुख ऐसा प्रतीत होता है जैसे मध्याह्न के प्रखर सूर्य के दिव्य प्रकाश के भरपूर वेग के सम्मुख एक मन्द-सी चिनगारी हो जो धीरे-धीरे टिमटिमा रही है और किसी भी समय बुझ सकती है।' मैजिनी के जीवन पर इसके उपदेश का बहुत प्रभाव पड़ा।

जर्मन दार्शनिक शोपनहावर जब मृत्यु-शय्या पर पड़ा था उस समय उसे उपनिषद् का अनुवाद प्राप्त हुआ, जिसे पढ़कर उसे इतना आत्मबल मिला कि वह स्वस्थ हो गया, वह विस्मय विमुग्ध होकर कहता है 'यह अनुपम ग्रंथ आत्मा की गहराइयों को हिलकोर डालता है। इसके प्रत्येक वाक्य से मौलिक, गम्भीर और बड़े ही ज्योतिष्मान विचार ऊपर उठते हैं। हमारे चारों ओर भारतीयता का वातावरण आप से आप खड़ा हो जाता है तथा ऐसा प्रतीत होता है मानो यह विचार हमारे आत्मिक बन्धु के विचार हो। हमारे मनों पर यहूदी संस्कार की जो रूढ़ियाँ और अंधविश्वास छाये हुए हैं वे उनके स्पर्श मात्र से एकबारगी धुल जाते हैं। सारे संसार में इसके जोड़ का कोई ग्रंथ नहीं हो सकता। जीवन भर में मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है तथा मृत्यु पर्यन्त यह आश्वासन मेरे साथ रहेगा।

वह पुनः कहता है—

हम वेदों तक पहुँचे वह सभी पूर्व शताब्दियों की तुलना में इस शताब्दी का सर्वश्रेष्ठ सद्भाग्य कहा जा सकता है।

उपनिषदों में पाये जाने वाले अद्भूत सिद्धान्तों का उल्लेख करते हुए शोपेनहावर ने फिर कहा है—ये सिद्धान्त ऐसा ही है जो एक प्रकार से अपौरुषेय ही है। ये जिनके मस्तिक की उपज है, उन्हें निरे मनुष्य कहना कठिन है।

अमरीकन महिला ह्वीलर विल्लाक्स कहती है—भारत वेदों की भूमि है, जिसके अन्दर न केवल पूर्ण जीवन के पूर्णत्व के लिए धार्मिक तत्त्वों का निरूपण है, वरन् उन तथ्यों का भी निर्देश है जिनको आज विज्ञान शास्त्र ने सत्य प्रमाणित किया है। वैदिक ऋषियों को विद्युत शक्ति, रेडियम, इलेक्ट्रोन तथा वायुयान आदि सब बातों का ज्ञान था, ऐसा प्रतीत होता है।

श्री जकोलियट

यह एक बड़ी आश्चर्यजनक बात है। ईश्वरीय धर्मग्रंथों में एकमात्र वेद ही ऐसा है जिसके विचार वर्तमान विज्ञान के साथ पूर्ण साम्य रखते हैं क्योंकि वेद में भी विज्ञान के अनुसार विश्व की क्रमिक रचना का प्रतिपादन है।

जर्मन दार्शनिक शोपनहार तथा काण्ट, दोनों के दर्शन पर गीता के कर्तव्यवाद एवं निष्काम कर्मयोग की स्पष्ट छाप है। काण्ट भूगोल और Astronomy का शिक्षक था। वह कहता है मुझे भूगोल पढ़ाने के लिए भिन्न-भिन्न देशों की जानकारी करनी पड़ती थी। इसके साथ उन देशों का परिचय भी करना पड़ता था। इस तरह से मैं भारत से परिचित हुआ। मैं जैसे-जैसे उसका अध्ययन करता गया वैसे-वैसे उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ती गई।.....मैंने उसके तत्त्व चिन्तन में रुचि

ली। गीता और उपनिषदों का फ्रेंच भाषा में जो अनुवाद छपा मैंने उसे पढ़ा और उसको मैंने आजीवन स्मृत रखा।

काण्ट पर गीता का ऐसा रंग चढ़ा कि वह भूगोल और Astronomy छोड़कर दार्शनिक बन गया। उसके दर्शन पर गीता का पूरा प्रभाव है।

महान् संगीतकार लुडविन वान बीथोवन

बहुत कम लोगों को ज्ञात है कि महान् जर्मन संगीतज्ञ लुडविन बीथोवन भारतीय वेदान्त से प्रभावित थे। उन्होंने कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के अतिरिक्त उपनिषद और भगवद्गीता का भी अध्ययन किया था। बीथोवन ने अपने डेक्स पर श्रीकृष्ण के संदेश को जड़वाकर रख लिया था। संदेश यह था—जो है वह मैं हूं। जो था वह मैं हूं और मैं ही हूं वह जो सदा रहेगा।

चेकोस्लोवाकिया के प्रथम राष्ट्रपति मैसरिक को अपने कारागार काल में जब वे जीवन से हताश-निराश हो चले उस समय जीवन में उत्साह भरने वाली भगवद्गीता है।

अमेरीका के महान् लेखक क्रिस्टोफर ईशरहुड को आत्महत्या से बचाने वाली भगवद्गीता है। उसने बाइबिल में जब यह पढ़ा कि ईश्वर दूर सातवें आसमान में बैठा हुआ है और उसका न्यायालय करोड़ों वर्षों के बाद कमायत के दिन खुलेगा तो उसने ईश्वर पर विश्वास करना ही छोड़ दिया। उसने कहा कि ऐसे ईश्वर से कोई धरती का मजिस्ट्रेट ही अच्छा है। जो हमें कुछ मास या कुछ वर्ष में न्याय तो देता है। यदि किसी आदमी ने आज मुझे चोट मारी है और उसे दण्ड लाखों वर्षों के बाद मिलेगा तो यह घोर अन्याय है। अतः ईशरहुड गीता और हिन्दू धर्म के प्रभाव से पुनः अपनी आस्था एवं जीवन बचा सका।

अमेरीका में दो महान् आत्मा हुई है थोरा और इमर्सन जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर गीता रूपी अमृत के झरने में स्नान करते थे। थोरो कहता है सवेरे उठते ही अपने दिल और दिमाग को मैं विवेक को भगवद्गीता रूपी पवित्रतम गंगा जल से स्नान कराता हूं। गीता का तत्त्वज्ञान सर्वव्यापी और सर्वश्रेष्ठ है। इसे हजारों साल पहले देवताओं ने लिखा था, लेकिन तब से आज तक दुनिया में इसकी टक्कर का ग्रंथ नहीं लिखा जा सका। आज के युग में नई सभ्यताओं ने असीम वैज्ञानिक प्रगति की है तथा शिक्षा में कितने ही कीर्तिमान स्थापित किए हैं, लेकिन गीता-ज्ञान की तुलना में वे सब उपलब्धियां बहुत छोटा मालूम पड़ता है, नगण्य प्रायः हैं। गीता का ज्ञान हमारी परिकल्पना और विचारों से इतना परे व पृथक लगता है कि हम सोचने लगते हैं कि गीता किसी दूसरे युग की देन है। संसार में कितने ही स्मारक खड़े किये गए मिश्र देश के पिरामिड भी बने, लेकिन मैं देखता हूं कि उस

पुरानी दुनिया के जितने भी स्मारक है, वे सब मिलकर भी गीता का मुकाबला नहीं कर सकते, क्योंकि गीता मेरे विचार से उस युग का श्रेष्ठतम स्मारक है, वह महान् ज्ञान स्मारक है।

इमर्सन कहता है—जीवन व जगत् की ऐसी कोई समस्या नहीं है, जिसका समाधान गीता के पास न हो। इंग्लैण्ड में भी गीता के अध्यात्म संगीत के रसिक कार्लाइल जैसे तत्त्वद्रष्टा हुए हैं। इमर्सन एक बार कार्लाइल से मिलने इंग्लैण्ड गए। वहां कार्लाइल ने इमर्सन से उपहार स्वरूप कोई वस्तु मांगी। क्या यह प्रत्येक भारतवासी के लिए गर्व की वस्तु नहीं कि पश्चिम के दो सर्वश्रेष्ठ तत्त्वज्ञ एक-दूसरे को परस्पर गीता भेंट करते हैं। दोनों ने स्वीकार किया कि उनके कंगाल देश में उससे अधिक मूल्यवान कोई निधि नहीं है।

रूस का राष्ट्रपति स्टॉलिन और गीता

डॉ. राधाकृष्णन् को स्टालिन ने कहा, हम नास्तिक हैं। हम ईश्वर को नहीं मानते। राधाकृष्णन् ने कहा कि मैं सिद्ध कर सकता हूं कि आप ईश्वर को मानते हैं। उन्होंने स्टालिन से पूछा क्या आप चाहते हैं कि आपके अधीनस्थ अधिकारी आप से सच बोलें या झूठ बोलें? स्टालिन ने कहा, मैं चाहता हूं सच बोलें, झूठ बोलने वाले को मैं सूली पर टंगवा दूं। राधाकृष्णन् ने पूछा, क्या आप मानवता का कल्याण चाहते हैं? स्टालिन ने कहा, हम गरीबों के कल्याण के लिए ही संघर्ष कर रहे हैं। राधाकृष्णन् ने पूछा, क्या आप अपने देश को सुन्दर बनाना चाहते हैं या फूहड़ और कुरूप? स्टालिन ने उत्तर दिया हम अपने देश को सुन्दरतम देश बनाना चाहते हैं। राधाकृष्णन् ने तर्क दिया कि तब आप ईश्वर में विश्वास करते हैं। क्योंकि ईश्वर सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् ही है। इससे स्टालिन की भारतीय दर्शन में बड़ी रुचि जगी और वह डॉ. राधाकृष्णन् को बार-बार अपने पास बुलाकर उनसे गीता का तत्त्वज्ञान सुनता था।

संसार की 28 सभ्यताओं के विशेषज्ञ अर्नाल्ड टायनबी ने स्वीकार किया कि अणुबम से विध्वंस की ओर जाते पाश्चात्य जगत् को पौर्वात्य, भारतीय तत्त्वज्ञान की ओर जाना पड़ेगा, जो सभी के अन्दर ईश्वर को मानता है।

नोबल पुरस्कार विजेता फ्रेंच साहित्यकार रोमां रोलो ने माना कि गीता ने यूरोप की अनेक आस्थाओं को धूल-धूसरित कर दिया तथा मानव को नव दृष्टि दी।

क्रूजर (Creuzer) कहते हैं—यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जो स्वयं को 'मानव जाति का पालना' होने की घोषणा करने का अधिकारी है अथवा प्रारम्भिक सभ्यता का द्रष्टा है, जिसकी सभ्यता की किरणों ने प्राचीन विश्व के

सभी भागों को आलोकित किया है, जिसके ज्ञान के वरदान ने मनुष्य को 'द्विज' बनाया है, अथवा प्राकृत से संस्कृत किया है, तो वह देश वास्तव में भारतवर्ष है।

अमरीकी इतिहासकार विल डयूरंट ने दस खण्डों में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'स्टोरी ऑव सिविलाइजेशन' के प्रथम खण्ड 'अवर ओरियंटल हेरिटेज' में इस बात का उल्लेख किया है कि आधुनिक विश्व भारत से क्या आशा कर सकता है। उन्होंने कहा है (पृष्ठ सं. 633) 'यह सत्य है कि हिमालय की सीमाओं से पार भी भारत ने हमें व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, कथाओं, सम्मोहन और शतरंज तथा इन सबसे बढ़कर हमें अंक और दशमलव प्रणाली की महान भेंट दी है परन्तु ये सब उसकी आत्मा का सार नहीं है। भविष्य में हम उससे जो सीख सकते हैं उसके मुकाबले में ये सब तुच्छ हैं। जैसे-जैसे नए आविष्कार, उद्योग तथा व्यापार महाद्वीपों को एकता में बाँधेंगे या एशिया के साथ हमको संघर्ष में डालेंगे, हम उनकी सभ्यताओं का अधिक निकटता से अध्ययन करेंगे तथा शत्रुता में भी उनके कुछ आचार-विचार को अपना लेंगे। संभवतः विजय, उद्दंडता और लूटमार के बदले में भारत हमें परिपक्व बुद्धि की सहनशीलता और शालीनता, असंग्रहशील आत्मा का शान्त-संतोष, समझदार व्यक्तित्व की शान्ति और सभी जीवित प्राणियों के प्रति एकता और प्रेम की शिक्षा देगा।'

हिन्दू संस्कृति की अपूर्व शक्ति और दीर्घायुता का सर्वप्रथम कारण प्रकटतः भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और परस्पर विरोधाभासी आस्थाओं को व्यवस्थित तथा समायोजित करने की इसकी क्षमता है। अनेक रूपी तत्त्वों को समायोजित करने और उन्हें सामाजिक और अलग-अलग पहचान देने की इसकी योग्यता सम्भवतः मानव इतिहास में अभूतपूर्व है। —विलियम काँप

हिन्दू धर्म कभी भी सनातन न बन पाता, यदि वह निरन्तर वर्धमान और वितरणशील बनकर, अनुभूतियों के नव-नवीन क्षेत्रों को अपने अन्दर सम्मिलित करता न रहता। प्रत्येक नवागत कल्पना को अपने अन्दर संकलित कर अपने को तदनुरूप समायोजित करने की सामर्थ्य हिन्दू धर्म का एक विशेष लक्षण है, इसलिये हिन्दू धर्म को हम एकमात्र अमर धर्म के रूप में पहचानते हैं। संसार के ज्ञात किसी अन्य धर्म के अन्दर इस प्रकार का सामर्थ्य उस मात्रा में नहीं जितना हिन्दू धर्म में है। अतः हिन्दू धर्म विश्वधर्म के वृक्ष का वह तना है जो संसार के अन्य अल्पजीवी, धर्म-मतों को बहिर्वर्ती शाखाओं के रूप में वहन करता है।

—भगिनी निवेदिता

अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों पर गीता का प्रभाव—डॉ. कृष्ण गोपाल श्रीवास्तव ने बीस वर्षों के अध्ययन के बाद स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित किया कि

अंग्रेजी काव्य की रोमाण्टिक धारा पर गीता का स्पष्ट प्रभाव है। रोमाण्टिक युग के वड्र्स वर्थ, कालरिज, शैली कोट्स, बायरन और वाल्टर स्कॉट जैसे प्रमुख कवि गहरे रूप से गीता से प्रभावित थे। उनकी कविता पर इस महान् ग्रंथ का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। उनकी कविताओं में बहुत से अंश अत्यन्त दुर्बोध और मन, बुद्धि की समझ से परे हैं। यदि उन पर गीता के प्रकाश में विचार किया जाए, तो वे एकदम स्पष्ट रूप से उद्भासित हो उठते हैं। अठारहवी शताब्दी में प्राच्यविद् चार्ल्स विलकिन्स, सर विलियम जोन्स आदि ने भारत-विद्या की जो खोज की थी, उसी के परिणामस्वरूप प्राच्य देश में नवजागरण का सूत्रपात हुआ था। यह नवजागरण वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत पुरातत्व आदि की खोज के क्षेत्र में था। विलकिन्स ने गीता का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया था जो लन्दन 1785 में प्रकाशित हुआ था। अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों विलकिन्सकृत गीता के अनुवाद को मात्र पढ़ा ही नहीं था, गीता के उपदेशों ने उनके मर्म को छू लिया था और उसी की ज्योति से उनकी कविता में और चमक आ गयी थी।

गीता की अलौकिक प्रभा से प्रभावित होकर विश्व के मनीषियों ने पहले स्वयं संस्कृत भाषा सीखी व गीता का अध्ययन किया फिर अपनी-अपनी भाषा में अनुवाद कर अपने-अपने खर्च से अपने-अपने देश में प्रचार-प्रसार किया।

जबकि बाइबिल सारे विश्व पर थोपी गयी है और आज भी थोपी जा रही है। वे स्वयं विश्व का अन्यान्य भाषाओं में अनुवाद कर निःशुल्क वितरण की गयी है और अभी की जा रही है। इसके लिए बाइबिल सोसाइटी बनी हुई है जिसमें सभी ईसाई देश के संसद अपने बजट का एक हिस्सा और बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने लाभांश का एक हिस्सा अनुदान के रूप में प्रदान करती हैं। पर गीता के साथ कोई ऐसी बात नहीं है।

भारत की पराधीनता के काल में भी लंदन के ट्रैफल्गर स्क्वेयर पर खड़े होकर दोनों भुजा उठाकर मैक्समूलर कहा करता था, 'भारत सारे संसार का आध्यात्मिक पूर्वज है। जिस जाति में राम और कृष्ण पैदा हुए हैं उसे गुलाम बनाना सारी मानव जाति के साथ घोर अन्याय करना है।

वैज्ञानिक जगत् और गीता

राबर्ट ओपेनहाइमर—यह एक अत्यन्त विस्मयकारी तथ्य है कि 16 जुलाई, 1945 को अमेरीका के न्यूमेक्सिको रेगिस्तान में प्रथम अणुबम का परीक्षण किया जा रहा था, तो आविष्कारक राबर्ट ओपेनहाइमर ने ज्योंही आकाश में अनन्त सूर्यों के प्रकाश के समान प्रचण्ड अग्नि ज्वालाओं को बम के विस्फोट के साथ ही देखा तो उन्हें गीता के विराट् रूप के दर्शन की स्मृति हो आई और वे जेब से गीता निकालकर एकादश अध्याय का श्लोक गाने लगे जबकि ईसाई होने के नाते बाइबिल का वचन स्मृति में आना चाहिए था पर उन्हें गीता का श्लोक स्मरण आता है—

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः।। 11/12, गीता

आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से जो प्रकाश उत्पन्न होवे वह कदाचित् विश्वरूप परमात्मा के तेज सदृश हो।

शीघ्र ही इस ज्योति का रूप विकराल हो गया—मानो समस्त आकाश—पाताल को अपनी दैत्याकार लपटों में आवृत कर लेगी। ओपेनहाइमर को लगा कि मैं काल रूप में परिणत हो गया और उन्हें पुनः गीता का उद्घोष याद आ गया—

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः। 11/32, गीता

लोको का नाश करने वाला प्रवृद्ध महाकाल हूं मैं। इस समय लोकों को नष्ट करने को प्रवृत्त हुआ हूं।

अणुबम के इस भयावह काल रूप को देखकर उन्हें ग्लानि हुई कि राजनीतिज्ञ लोग इसका दुरुपयोग करेंगे। अतः इसका उन्होंने विरोध किया। और तुरन्त लार्ड एलोमोस्ट प्रोजक्ट जहां का वह डायरेक्टर था वहां से त्यागपत्र देकर वह रामकृष्ण मिशन में चला गया। गीतापाठ करता रहा और सन् 1963-1964 में उन्होंने शरीर छोड़ा।

इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक भी गीता के महत्त्व को स्वीकारते हैं, क्योंकि इसमें प्राचीन धार्मिक रूढियों तथा कर्मकाण्ड का लेशमात्र भी नहीं है। वैज्ञानिक ज्ञान की खोज के लिए सूक्ष्म परमाणु से लेकर विशालकाय तारों की ओर उन्मुख

होते हैं, उसकी झलक उन्हें गीता में भी दिखाई देती है। यही कारण है कि अनेक वैज्ञानिक सुबह और शाम गीता के श्लोकों पर मनन और चिन्तन करते हैं तथा कुछ तो रात में उसे बगल में लेकर सोते भी हैं। यही कारण है कि नोबेल पुरस्कार प्राप्त जीवविज्ञानी अलडास हक्सले गीता का अनुवाद करते हैं और गीता को सच्चे अर्थ में 'शाश्वत दर्शन' की संज्ञा दी है। स्वामी प्रणवानन्द की लिखित गीता की भूमिका में हक्सले लिखते हैं— गीता शाश्वत दर्शन के कभी भी रचे गए सबसे स्पष्ट और सबसे सर्वाङ्ग सम्पूर्ण सारांशों में एक है। इसलिए न केवल भारतीयों के लिए, अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के लिए इसका स्थाई मूल्य है। सम्भवतः भगवद्गीता शाश्वत दर्शन का सबसे अच्छा सुसंगत आध्यात्मिक विवरण है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हुम्बोल्ट ने कहा था संसार में जितने भी ग्रंथ हैं, उनमें भगवद्गीता जैसे सूक्ष्म और उन्नत विचार कहीं नहीं मिलते। स्वदेश में गणितज्ञ नारलिकर ने गीता कंठस्थ की है। आज पश्चिम का विज्ञान तीन कारणों से भारतीय तत्त्वज्ञान की ओर आकृष्ट हो रहा है— (1) संसार की व्याख्या विज्ञान के द्वारा असमर्थ पाकर (2) नैतिक कारण जिससे विज्ञान का दुरुपयोग न हो (3) भारतीय तत्त्वदर्शन से परिचित होने से।

बर्गसाँ—रावलपिंडी में रहने वाला व्यक्ति विदेश गया तो बर्गसा से मिलने गया। बर्गसा ने भारत से आए हुए व्यक्ति का स्वागत किया और कहा मुझे संस्कृत में गीता का मूल सुनाओ। उसने कहा उसकी पढ़ाई का माध्यम उर्दू था। अतः वह संस्कृत नहीं जानता है इसलिए वह संस्कृत में गीता का मूल नहीं सुना सकता है। अगर आप चाहें तो उसका अनुवाद अंग्रेजी में सुना सकता हूं। तब बर्गसा उसे अपने कमरे में ले गया जिसमें एक सोने की पेटिका में रखी हुई थी संस्कृत की मूल गीता। उसने कहा—अनुवादों से तो मेरी लाइब्रेरी भरी पड़ी है। मैं तो संस्कृत में ही गीता का मूल सुनना चाहता हूं। और फिर बर्गसा ने कहा अब मुझे समझ में आया आज भारत गुलाम क्यों है? गीता को भुला देने के कारण अन्यथा गीता का देश गुलाम नहीं हो सकता।

सुनीता विलियम्स जो भारत की पुत्री हैं, गुजरात की बेटी हैं, पर अब वह अमेरीका की नागरिक हैं। जब उसने अन्तरिक्ष में वैज्ञानिक शोध के लिए कई माह वहां व्यतीत किया तो वह अपने साथ भगवद्गीता ले जाती है।

पूर्व राष्ट्रपति डॉ. अबुल कलाम ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अग्नि की उड़ान' में लिखा है—वे 'गीता' से बहुत प्रभावित हैं। वे निरन्तर विशेषतया कठिन परिस्थिति में गीता का अध्ययन करने पर संतुष्टि लाभ करते हैं और इससे उन्हें समस्या का समाधान प्राप्त हो जाता है।

पंडित नेहरूजी जब आइंस्टीन से मिलने गए तो उन्होंने आश्चर्यचकित होकर देखा उनकी टेबुल पर गीता रखी है, जिसका वे नियमित स्वाध्याय करते हैं।

कुशल प्रशासक बनने में गीता का अवदान

एक बार स्वामी रंगानाथानन्दजी सन् 1949 में हैदराबाद में राज्य के सैन्य-प्रशासक जनरल जे.एन. चौधरी से भेंट करने गए। वहां स्वामीजी ने देखा उनकी मेज पर गीता की एक प्रति रखी है। तब स्वामीजी ने जनरल चौधरी से पूछा क्या आप गीता पढ़ते हैं? तब उन्होंने थके स्वर में उत्तर दिया, 'हां', जब कभी मैं थकान महसूस करता हूं और कुछ शान्ति पाना चाहता हूं तब मैं गीता की कुछ पंक्तियां पढ़ लेता हूं। तब स्वामीजी ने कहा इसका यह उद्देश्य तो नहीं है। इस टिप्पणी पर विस्मित होकर उन्होंने पूछा, 'क्या आपका तात्पर्य यह है कि इस पुस्तक का हमें थोड़ी-सी मानसिक शान्ति देने के अलावा और भी कोई उपयोग है? तब स्वामीजी ने कहा—हां, यह ग्रंथ मात्र मानसिक शान्ति देने के लिए नहीं है, यह लोगों की सेवा करने हेतु आपमें शक्ति संचार करने के लिए है, आपको एक जिम्मेदार नागरिक बनाने के लिए है। इसमें जीवन तथा कर्म का एक सर्वांगीण दर्शन है।

जनरल चौधरी आश्चर्यचकित रह गए और मुझसे बारम्बार पूछने लगे, तो क्या आपका तात्पर्य यह है कि इस प्रान्त के सैन्य-प्रशासक के रूप में मेरे लिए इसकी कोई प्रासंगिकता है? स्वामीजी ने कहा, ठीक ऐसा ही है। हमें इस बात को समझ लेना होगा कि सभी कर्मठ नर-नारियों, सभी उत्तरदायित्व वहन करने वाले लोगों को जीवन तथा कर्म के एक दर्शन की आवश्यकता होती है। गीता इसे 'योग' रूपी एक सहज शब्द के माध्यम से प्रस्तुत करती है। हमने अब तक इसे समझा नहीं है। गीता के चौथे अध्याय का पहला ही श्लोक लीजिये। श्रीकृष्ण वहां हमें बताते हैं, मैंने यह योग दर्शन उत्तरदायित्व वहन करने वालों को दिया था, ताकि इस दर्शन के द्वारा वे शक्तिमान होकर लोगों की सेवा, सुरक्षा तथा पोषण प्रदान कर सकें। इस ग्रंथ का यही उद्देश्य है। स्वामीजी ने इसी बात पर बारम्बार बल दिया और उन्होंने भी बारम्बार पूछा, 'क्या मैं इस प्रान्त के प्रशासक के रूप में एक अधिक कुशल व्यक्ति बनने के लिए इस पुस्तक से कुछ सीख सकता हूं? स्वामीजी ने कहा, 'अवश्य, उत्तरदायित्व निभाने वाले सभी नर-नारियों को सर्वजन हिताय कार्य करने की प्रेरणा देना—यही तो इस पुस्तक का उद्देश्य है। यही तो इस पुस्तक का स्वभाव है, यह आपको सुलाने के लिए नहीं है। यह समाज के सभी लोगों की भलाई करने हेतु आपको वह परम मानवीय भाव तथा संकल्प देने के लिए है।

इससे जनरल चौधरी को गीता पर एक सम्यक् यथार्थ दृष्टि मिली, बड़े प्रसन्न हुए।

उद्योग, व्यवसाय-प्रबंधन जगत् और गीता

पाश्चात्य अर्थशास्त्र और मार्क्सवाद दोनों ही अर्थशास्त्र के व्यापार में नैतिकता का दखल नहीं स्वीकारते। दोनों तीन मान्यताओं को लेकर चलते हैं— मनुष्य जन्म से स्वार्थी है, जीवन का परम लक्ष्य अर्थ की प्राप्ति है और अर्थ के व्यापार में नैतिकता का दखल नहीं होना चाहिए। लार्ड काइनिस ने 1930 में कहा और एक शताब्दी तक हमें अपने-आपको और अन्यों को भी यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि अच्छाई ही बुराई है और बुराई ही अच्छाई है। क्योंकि बुराई ही परिणामकारक है अच्छाई नहीं। कुछ दिनों तक लोभ और लालच को हम लोग अपना भगवान् मानें। क्योंकि उसीके आधार पर हम गरीबी की अंधेरी सुरंग से बाहर निकलकर प्रकाश का दर्शन कर सकेंगे।

अतः व्यापार का, बाजार का, उद्योग का एक ही सिद्धान्त है मुनाफा, लाभ, लालच। जिसका निष्काम कर्म के साथ कोई मेल नहीं है। 80-90 के दशक तक लालच ही अच्छा है सिद्धान्त वाक्य था। पर अब एक-दो दशकों से स्थिति बदल गई है और कर्म का सिद्धान्त व्यावसायिक जगत् का, औद्योगिक जगत् का सूत्रवाक्य बनता जा रहा है। आज के दौर में गीता धार्मिक ग्रंथ ही नहीं रही, बल्कि कारोबारी महाग्रंथ का रूप ले चुकी है। गीता में मैनेजमेंट फार्मूलों से लेकर लीडरशिप के गुणों और बिजनैस के सूत्रों की भरमार है। यही वजह है कि देश ही नहीं विदेशों के दिग्गज प्रबंधन संस्थान भी गीता ज्ञान को अपनाने लगे हैं।

बहुत से बड़े-बड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में, औद्योगिक प्रतिष्ठानों में विधिवत गीता की कक्षाएं लगती हैं ताकि सभी में मन-बुद्धि का संतुलन रहे, परस्पर आत्मीय भाव रहे। सभी प्रतिष्ठान अपने कार्य को, भगवान् का कार्य समझें। जब उसे अपना कार्य या भगवान् का कार्य समझेंगे तब कामचोरी का अवकाश नहीं रहता। उत्पादन और गुणवत्ता दोनों श्रेष्ठ होती है। कामगार आन्दोलन के कारण उत्पादन में एक घण्टे का भी व्यवधान नहीं होता, यद्यपि कारखानों में अनेक यूनियनें कार्यरत होते हुए भी परस्पर सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध रहते हैं। कारखानों में सहनाववतु सहनो भुनक्तु का मंत्र चरितार्थ है। मशीन को नहीं

मनुष्य को महत्ता देते हैं। प्रबन्धक स्वयं को सम्पूर्ण का एक घटक मानते हैं। इससे कामगार एवं प्रबंधक का भेद तिरोहित हो जाता है। सामान्य कामगार भी सहजता से प्रबंध निदेशक से संवाद कर सकता है। कामगरों को उचित मेहनताना और बोनस भी प्राप्त होता है। परस्पर में सामूहिक कार्यक्रम एवं भोज भी होते हैं। इस प्रकार एक आत्मिक परिवेश और समष्टि भावना, समष्टि मन बन जाता है। जिसमें लाभ-हानि एवं संकट को साथ-साथ झेलने की एवं उबरने की भावना बन जाती है।

प्रथम जापान में इसका सफल प्रयोग हुआ है और अपने देश के भी कई व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, औद्योगिक प्रतिष्ठानों में अच्छी सफलता मिल रही है।

आज दुनिया की बड़ी से बड़ी कम्पनियों के सीईओ यानी मुख्य अधिशासी अधिकारी व तमाम वरिष्ठ प्रबंधक भगवद्गीता का व्याख्यान सुनने जमा हो रहे हैं। यहां तक कि कुछ ने तो भगवद्गीता पढ़ाने वालों से ट्यूशन लेना शुरू कर दिया है। जैसे कि जनरल इलेक्ट्रिक कम्पनी के सीईओ जैफ्री आर. इमैल्ट को एक शिक्षक घर पर भगवद्गीता पढ़ाने आता है ताकि वे अपनी कम्पनी में सही और संतुलित निर्णय ले सकें। अगर भगवद्गीता केवल धर्मशास्त्र के रूप में मानी जाती तो ऐसा सम्भव नहीं था कि अपने धर्म के प्रति कट्टर यहूदी और ईसाई उद्योगपति और अधिकारी अपने जीवन और व्यवसाय की समस्याओं का हल ढूंढ़ने के लिए भगवद्गीता का ज्ञान बटोर रहे होते।

इतना ही नहीं, दुनिया के श्रेष्ठतम प्रबंधकीय संस्थान जैसे हारवर्ड बिजनैस स्कूल, कैलोग स्कूल ऑफ बिजनैस, रॉस स्कूल ऑफ बिजनैस, वारटन बिजनैस स्कूल में भगवद्गीता का पाठ्यक्रम पढ़ाया जा रहा है। जब पूरी दुनिया में विभिन्न धर्मों के मानने वाले साधन सम्पन्न, उच्च पदासीन व ताकतवर लोग भगवद्गीता के ज्ञान को लेने को आतुर हैं और इस ज्ञान से अपने जीवन को सुधार रहे हैं।

गीता को वेद और उपनिषदों का निचोड़ माना जाता है। गीता ज्ञान का खजाना है। गीता को आत्मसात् करने वाला मैनेजर शायद ही कभी नाकामयाबी से घबराता है। वास्तव में गीता में हर वो ज्ञान है जो किसी भी मैनेजर के लिए जरूरी माना जाता है। दुनिया को सबसे बेहतरीन पेशेवर मैनेजर देने वाला संस्थान आई.आई.एम. भी समय-समय पर अपने छात्रों को गीता का कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग का पाठ पढ़ाता है।

दुनिया की कई कॉरपोरेट कम्पनियों में कर्मचारियों का नैतिक बल, नेतृत्व क्षमता, कार्यदक्षता, व्यक्तित्व निखारने के लिए गीता के सूत्रवाक्यों का जमकर सहारा लिया जा रहा है। भारत में तो दफ्तर की दीवारों पर गीता के प्रेरणादायी सूत्रवाक्य खूब लिखे दिख जाते हैं।

भारत की सबसे बड़ी जीवन बीमा कम्पनी एल.आई.सी. का तो ध्येयवाक्य **'योगक्षेमंवहाम्यहम्'** ही गीता से उठाया हुआ है। इसी ध्येयवाक्य के साथ एल.आई.सी. आज भी बीमा क्षेत्र का अग्रणी बना हुआ है।

दिल्ली मेट्रो रेल कॉरपोरेशन ने बहुत ही थोड़े समय में बेहतर कार्यशैली और प्रबंधन के चलते अपनी साख कायम कर ली है। इसके पीछे भी कहीं न कहीं गीता का ज्ञान है। डी.एम.आर.सी. सम्भवतः पहला ऐसा संस्थान है जहां सेवा आरम्भ करने पर कर्मचारी को स्वामी विद्याप्रकाशानंद द्वारा लिखित 'गीता मकरंद' की एक प्रति पढ़ने के लिए दी जाती है। इसके अलावा दिल्ली मेट्रो समय-समय पर मोटिवेशन के वर्कशाप भी आयोजित करती है। इसमें गीता के मर्मज्ञों को व्याख्यान के लिए आमंत्रित किया जाता है। इस कवायद का सकारात्मक असर दिखा है। कर्मचारियों में टीम भावना और डेडलाइन के प्रति समर्पण है। भ्रष्टाचार, तनाव, कामचोरी जैसी कमियां यहां न के बराबर हैं। खुद दिल्ली मेट्रो के कर्ता-धर्ता और मेट्रोमैन के नाम से विख्यात ई. श्रीधरन गीता से गहरे प्रभावित हैं।

निष्काम कर्म कॉरपोरेट जगत् का नया नारा है। पिछले कुछ सालों में गीता में निहित मैनेजमेंट के मंत्रों का ज्ञान कराने वाली कई किताबें लिखी गई हैं। इनमें प्रमुख है—स्वामी सोमेश्वरानन्द की बिजनैस मैनेजमेंट 'द गीता वे', अरुण कुमार की 'मैनेजमेंट लीडरशिप थ्रू भगवद्गीता', स्वामी बोधानन्द की 'द गीता एंड मैनेजमेंट' और ए.के. श्रीवास्तव की 'भगवद्गीता : इकोनॉमिक डवलपमेंट एंड मैनेजमेंट। नेपाली मैनेजमेंट गुरु पूजन रोका ने अपनी किताब 'भगवद्गीता आन इफेक्टिव लीडरशिप' में गीता में निहित नेतृत्व के सिद्धान्तों को आधुनिक मैनेजमेंट के लिए कारगर बताया है।

अभी हाल में चीनी मूल के लेखक चार्ल्स चोउ सिंगापुर में रहते हैं। उन्होंने 'मैनेजमेंट एफिकेसी-विज्डम फ्राम द इण्डियन भगद्गीता एंड द चाइनीज आर्ट ऑफ वार' नामक पुस्तक लिखी है। इसमें उन्होंने समाज व्यावसायिक प्रबन्धन एवं व्यक्तिगत प्रतिबद्धता के क्षेत्र में भगद्गीता को प्रासंगिक माना है। पिछले दिनों सिंगापुर में उक्त पुस्तक के विमोचन के अवसर पर उन्होंने कहा कि 'गीता लाभ और उद्देश्य के बीच भ्रम की स्थिति को दूर करती है तथा कॉरपोरेट जगत के लिए आवश्यक पर्यावरण, लचीलेपन और प्रभावशाली नेतृत्व की तकनीकों और उपकरणों की जानकारी देती है।

विश्व मानस पर भगवान् बुद्ध का प्रभाव

भगवान् बुद्ध मानवता की फुलवारी के सुन्दरतम पुष्पों में से एक हैं। मानव इतिहास की महानतम विभूतियों में वे अन्यतम हैं।

भगवान् बुद्ध संसार के एक महान् और आद्य संघटक भी थे। उन्होंने अपने अनुयायिओं को सुनियंत्रित संघटना निर्माण की ओर उस संघटना द्वारा अपने मत का प्रचार किया। बुद्ध के इस संघ में तत्कालीन किसी भी प्रकार का भेद भावना का स्थान नहीं था। सारि पुत्र मोग्गल्लान, आनन्द, उपालि जैसे तरुण बुद्धिमान और कर्तृत्व सम्पन्न शिष्यों ने बुद्ध के सिद्धान्तों का त्यागपूर्ण जीवन द्वारा प्रचार किया।

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के बाद भी उनका सम्प्रदाय बढ़ता ही गया। अशोक, कनिष्क और श्रीहर्ष जैसे सम्राटों के आश्रय से इस सम्प्रदाय का विस्तार निरन्तर होता रहा। सम्राट् अशोक ने भारत वर्ष के बाहर अन्य राष्ट्रों में भी बुद्ध मत का प्रचार-प्रसार करने का विशेष प्रयास किया। राज्याश्रय के कारण सैकड़ों उत्साही भिक्षु सिलोन, बर्मा, चीन, जापान, तिब्बत, कोरिया, अरबीस्तान आदि एशिया के अन्यान्य राष्ट्रों में बुद्ध के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए गए। उन महान् प्रचारकों में भारत के कुछ महान् कलाकार भी थे। बौद्ध मत के साथ-साथ भारतीय चित्रकला, शिल्पकला, आयुर्वेद, कथा आदि कलाओं का भी उन्होंने उन राष्ट्रों में सतत प्रचार किया। डेढ़ हजार वर्षों तक अव्याहत रूप से भारतीय संस्कृति की समस्त एशियाभर में इस प्रकार प्रचार होता रहा। बोद्ध प्रचारकों ने शान्ति मार्ग से डेढ़ हजार साल तक समस्त एशिया को एक सूत्र में संगठित किया था। संसार के अन्य किसी राष्ट्र ने इस प्रकार शान्ति मार्ग से मानवता का संगठन आज तक नहीं किया।

भगवान् का मानवता को अंतिम संदेश है—'अत्तः दीपो विहरथ' हे मानव! अपनी आत्मा के दीपक के प्रकाश में, अपने विवेक के दीपक के आलोक में संसार में विहार करो।

आज भी विश्व के कोने-कोने में बुद्ध के महान् स्मारक उनके धर्म दिग्विजय की घोषणा कर रहे हैं—

लुम्बिनी नेपाल में जन्मभूमि, अफगानिस्तान में बामियान में संसार की सबसे बड़ी 175 फुट ऊँची बुद्धमूर्ति, ब्रह्मदेश में संसार का सबसे मूल्यवान स्वर्णमंदिर

श्वेडेगान पेगोड़ा, लंका में अनुराधापुरम में बोधि वृक्ष, सिंहगिरि गुहामंदिर में अजन्ता शैली के भित्तिचित्र, श्रीपाद पर्वत पर भगवान् बुद्ध के चरणों का तीर्थ। थाई देश में नीलम मणि की मूर्तियाँ, वियतनाम में सहस्रभुज भगवान् बुद्ध, इंडोनेशिया में संसार का सबसे बड़ा बौद्ध मंदिर बोरोबुदुर, चीन में दो सौ से अधिक अजंता शैली की बौद्ध गुफाएं, तिब्बत में लामा धर्म, मंचूरिया में मंजुश्री की मूर्तियाँ, मंगोल देश में बौद्ध पाण्डुलिपियाँ, साइबेरिया के बौद्ध विहार, जापान, कोरिया में जीवन्त बौद्ध धर्म, ईरान एवं अरब में मूर्ति के लिये बुद्ध से 'बुत्त' शब्द का प्रचलन, बाइबिल में भारतीय युवक भिक्षुओं थेरापुत्तों अर्थात् स्थविर पुत्रों का वर्णन, अशोक द्वारा सीरिया, मिस्र, मैसेदोनिया, इपिरस, सिरैनिया, उत्तर अफ्रीका में प्रचारक भेजना, जर्मनी में मैक्समूलर, राइस डेविड्स, ओल्डन वर्ग, शोपेनहावर की बौद्ध रचनाएं, इंग्लैण्ड के सर एडविन आर्नोल्ड की लाइट आफ एशिया, जानमेस फील्ड, इलियट, एडिथ सिटवैल, डब्ल्यू वी. यीटस की बौद्ध काव्य रचनाएं अमरीका के अल्डुअस हक्सले तथा रूस के निकोलस रोरिक का अपनी महान् विद्वत्ता के साथ बुद्ध भक्त बनना, इंग्लैण्ड का महानतम दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल की यह घोषणा कि यदि उन्हें किसी धर्म को स्वीकार करने को कहा जाए तो वे बौद्ध धर्म को ही स्वीकार करेंगे। ये सब तथ्य घोषणा कर रहे हैं कि भगवान् बुद्ध सदा सर्वदा अजर-अमर हैं और उनका अविनश्वर संदेश विश्वमंगलकारी है।

'भारत ने चीन में एक भी सैनिक नहीं भेजा। खून का एक कतरा नहीं बहाया। किसी की आंखों में आंसू की एक भी बूंद नहीं डाली। फिर भी चीन दो हजार साल तक उसके प्रभाव में रहा।'

—अमरीका में चीन के पूर्व राजदूत हयू शिह

× × ×

संयुक्त राष्ट्र संघ के महासचिव कोफी अन्नान से एक पत्रकार बंधु ने पूछा—विश्व में जो आपा-धापी चल रही है, विनाश की ओर जा रहा है, इससे रक्षा का कोई उपाय शेष है—तब उन्होंने कहा जब तक हिन्दू धर्म और बोद्ध धर्म है तब तक निराश होने का कोई कारण नहीं है।

× × ×

मानवता भारत रूपी पालने में फली-फूली है। मनुष्य को वाणी यहीं से मिली है और मनुष्य का इतिहास भी यहीं से निकला है। गाथाओं की तो दादी रहा है और परम्पराओं के मामले में दादी की भी माँ। मनुष्यता की सारी रचनात्मक धरोहरें भारत में ही हैं। **—मार्क ट्वेन्**

वेदान्त की विज्ञान को चुनौती

जो आंख सारे संसार को देखती है, वह अपने आपको साक्षात नहीं देख सकती। जो मानव निखिल विश्व के रहस्य की खोज में तत्पर है, जो चांद, सूर्य, सितारों का भेद जानने के लिए भी चिन्तातुर है, वह यदि स्वयं अपने आपको न जान सके तो कितना बड़ा दुर्भाग्य होगा?

द्रष्टा के बिना दृश्य सम्भव नहीं, ज्ञाता के बिना ज्ञेय सम्भव नहीं। आज का समूचा विज्ञान हमें दृश्य को दिखाता है, प्रकृति में एक तारतम्य अथवा सिद्धान्त की ओर भी संकेत करता है, किंतु उस द्रष्टा की सत्ता पर विचार नहीं करता जिसके कारण दृश्य सम्भव हुआ है। विज्ञान भौतिक जगत् के कुछ पहलुओं का ज्ञान अवश्य देता है, किन्तु किस ज्ञाता को वह ज्ञान प्राप्त हुआ, इस मौलिक प्रश्न को टाल जाता है, किन्तु यह प्रश्न टलने वाला नहीं है, क्योंकि ज्ञाता का निश्चय किये बिना ज्ञान की सत्यता पर भरोसा कैसे किया जा सकता है। यदि ज्ञाता अंधा है, तो उसके लिये दूध भी टेढ़ी खीर है, हाथी की सूंड एक अजगर सांप है, सौंदर्य एवं कौरूप्य समान है, प्रकाश एवं अंधकार में अंतर नहीं। अतः वेदांत की घोषणा है—'जब तक ज्ञाता स्वयं अज्ञात है तब तक सब ज्ञात अज्ञान है।' सारा ज्ञान किसी न किसी ज्ञाता का ही साक्ष्य है। ज्ञाता विश्वसनीय नहीं तो उसका जाना हुआ सारा ज्ञान अज्ञान ही है। यदि तापमापक (थर्मामीटर) ही गलत है तो उसके द्वारा जाना हुआ सारा तापमान गलत है। अतः वेदांत सारे ज्ञान के मूल 'ज्ञाता' की खोज करता है। सारे ज्ञान की कुंजी ज्ञाता में ही है। इसीलिये जब तक ज्ञाता का ही ठीक से पता नहीं, तब तक जो कुछ जाना वह मिथ्या ही जानो, जिसके अपने चक्षुओं में प्रकाश नहीं, उसके लिये सब प्रकाश अंधकार ही है।

विश्व के अनादि साहित्य वेद में उसी साक्षी, चैतन्य आत्मदेव से प्रार्थना की गई है—

ॐ असतो मा सद्गमय।
तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्माऽमृतं गमय।

यह विज्ञान का युग है। विज्ञान के चमत्कारों की चकाचौंध से हर छोटा-बड़ा प्रभावित है। विज्ञान के अद्‌भुत आविष्कारों ने मानव हृदय पर अपनी विजय की छाप अंकित कर दी है। विज्ञान ने प्रकृति पर विजय पा ली है। उसने अन्तरिक्ष की विद्युत् को छोटे-छोटे बिजली के लट्टुओं में कैद कर लिया है, अन्तरिक्ष की ध्वनि-तरंगों को एक छोटी-सी पेटिका में बन्द कर लिया है, उसने कृत्रिम प्रकाश से रात को दिन में बदल दिया है, कृत्रिम वायु चलाकर तप्त भवनों को ठण्डा किया है, कृत्रिम वर्षा द्वारा वन्ध्या धरती को शस्य-श्यामला बना दिया है तथा कृत्रिम ग्रह, उपग्रह, छोड़ कर नई सृष्टियाँ रचने का अभूतपूर्व उपक्रम किया है। एक सफल विजेता के समान विज्ञान ने अपनी विभूतियों के अतिरिक्त, अपना आतंक जमाए रखने के लिये अणुबम तथा परमाणु बम जैसे लोक-विध्वंसकारी अस्त्र भी बना लिये हैं। जनसाधारण यही मानने लगा है कि विज्ञान ही सर्वशक्तिमान परमेश्वर है। आज तो एटम ही अल्लाह है, भूत ही भगवान् बन गया है, किन्तु विज्ञान के सभी चमत्कारों को चुनौती देता हुआ भारत का एक काषाय वस्त्रधारी तरुण संन्यासी, विश्वविजेता स्वामी विवेकानन्द, भौतिकवाद के गढ़ के भीतर घुस कर उद्‌घोषणा करता है—**'तुम सब प्रभु की सन्तान हो, अमर आनन्द के हिस्सेदार, पवित्र और पूर्ण आत्मा।.....अरे शेरो! जागो, उठो और यह भ्रम उखाड़ कर परे फेंक दो कि तुम भेड़-बकरी हो। तुम अजर-अमर-अविनाशी, स्वतंत्र एवं आनन्द-निकेतन आत्मा हो। तुम भूत या पदार्थ नहीं हो, तुम केवल देहमात्र नहीं हो। पदार्थ तो तुम्हारा दास है, तुम पदार्थ के गुलाम कभी नहीं हो।'** वास्तव में देखा जाय तो विज्ञान के सारे आविष्कार मनुष्य ने ही किये हैं। स्वयमेव पदार्थ ने कोई चमत्कार नहीं किया। पदार्थ तो जड़ है, मानव में ही चैतन्य है। मानव के भीतर का चैतन्य एक स्वयंसिद्ध सत्य है। न उससे इन्कार किया जा सकता है और न उसे प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता है। वह स्वयं प्रमाणित है। फ्रेंच दार्शनिक देकार्त कहता है कि जितना मैं अपनी ही हस्ती पर सन्देह करता हूँ, उतना ही अधिक यह प्रमाणित होता है, क्योंकि सन्देह, बिना सन्देह करने वाले व्यक्ति के नहीं हो सकता। अतः मेरा सन्देह प्रमाणित करता है कि मैं अवश्य हूँ। अब मानव के भीतर का चैतन्य कहाँ से आया? जड़ तथा चेतन में बड़ा अन्तर है। मैं जानता हूँ कि एटम क्या है तथा एटम बम कितना विध्वंसकारी है, किन्तु एटम को स्वयं नहीं पता कि मुझे एटम कहते हैं तथा मुझमें कितनी शक्ति निहित है। मैं जंगल में वृक्षों को गिनता हूँ, वृक्ष मुझे नहीं गिनते। माली उद्यान को पहचानता है, उद्यान माली को नहीं पहचानता। बेचारी ऑक्सीजन गैस को स्वयं नहीं पता कि वह ऑक्सीजन है। अतः महिमा पदार्थ की नहीं, पदार्थ के ज्ञाता की है।

अब विश्व भर के वैज्ञानिक लाखों प्रयत्न करने के पश्चात् भी जड़ पदार्थ से चैतन्य जीवन पैदा नहीं कर सके हैं। पत्थर से दूध नहीं निचोड़ा जा सकता क्योंकि

उसमें वह तत्त्व है ही नहीं। हर ईमानदार व्यक्ति की चेतना विज्ञान के जड़वाद को चुनौती देती हुई प्रश्न करती है कि यदि पदार्थ ही अन्तिम सत्य है तो उसमें चेतन जीवों को उत्पन्न करने की शक्ति होनी चाहिए? पर मुर्दा जो स्वयं चैतन्यहीन है वह दूसरों को चैतन्य कैसे प्रदान कर सकता है?

आज कुछ महान् वैज्ञानिक ही विज्ञान में विश्वास खो बैठे हैं। सर जेम्स जीन्स, एडिंगटन, आईंस्टीन, श्रोडिंजर तथा प्रभृति महान् वैज्ञानिक पदार्थ से परे किसी चैतन्य की सत्ता में विश्वास करने लगे हैं। सर जेम्स जीन्स ने के 'रिपब्लिक' का निम्न रूपक देकर कहा है कि भौतिक विज्ञान का ज्ञान केवल सांकेतिक है, सत्य नहीं। कुछ कैदी एक ही पंक्ति में इस प्रकार शृंखलाबद्ध है कि वे केवल सामने ही देख सकते हैं। उनके पीछे अग्नि जल रही है। उनके और अग्नि के बीच में एक मंच पर कुछ व्यक्ति आ-जा रहे हैं। कैदियों को सामने की दीवार पर केवल उनकी छाया ही दिखाई देती है, असली व्यक्ति दिखाई नहीं देते। इस उपमा में जीन्स ने भौतिक वैज्ञानिकों को उन शृंखलाबद्ध कैदियों के समान कहा है जो सत्य को तो नहीं देखते पर उसकी अस्थिर छाया मात्र को ही सत्य मान लेते हैं।

उस के पीछे सत्य की ओर जाने का प्रयत्न प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानवेत्ता श्रोडिंजर ने किया। उसने एटम का विश्लेषण करते हुए देखा कि अन्त में इलैक्ट्रोन, प्रोटोन सब समाप्त होकर केवल एक 'रेडियोएक्टिव एनर्जी' एक अपदार्थमयी शक्ति ही बचती है, जो न जगह घेरती है और न वजन रखती है। अतः वह 'पदार्थ' नहीं है। भौतिकवाद के ऊँचे दुर्ग के मूल में यह प्रबलतम प्रहार हुआ है। या तो भूत की परिभाषा बदलनी पड़ेगी या यह मानना पड़ेगा कि विश्व की अन्तिम सत्ता भौतिक नहीं है।

महानतम वैज्ञानिक आईंस्टीन ने तो स्पष्ट कर दिया कि विज्ञान का सारा ज्ञान सापेक्ष एवं सीमित है, अनन्त ज्ञान इससे परे है। भौतिक ज्ञान को सीमित कह कर भगवान् शंकराचार्य ने भी यही बात कही थी। आईंस्टीन के मत में निरपेक्ष गति तथा निरपेक्ष स्थिरता एक ही तत्त्व के दो नाम हैं। यजुर्वेदान्तर्गत ईशा-वास्योपनिषद् में इसी आत्म तत्त्व के विषय में कहा गया है—

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वंतिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

अर्थात् यह आत्मा निरन्तर गतिमान है तथा नितान्त स्थिर है, यह दूर से भी दूर है तथा निकट से भी निकट है। यह सब के भीतर भी है तथा सबके बाहर भी है।

विज्ञान कहता है पदार्थ ही चरम सत्य है और पदार्थ वह है जो जगह घेरता है और भार रखता है। भौतिकवाद इन्द्रियगम्य बाहरी जगत् को ही सत्य मानता है, किन्तु इन्द्रियों पर भरोसा करना कहाँ की बुद्धिमानी है। यदि आत्मा अथवा परमात्मा

को इसलिये असत्य माना जाये कि वे दिखाई नहीं देते तो हमें स्वयं, हमारी रीढ़ की हड्डी दिखाई नहीं देती, क्या वह नहीं है? निगोड़ी आँख का भरोसा ही क्या? वह एक सीमा के परे देख ही नहीं सकती। सूर्य आँख को चलता हुआ भासता है, पर वास्तव में वह चलता नहीं, धरती स्थिर दिखाई देती है, पर वस्तुतः वह बड़ी भारी गति से निरन्तर अपने अक्ष पर भी घूम रही है तथा सूर्य की प्रदक्षिणा भी कर रही है। इन्द्रियाँ स्वयं भी क्षणभंगुर हैं। वे शरीर के साथ पैदा होती है, उसी के संग क्षीण होती और मर जाती है। वे बेचारी चरम सत्य को कैसे जान सकती है। अनादि और अनन्त को शान्त एवं मरणधर्मा इन्द्रियाँ कैसे जान सकती हैं। यदि किसी द्रव्य का तापमान परखना हो तो तापमापक उस द्रव्य के तापमान से भी बड़े तापमान को सह सकने योग्य होना चाहिए। यदि 1000 अंश के ताप वाले द्रव्य को 100 दर्जे ताप मापने वाले थर्मामीटर से मापा जायेगा तो मापक यन्त्र तुरंत खण्ड-खण्ड हो जायेगा। यदि 10 मील लम्बी दौड़ का निर्णायक दो-चार मील दौड़ने के पश्चात् ही हांफकर गिर जाता है तो वह दौड़ में प्रथम स्थान पाने वाले का निर्णय कैसे कर सकता है। हम जानना चाहते हैं विश्व की अनादि, अनन्त सत्ता को और वह भी क्षणभंगुर, सीमित, मर्त्य इन्द्रियों के द्वारा। कबीरजी के शब्दों में—

गई पूतरी लौन की, थाह सिन्धु की लेन।
गल बल वह सिन्धु भई, कहे कौन अब बैन।।

इन्द्रियों से ऊपर मन है। पाश्चात्य दर्शन तथा मनोविज्ञान मन को ही चरम सत्ता मान बैठा है। देकार्त, बर्कले, हेगल, काण्ट जैसे विद्वान भी मन को ही आत्मा कह डालते हैं, किन्तु मन तो चंचल बन्दर की नाई है। यह मानव को खूब नचाता है, स्वयं क्षण-क्षण में बदलता रहता है, मर्त्य शरीर पर अवलम्बित है, इसे चरम सत्य मानने से तो अनर्थ हो जायेगा। मन से परे बुद्धि है। पाश्चात्य विचारक अपनी ऊँची से ऊँची उड़ान में बुद्धि के वैभव तक ही पहुँचते हैं, किन्तु यदि बुद्धि ही चरम सत्ता होती तो बुद्धि कभी भूल न करती, स्वयं सीमित न होती तथा हमें कभी पछता कर यह न कहना पड़ता—हाय ! उस समय मेरी अक्ल मारी गई थी। इसका अर्थ है हम बुद्धि की भी त्रुटियों के साक्षी, बुद्धि से भी ऊपर और कुछ हैं। हम अजर-अमर, अविनाशी, स्वयं ज्योति, प्रकाशमान, आत्मा हैं। गीता-गायक श्रीकृष्ण के शब्दों में—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्य परं मनः।
मनसस्तु परां बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।। 3/42

इन्द्रियाँ शरीर से परे हैं, इन्द्रियों से भी परे मन है, मन से भी परे बुद्धि है और जो बुद्धि से परे है वह हमारा स्वयं ज्योति ज्ञानस्वरूप आत्मा है।

यह आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है, स्वयं ज्ञेय है तथा स्वयं ज्ञाता है। ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय की त्रिपुटी आत्मज्ञान हो जाने पर एक अखण्ड चैतन्य में विलीन हो

जाती है। इसीलिये उपनिषद् कहते हैं—**'आत्मानं विद्धि'** हे मनुष्य, अपने आपको जान। ब्रह्मसूत्र गाते हैं—

अयं आत्मा ब्रह्मं—यह आत्मा ही ब्रह्म है।

पुनः **तत्त्वमसि**, वह तू ही है।

इसी भाव को महाकवि इकबाल ने प्रकट किया है—

ढूंढ़ता फिरता हूँ मैं, इकबाल अपने आपको।
आप ही गोया मुसाफिर, आप ही मन्ज़िल हूँ मैं।।

अपने आपको पाना ही सब कुछ पाना है। किसी दूसरे की उपासना किसी न किसी अंश में गुलामी की ही सूचक है चाहे वह स्वयं ईश्वर की ही उपासना क्यों न हो। वेदान्त कहता है, तू आत्मोपासक बन। वही अन्तर्यामी ब्रह्म तेरे भीतर है, तू स्वयं वह है। यही पूर्ण मोक्ष है, पूर्ण स्वातंत्र्य है, पूर्ण स्वराज्य है। जर्मनी के विचारक काण्ट का कथन है—'मानव, तू अपने आपके लिये स्वयं ही विधि बन जा।' वेदान्त की घोषणा है—हे मानव, बनने बनाने का कोई प्रश्न नहीं, तू विधि नहीं स्वयं विधानों का विधाता है, तू स्वयं ईश्वर है, केवल अपनी चर्म दृष्टि को त्याग दे, स्वयमेव आत्मालोक प्रकाशित हो उठेगा।'

नोबल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध जीव शास्त्री एलेक्सिस कैरल अपनी पुस्तक 'मैन दी अननोन' में कहती है, 'हमें बाह्यजगत् में जैसी सफलता मिली है वैसी अन्तर्जगत् में नहीं मिली वरन् प्रारम्भिक स्थिति में है। और जिस चेतन के सामर्थ्य से न्यूटन और आइस्टीन द्वारा महत्त कार्यों का निर्माण हुआ है, उसका महत्त्व हम नहीं समझ सके यह हमारा दुर्भाग्य ही है।'

× × ×

बी.बी.सी. के उद्घोषकर्ता, पत्रकार व लेखक मार्क टूली ने देहरादून के वेल्हम स्कूल के विद्यार्थियों को 69वें स्थापना दिवस पर मुख्य अतिथि के रूप में कहा—जब पश्चिम स्वयं अपने जीवनमूल्यों पर पुनर्विचार कर रहा है, तब आपका अपनी संस्कृति को बचाते हुए असली भारत बनना ज्यादा सातत्यपूर्ण है, नकली अमरीका बनने की अपेक्षा।

पर्यावरण के प्रति भारतीय दृष्टि

सृष्टि है, उसका कर्ता परमेश्वर है तो उसका विधान सृष्टि के समय से ही प्रकट है। उसे अपौरुषेय वेद कहते हैं।

मनुष्य जन्म से तीन ऋणों को लेकर आता है—देव ऋण, ऋषि ऋण एवं पितृ ऋण। भारतीय संस्कृति कृतज्ञता की संस्कृति है। कर्तव्य प्रधान अतः त्याग प्रधान, अहिंसा, करुणा, मैत्री, रागप्रधान अतः शांति प्रधान संस्कृति है।

काम या कामना बुरी नहीं है 'एकोऽहम बहुश्याम' में आद्य काम पड़ा हुआ है। धर्मानुकूल काम स्वयं ईश्वर का स्वरूप है।

प्रकृति जड़ नहीं है यह ईश्वर की सर्जनात्मक शक्ति है अतः विराट सत्ता है, मां लक्ष्मी है।

सृष्टि में मनुष्य इस अर्थ में श्रेष्ठ है कि वह अपना सर्वोच्च विकास यानी नर से नारायण बन सकता है और चूंकि वह विवेकी है अतः उसका दायित्व है कि सृष्टि का संतुलन बना रहे और सभी को उसका पोषण प्राप्त हो, सब का योगक्षेम वहन हो। इसलिए पंच महायज्ञ यथा ब्रह्म यज्ञ, ऋषि यज्ञ, पितृ यज्ञ, नृ यज्ञ और भूत यज्ञ का विधान है।

जीव, जगत् व ईश्वर एक ही ब्रह्म का पसारा होने से तीनों में तात्त्विक एकता है, सृष्टि का प्रत्येक अंग परस्पर पूरक, परस्पर सम्बन्धित एवं परस्पर अवलम्बित है।

सृष्टि में जो भी चर-अचर है एक ही विराट सत्ता का अभिन्न अंग है। अतः सृष्टि के किसी भी अंग पर प्रहार एवं शोषण स्वयं पर प्रहार है एवं शोषण है।

जहां-जहां हमने ईश्वर की विशेष विभूति देखी उसके साथ आत्मीय रिश्ता जोड़ा—इसलिए गाय पशु नहीं माता है, बैल पिता है, तुलसी का बिरवा झाड़ नहीं माता है। गंगा-जमुना, सरस्वती, नर्मदा, कावेरी आदि नदियां नहीं हमारी माता है, हिमालय पर्वत नहीं देवात्मा हिमालय है, धरती माता है, विष्णु पत्नी है, अम्बर पिता है आदि आदि। इन सबके प्रति पूज्यभाव, श्रद्धा और सेवा का भाव रखते हुए इनसे पोषण पाने के अधिकारी हैं शोषण के नहीं। इसलिए प्राचीन व मध्य भारत में कभी भी पर्यावरण प्रदूषण की समस्या खड़ी नहीं हुई लाखों वर्षों के इतिहास में।

प्रकृति के साथ हमारा सम्बन्ध माता-पुत्र का है, अतः प्रकृति माता से पालना पाने के अधिकारी हैं भोग के नहीं। अपने द्वारा प्रसवित सभी की प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति की क्षमता प्रकृति माता में है पर एक की भी इच्छापूर्ति की नहीं। आवश्यकता सीमित होती है, इच्छाएं अनन्त होती हैं।

हम सब एक ही ईश्वर की संतान होने से विश्व का हमारा सम्बन्ध भाई-बहन का है, इसलिए हम एक परिवार हैं। विवेकानन्दजी ने शिकागो धर्म सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए Brother-Sister of American कहा और तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल गूंज उठा था।

इसलिए भारत ने विश्व को ज्ञान-विज्ञान, सभ्यता-संस्कृति, कला-कौशल, धर्म-दर्शन का दान निःस्वार्थ भाव से दिया बिना किसी को हानि पहुंचाए। इसलिए भारत के जो सम्पर्क में आया वह विकसित हो गया, श्रेष्ठ हो गया, संस्कारित हो गया और इस संदर्भ में विश्ववासियों ने अपनी कृतज्ञता भी ज्ञापित की है। स्वयं मुहम्मद पैगम्बर के चाचा अबुल हिकम भारत की, अरब के कवियों की विक्रमादित्य के विषय में, वेद व्यास के विषय में राम-कृष्ण, शिव की स्तुतियां गाते हुए पाते हैं। और पश्चिम के जो सम्पर्क में आता है वह या तो समूल नष्ट हो जाता है यथा मूल अमेरीकावासी रेड इण्डियन्स, अफ्रीकावासी आदि या फिर उनके सम्पर्क में अपनी श्रेष्ठ सभ्यता संस्कृति को त्याग करवा कर उनकी बर्बर हिंसक, संस्कृति थोप दी जाती है। इस संदर्भ में भारत के मुसलमानों एवं ईसाइयों को देखें—जब वे हिन्दू थे तब हमारी तरह सरल, सहज, अहिंसक, देश भक्त थे, अब वे हिंसक, आतंकवादी, अलगाववादी बन गये हैं।

प्राचीन एवं मध्य युगीन भारत ने आर्थिक विकास का जो नमूना स्वीकार किया उस में प्रकृति के पोषक बने, विश्व के जन-जन के सेवक बने। कभी भी किसी के प्रति त्रास का कारण नहीं बने।

जब देश स्वाधीन हुआ था तभी देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने महात्मा गांधी के गांवों को विकास का केन्द्र बिन्दु मानने की उचित सलाह को ठुकराकर पाश्चात्य विकास पथ पर देश को आगे बढ़ा दिया था।

पाश्चात्य विकास पथ केन्द्रीकृत, विपुल ऊर्जाभक्षी, पूंजी बहुल, बेरोजगारी वर्धक, व्यापक पशु हिंसा और प्रकृति विनाशक है।

महात्मा गांधी ने जो भारतीय विकास पथ सुझाया था वह विकेन्द्रित, अल्प ऊर्जाभक्षी, अल्प पूंजी आधारित, रोजगार बहुल और प्रकृति से सुसंगत एवं अहिंसा पर आधारित था। इंग्लैण्ड ने जो अपना विकास किया है एशिया के शोषण के बल पर, वैसा ही विकास भारत का करना हो तो पूरी दुनिया का शोषण करना

पड़ेगा ऐसा गांधीजी का स्पष्ट मंतव्य था। क्योंकि इंग्लैण्ड भारत के एक राज्य के समान है। और सारी दुनिया के शोषण पर खड़ा अमेरीका आज लड़खड़ा रहा है।

अतः आज पश्चिम में ही पाश्चात्य विकास पथ को वहां के दूरदर्शी विद्वानों ने चुनौती देना आरंभ कर दिया है और चेतावनी दी है कि प्रकृति के साथ खिलवाड़ बंद नहीं की गई तो समस्त मानवजाति के अस्तित्व पर संकट छा जायेगा।

दुनिया के बाजारों पर कब्जा करने की जो होड़ चली है और अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए मानव संहारक अस्त्रों के भण्डार बनाए जा रहे हैं उसके कारण समूचा विश्वयुद्ध के कगार पर खड़ा दिखाई दे रहा है। एक ठीकरी पड़ने की देर है और तृतीय विश्वयुद्ध तेजी से भड़क सकता है। और यह युद्ध आणविक होगा जिसमें दुनिया के 200 करोड़ लोग मारे जायेंगे तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। पर्यावरण का जो विनाश होगा वह अलग से। पाकिस्तान और चीन के कारण भारत को भी क्षति अवश्य पहुंचेगी।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या के हल के लिए पर्यावरणविदों के कितने ही सम्मेलन हुए किन्तु कहीं से भी इस समस्या का हल निकल नहीं पाया। समाधान के लिए आखिरकार सब ने भारतीय चिन्तन की ओर देखा।

बिल क्लिंटन जब राष्ट्रपति थे तो उनके साथ में उपराष्ट्रपति अलगोर थे। इस समय दुनिया में ग्लोबल वार्मिंग के बारे में सर्वाधिक इनिशिएटिव लेकर प्रचार करने वाला कोई व्यक्ति है तो वह अलगोर हैं। अलगोर उस समय उपराष्ट्रपति थे और वहां पर पृथ्वी सम्मेलन हुआ था। उस पृथ्वी सम्मेलन के उद्घाटन में अलगोर ने एक वाक्य कहा था कि पिछले तीन सौ सालों से हम लोग गलत मार्ग पर चल रहे हैं। अब समय आ गया है कि हम पुनर्चिन्तन करें और मार्गदर्शन के लिए पूर्व की ओर मुड़ें। इस समय और इस दिशा में जाना है तो होलिस्टिक थिंकिंग का जो कॉन्सेप्ट, जो मदर अर्थ का कॉन्सेप्ट भारत ने बहुत पहले दिया है, उसे अपनाएं। उस कान्फ्रेंस में अथर्ववेद का जो भूमि सूक्त है वह दुनिया के इकोलोजी के लोगों के लिए मास्टर प्रिन्ट हो सकता है, उसका अंग्रेजी अनुवाद सबको दिया गया। सबने कहा कि इसमें हमने जो कुछ सोचा वह सब कुछ है। उसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। जो परिदृश्य खड़ा हुआ है इसमें आदमी को लगता है कि हमें कहीं इधर आना पड़ेगा।

संयुक्त राष्ट्र संघ राष्ट्र के महासचिव कोफी अन्नान ने अगस्त 2000 में 'मिलेनियम रीलिजियस पीस समिट' के समापन सम्मेलन में हिन्दुओं का आह्वान करते हुए कहा—हिन्दू धर्म में कई सर्वहितकारी तथा उच्च सिद्धांत हैं। हिन्दुओं ने यह सब कुछ अपने तक सीमित रखा है। उन्होंने हिन्दुओं से शान्ति के नाम पर

आह्वान कर निवेदन किया कि 5 अरब गैर-हिन्दुओं को बिना धर्म परिवर्तन के ये गुण सिखायें ताकि उन मूल्यों पर जीकर विश्व शांति स्थापित कर सकें और सर्वहितकारी तथा पराविद्या का ज्ञान भी लोगों को मिल सके।

स्पष्ट है भविष्य में विश्व को शांति मंत्र देने का कार्य भारत को ही करना होगा क्योंकि केवल भारत के पास ही वह आध्यात्मिक दृष्टि है, तत्त्वज्ञान है जो मनुष्य, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि में एक ही आत्मा का अस्तित्व देखता है और इसलिए 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद दुःखभागभवेत्' की उदघोषणा कर सकता है।

यदि मुझसे पूछा जाए कि किस गगन के नीचे मानव मन ने ऊंची से ऊंची प्रतिभाओं का विकास किया है, जीवन की बड़ी से बड़ी समस्याओं पर विचार कर ऐसे ऊंचे हल ढूंढ़े हैं कि जो प्लेटो तथा काण्ट का अध्ययन करने वाले विद्वानों के ध्यान को भी आकर्षित करने का अधिकार रखते हैं तो वह महान् देश, भारत है। अगर मैं अपने से पूछूं कि हम—यूरोप के वासी—जो अब तक केवल ग्रीक, रोमन तथा यहूदी विचारों में पलते रहे, किस साहित्य से वह प्रेरणा ले सकते हैं जो हमारे भीतरी जीवन का परिशोधन करे, उसे उन्नति के पथ पर अग्रसर करे, व्यापक बनाये, विश्वजनीन बनाये, सही अर्थों में मानवीय बनाये जिससे हमारे इस पार्थिव जीवन को ही नहीं हमारी सनातन आत्मा को प्रेरणा मिले, तो वह भारत देश है।

—**मैक्समूलर**

× × ×

विज्ञान और प्रविधि के विकास के साथ हो सकता है कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक सारा संसार अमरीका के प्रभाव क्षेत्र में आ जाए। किन्तु इक्कीसवीं शती में, जब विज्ञान का स्थान अध्यात्म लेगा और तकनीक का स्थान धर्म लेगा तब भारत ही सारी मानव-जाति का आध्यात्मिक गुरु होगा।

—**ब्रिटिश इतिहासकार डॉ. अरनाल्ड टोयनबी**

पर्यावरण के प्रति पश्चिम की दृष्टि

पर्यावरण पर पश्चिम की अवधारणा बाइबिल पर अवलम्बित है।

आदम-हौवा ने निषिद्ध फल खाया और शापित होकर स्वर्ग से च्युत हुए। स्वर्ग में बिना परिश्रम के सारा उपभोग प्राप्त था।

शापित होने पर पृथ्वी पर सश्रम उपभोग प्राप्त होगा।

सारी प्रकृति और उसमें वास कर रहे सब जीव-जन्तु यहां तक कि स्त्री भी नर के उपभोग के लिए है। स्त्री की, हौवा की उत्पत्ति ही आदम के एकाकीपन को दूर करने के लिए हुई, उसके मनोरंजन के लिए हुई। उसमें प्राण या आत्मा नहीं है। और वह नर की सेवा के लिए है। चूंकि वह सेवा के लिए है अतः पादरियों के कहे अनुसार चलना चाहिए। पादरियों के कहे अनुसार सेवा न प्रस्तुत करने पर उन्हें चुड़ैल घोषित कर निर्मम ढंग से मारा जाता रहा पांच सदी तक लाखों की संख्या में ।

प्रकृति अपने वैभव को, भोग को छिपाये रखती है, उससे संघर्ष कर उसे छीनना पड़ता है। उसके नख और दांत रक्तरंजित हैं। मनुष्य और प्रकृति का सम्बन्ध शत्रुता का है, संघर्ष का है। इस पर विजय प्राप्त कर इससे भोग प्राप्त कर सकते हैं।

सारी प्रकृति एवं जीव-जन्तु निर्जीव हैं। स्वचालित यंत्र है।

प्रकृति हमारी जननी नहीं दासी है, वरेण्या या पूज्या नहीं भोग्या है। इसके प्रति किसी कर्तव्य का विधान बाइबिल नहीं करती।

God ने मनुष्य को अपने अनुरूप रचा है इसलिए भी वह श्रेष्ठ है और सारी सृष्टि के उपभोग का अधिकारी है।

इस संदर्भ में भारतीय दृष्टि यह है कि मनुष्य इस दृष्टि से श्रेष्ठ है कि उसे ही विवेक की शक्ति प्राप्त है, उसे जो योनि प्राप्त है इसमें वह अपना सर्वोच्च विकास कर सकता है, आगे की यात्रा या पूर्णता की यात्रा कर सकता है। इसी दृष्टि से मानवयोनि श्रेष्ठ है व विवेकी है अतः प्रकृति का संतुलन बनाये रखना

और सभी के पोषण का दायित्व उसका है न कि निरा उपभोग का। मनुष्य भी सृष्टि के अन्य अवयवों की तरह एक अवयव मात्र है। अतः उपभोग को संतुलित बनाये रखने का दायित्व उसका है।

ईसा God की इकलौती संतान है जो उसे अपना व्यक्तिगत त्राता, मुक्तिदाता नहीं मानता वह Hidden है, नरकगामी है, शैतान प्रेरित है, राक्षस प्रेरित है, मूर्ति पूजक है, पेगनवादी है, बहुदेववादी है। अतः निर्मम ढंग से दण्ड का, वध का पात्र है। मूर्तिपूजक, प्रकृतिपूजक, बहुदेववादी इनके यहां सबसे बड़ी गाली है, सबसे बड़ा अपराधी है। इसने अपने से भिन्न समाजों को निर्मम ढंग से शोषण की प्रेरणा दी, वध की प्रेरणा दी। बाइबिल घोर द्वैतवादी है।

इन सब बातों का प्रभाव पाश्चात्य दर्शन पर पड़ा। वहां का दर्शन बाइबिल की दासी रहा है, बाइबिल से स्वतंत्र चिंतन सम्भव नहीं था—

प्रसिद्ध दार्शनिक फ्रांसिसि बेकन कहते हैं—प्रकृति जड़ व अंधी है। अपने रहस्य को, धन को छिपाए रखती है, इससे भोग प्राप्त करने के लिए छीनना पड़ता है। प्रकृति स्त्री के समान है जिससे रहस्य उगलवाने के लिए बलपूर्वक उसकी बांह को मरोड़ना आवश्यक है।

देकार्ते ने यांत्रिकी नियमों की सर्वोपरिता पर बल देते हुए क्रिश्चियन अवधारणा की पुष्टि की है कि चेतना केवल मनुष्य में है। प्रकृति जड़ है उसके नियम यांत्रिक है। पशु-पक्षी आदि मानवेतर प्राणी जगत् भी चेतना से रहित हैं, वे स्वचालित यंत्र की भांति हैं। उनके व्यवहार में जो चेतना एवं बुद्धि की झलक मिलती है एक जटिल यंत्र की यांत्रिक प्रतिक्रिया मात्र है। इसके द्वैतवाद ने प्रकृति के निर्मम शोषण की प्रेरणा दी है।

न्यूटन—सारी सृष्टि स्वचालित यंत्र है जो कार्य-कारण की श्रृंखला से बंधी हुई है उसमें कोई ईश्वरीय चेतना का हाथ दृष्टिगोचर नहीं होता।

डार्विन—योग्यतम को ही जीवन जीने का अधिकार है। योग्यतम को प्रकृति चुन लेती है। और सब नष्ट हो जाते हैं।

विकास कुछ विशिष्टजनों का ही होता है अन्य दुर्बल एवं पिछड़ों को उनके विकास के Tool (औजार) बन जाना चाहिए। अपने हितों, स्वार्थों व सुखों का बलिदान देकर भी उनके लिए अपनी सेवा समर्पित करनी चाहिए। उसी में उनके जीवन की सार्थकता है।

नीत्शे का Superman की भी ऐसी अवधारणा है जिसमें Superman के विकास के लिए अनेकों को अपना बलिदान देना आवश्यक है।

इन्हीं सिद्धान्तों से उपजा White men burdon श्वेतों को अश्वेतों को, असभ्यों को सभ्य करने का दायित्व वहन करना पड़ रहा है।

पाश्चात्य अर्थशास्त्र ने भी इन विचारों को पोषण दिया। पाश्चात्य अर्थशास्त्र एवं मार्क्सवाद तीन मान्यताओं को लेकर चलता है। हर मानव स्वार्थी है। जीवन का लक्ष्य अर्थ ही है तथा अर्थशास्त्र के व्यापार पर नैतिकता या धर्म या शास्त्र का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए। इन तीनों मान्यताओं का तार्किक निष्कर्ष लंदन विश्वविद्यालय के प्राध्यापक डॉ. बेन्हम के उस ग्रंथ Economics of Prostitution में मिलता है। जिसमें वे कहते हैं कि एक माता या पत्नी मिलकर जितना कार्य करती हैं वह दो नौकरानियां मिलकर कर सकती हैं इसलिए एक माता व पत्नी का आर्थिक मूल्य लगभग 50 पौण्ड है। उसकी तुलना में एक वेश्या उससे 100 गुणा अधिक राशि प्रतिमाह कमा लेती है, इसलिए शुद्ध अर्थशास्त्र की दृष्टि से एक वेश्या का कार्य माता या पत्नी के कार्य से अधिक लाभकारी है।

एडमस्मिथ—भलाई करने का प्रयत्न मत करो। भलाई को सह-उत्पादन के रूप में प्रकट होने दो। अर्थात् भलाई तभी करो जब तुम्हारा कोई स्वार्थ सिद्ध हो।

लार्ड काईन्स—एक शताब्दी तक हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि बुराई ही परिणामकारी है, इसी के आधार पर हम गरीबी की अंधेरी सुरंग से निकलकर प्रकाश का दर्शन कर सकेंगे।

इन सिद्धान्तों ने भी प्रकृति के अंध शोषण को प्रश्रय दिया। अन्य मानव सभ्यताओं के अंध शोषण को जन्म दिया।

यूरोप का मध्ययुग तो ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से अंधकार का युग माना जाता है। क्योंकि पादरियों की यह मान्यता थी कि ईसा से पहले जो कुछ भी दुनिया में ज्ञान-विज्ञान था वह ईसा के आने के बाद व्यर्थ हो गया। इसलिए अब केवल ईसा के उपदेशों को ही पढ़ने की जरूरत है एवं चर्च के आदेशों के पालन की आवश्यकता है। बाइबिल पढ़ने का भी अधिकार केवल उच्च वर्गों व पादरियों को था। ईसाइयत के नाम पर पादरियों ने अपने समाज को दुनिया के एवं ईसा के पूर्व के अपने देश के भी ज्ञान-विज्ञान से वंचित कर दिया। यूरोप के देशों में स्वास्थ्य चिकित्सा सम्बन्धी जो पुरानी परम्परा थी वह भी धीरे-धीरे लुप्त हो गई। इस प्रकार यूरोप का मध्ययुग अंधकार का युग कहा जाता है।

पर उस समय भारत के सम्पर्क से अरब में ज्ञान दीपक टिमटिमा रहा था। और भारतीय ज्ञान-विज्ञान एवं यूनानी ज्ञान-विज्ञान अरब के माध्यम से यूरोप पहुंचा।

संयोगवश इटली के एक धनी व्यापारी को अपने एक मित्र के यहां यूनान के प्राचीन विज्ञान और कलाओं से सम्बन्धित कुछ पुस्तकें मिली जो उस व्यक्ति

ने पादरी से छुपा रखी थी। क्योंकि पादरी लोग सभी पुरानी पुस्तकें जला देते थे। यूरोप की अनेक पुस्तकालयों की पुस्तकें जलाकर भस्म की जा चुकी थी।

यूनानी ज्ञान-विज्ञान की उन पुस्तकों को पढ़कर इटली का वह व्यापारी रोमांचित हो उठा। उसने अपने कुछ लेखक मित्रों से उन पुस्तकों की हस्तलिखित प्रतिलिपियां बनाकर शहरों में गुपचुप तौर पर प्रबुद्ध लोगों के पास पहुंचाई गयी। इससे इटली वासी प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को जानने के लिए छटपटा उठे।

इस बीच मार्कोपोलो नाम का एक ईसाई कुबलाइ खान के दरबार पकिंग (उन दिनों चीन मंगोलों की अधीनता में था जो कि शताब्दियों तक उनके अधीन में रहा था) में गया और वहां से बहुत सारी जानकारियां तथा घड़ी, नक्शे, कागज, दिशामापीयंत्र तथा खाने-पीने के कांच के बर्तन, लकड़ी के बने कांटें, छुरी, चम्मच आदि लेकर आया। मार्कोपोलो ने चीन और भारत दोनों की यात्रा की थी और दोनों जगह समाज जीवन को ध्यान से देखा था और अपने यात्रा संस्मरण लिखे जिसकी हस्तलिखित प्रतिलिपियां इटली एवं आसपास के लोगों ने प्राप्त की। ईसाई पादरियों एवं चर्च के अत्याचारों से पिस रहे यूरोप के प्रबुद्ध समाज को इस ज्ञान-विज्ञान के द्वारा आशा की नयी किरण दिखी और वे चर्च की मान्यताओं से बाहर जाकर नयी-नयी खोज करने लगे। मार्कोपोलो के वर्णन में भारत की खूब प्रशंसा पढ़कर कुछ दुस्साहसी समुद्री नाविक भारत की खोज में निकल पड़े। ईसाइयत से पिण्ड छुड़ाकर ईसाइयत के विरोध में ही यूरोप में पुनर्जागरण प्रारम्भ हुआ जिसे राज्य ने संरक्षण देना प्रारम्भ किया क्योंकि व्यापार, सत्ता और युद्ध विज्ञान में उन खोजों से राज्य को बहुत मदद मिलती थी।

इस प्रकार भारतीय ज्ञान-विज्ञान, ग्रीक ज्ञान-विज्ञान एवं चीन के ज्ञान-विज्ञान के सम्पर्क में आया तब से नवजागरण काल यूरोप में प्रारम्भ हुआ।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान, चीन के ज्ञान-विज्ञान, यूनानी ज्ञान-विज्ञान को लेकर यूरोप आगे बढ़ गया, औद्योगिक क्रान्ति वहां हो गयी भारत या चीन आदि में क्यों नहीं हुई जबकि भारत ज्ञान-विज्ञान में 18वीं शताब्दी तक दुनिया में सबसे आगे था। इस दृष्टि से धर्मपालजी की पुस्तक Science and Technology in the 18th Century in India देखने योग्य है। भारत की खोजों एवं वैज्ञानिक सूत्रों को लेकर यूरोप आगे बढ़ गया और स्वयं भारत पिछड़ गया।

इसका एक कारण भारत के तत्त्वज्ञान ने कभी भी प्रकृति एवं अन्य मानव समाजों के शोषण की अनुमति नहीं दी। उसने कभी भी दूसरे समाजों के प्रति द्वैत, घृणा, हिंसा को प्रश्रय नहीं दिया। सबके प्रति एकात्मभाव था।

मानव के सदृश ही सभी देशों का भी उत्थान व पतन, वैभव और पराभव का, विस्तार एवं संकुचन का काल आता है। वह समय भारत के राजनीतिक,

सांस्कृतिक पराभव का काल था और यूरोप के राजनैतिक उद्‌भव का, विकास का, विस्तार का काल था।

यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति उसके साम्राज्य विस्तार और साम्राज्यों के निर्मम शोषण से जुड़ा हुआ है। जैसे-जैसे उन्होंने अपना साम्राज्य विस्तार किया, अन्य देशों व मानव समाज को निर्मम ढंग से लूटा, नष्ट किया, लूट के बल पर मुफ्त (Free) का कच्चा माल, नाम मात्र की मजदूरी पर मजदूर और मनमाने दाम पर पक्के मालों को उन देशों पर थोपा। इसने औद्योगिक क्रान्ति को जन्म दिया।

उन्होंने अन्य देशों को श्मशान बनाकर, पूरे एशिया को श्मशान बनाकर, उसके लूट के धन से इंग्लैण्ड में विकास किया।

अकेला अमेरीका दुनिया की 40% खनिज सम्पदा का उपयोग कर आज अमरीकी वैभव का महल बन खड़ा है।

ऐसा विकास यदि भारत को करना है तो गांधीजी कहा करते थे—'इसके लिए हमें सारी दुनिया का शोषण करना होगा। उसको श्मशान बनाना पड़ेगा।'

फिर प्रश्न उठता है कि यूरोप ने जो विकास साधित किया है क्या सचमुच उसे विकास कहा जा सकता है? क्या उसके लिए स्वयं मनुष्य के अस्तित्व के लिए ही खतरा उत्पन्न नहीं कर दिया है?

मनुष्य की जो मूलभूत आवश्यकता है—पृथ्वी, अन्न, जल, वायु, आकाश सबको प्रदूषित कर दिया है। इसने परिवार व्यवस्था, समाज व्यवस्था को नष्ट कर दिया है। जहां के बच्चे स्नेह से रहित हैं, बुढ़ापा सम्मानहीन Old house में कटता है, जवानी अतिशय चंचल है कभी भी तलाक में बदल जाती है। यह विकास है या सर्वनाश की ओर प्रस्थान है?

इसलिए आज पश्चिम के सुलझे हुए विचारक यह स्वीकारने लगे हैं कि प्रकृति एवं अन्य मानव समाज पर हुए निर्मम अत्याचार के लिए ईसाइयत उत्तरदायी है। ऐसा स्पष्ट रूप से ब्रिटिश इतिहासकार अर्नाल्ड टायनबी स्वीकारते हैं। और यह भी स्वीकारते हैं कि मानव अस्तित्व को बचाये रखना है, उसको आत्मविनाश में नष्ट नहीं होना है एवं सारे संसार की सुख-समृद्धि, शांति चाहिए तो भारतीय विचार की शरण में आना पड़ेगा क्योंकि वह पूरे विश्व को एक परिवार के रूप में देखती है और सभी में एक ही आत्मा का वास मानती है। अतः पंथवाद नहीं सर्वेश्वरवाद ही इसका आधार है (जो सबमें एक ही ईश्वर या आत्मा का वास मानती है)।

पश्चिम ने अर्थ को साध्य, परम लक्ष्य मानकर बाजारवाद, उपभोक्तावाद को जन्म दिया है। उनका वैश्वीकरण भी अपने बाजारवाद, उपभोक्तावाद को

सुरक्षित करने का एक उपाय है जो अपने देश के पक्ष में सारे विश्व के बाजारों का शोषण करना चाहता है।

भारत ने अर्थ को साध्य नहीं साधन माना अतः वेद ने परिवारवाद को जन्म दिया। परिवार के सभी सदस्यों को उचित पोषण और विकास का अवसर मिले इसका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाता है। भारत ने सदा ज्ञान-विज्ञान का दान सारे विश्व को विश्व मंगल की भावना से, निःस्वार्थ भाव से, अपने निष्कलंक चरित्र और निर्मल ज्ञान के द्वारा दिया, बिना किसी देश की स्वाधीनता छीने, बिना किसी देश के अर्थ पर डाका डाले, मां-बहिनों के शील पर आघात किए।

इसलिए पश्चिम के सुलझे हुए सभी मनीषी यह स्वीकारने लगे हैं कि भारत के पास ही वह चिन्तन, वह भावना, वह व्यवस्था, वह कार्य पद्धति है, कर्तृत्व है वह व्यक्तित्व है, वह इतिहास, वह चरित्र है, वह दर्शन है, वह साहित्य है जो सारे विश्व को एक परिवार के रूप में मानती आयी है।

अब तो पाश्चात्य विज्ञान भी भारतीय चिन्तन के निकटतम आता जा रहा है।

न्यूटन के पश्चात् Relativity theory और Quantum theory ने विज्ञान की दिशा ही बदल दी और वह पूर्णतः वेदान्त चिन्तन के निकट, वैदान्तिक निष्कर्षों को स्वीकार कर रहे हैं।

Quantum theory तथा 'गाया सिद्धान्त' ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह सृष्टि एक नियमबद्ध यंत्र नहीं है। सारी सृष्टि के अन्दर एक चेतन शक्ति है Cosmic mind है। एक गणितज्ञ है फलतः सारी सृष्टि में एक क्रम है, समन्वय है, संतुलन है, ताल है, लय है, परस्पर सम्बन्धित है, परस्पर जुड़ा है, परस्पर निर्भर है। One integral whole है। वह स्वीकार रही है कि सम्पूर्ण भूमण्डल अन्योन्याश्रित है। हमारी पृथ्वी एक जीवित संस्थान है और हम मनुष्य के रूप में इस जीवन्त संस्थान में एक जैव अवयव हैं।

अतः प्रकृति का शोषण स्वयं का शोषण है। प्रकृति के प्रति हिंसा, बलात्कार स्वयं के प्रति हिंसा, बलात्कार है। स्वयं के अस्तित्व को खतरे में डालना है। अतः प्रकृति का शोषण तुरन्त बंद होना चाहिए। प्रकृति को इतना पालतू पशु नहीं बनाया जा सकता जो हर समय हमारी आज्ञा में चले।

प्रकृति न निरीह है, न बेचारी है। यह एक विराट सत्ता है जो उसके नियमों का निरन्तर उल्लंघन करने वाले को दण्डित करती है। वह दण्ड स्वरूप भूकम्प लाती है, सुनामी लाती है। अकाल, अनावृष्टि, अतिवृष्टि लाती है।

पश्चिम की जो सज्जन शक्ति है, मनीषीवृन्द हैं वह भारतीय निष्कर्षों को स्वीकारते जा रहे हैं और बार-बार पश्चिम की राज्य सत्ता को सावधान कर रहे

हैं कि वह अपने चिन्तन व कार्य-पद्धति में परिवर्तन नहीं करेगा तो नाश को प्राप्त होगा। स्वामी विवेकानन्द ने जो भविष्यवाणी की थी वह स्वीकारते जा रहे हैं....पश्चिम ज्वालामुखी पर्वत पर खड़ा है। उसने यदि आध्यात्मिक आधार को नहीं स्वीकारा तो चिथड़े-चिथड़े में किसी भी समय बिखर सकता है।

पर पश्चिम की राजसत्ता पर दुष्ट शक्तियों, आसुरी शक्तियों का वर्चस्व है। वे तो विश्व की सुरक्षा के आधार हो सकने वाले भारत को ही नष्ट करने पर तुले हैं।

पश्चिम के साथ दूसरी कठिनाई यह है कि आज उनका सारा विकास, विज्ञान की उपलब्धियां, चमत्कार, वैभव आदि सब प्रकृति के शोषण, अविकसित देशों के शोषण पर खड़ा है। और वे अपने मन-मानी सुख-भोग विलास के इतने अभ्यस्त हो गए हैं कि उससे पीछे जाना उनको शक्य नहीं लगता। इसलिए बार-बार की चेतावनी के बाद भी वे अपनी भोगवादी जीवनशैली की उपरामता के लिए प्रस्तुत नहीं हैं। उनका जीवन स्तर जैसा है वैसा ही बना रहे, ऐसा ही विकास होता रहे इसके लिए उन्होंने अविकसित राष्ट्रों को अपनी आकांक्षापूर्ति के लिए शिकार बनाया है। आज राजनीतिक गुलामी दुनिया से उठ-सी गयी है।

इससे अनेकों परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पुलिस की, सैनिकों की व्यवस्था करनी पड़ती है, जन-आन्दोलनों को झेलना पड़ता है। स्वयं मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है।

इसलिए आर्थिक गुलामी का दौर चल पड़ा है जिसमें उनके बाजारों पर कब्जा करके उनका शोषण करते हैं और उस देश की राजनीतिक सत्ता को अपने हितों के अनुसार प्रभावित करते हैं, संचालित करते हैं। उन देशों के राजनेताओं के द्वारा अपने हित में देश का शोषण करवाते हैं। उन पर मनमानी शर्तें लादते हैं, उनकी श्रेष्ठ संस्कृति को नष्ट कर उन देशवासियों के मानस को अपने हित में मानसिक गुलाम बनाने का प्रयास करते हैं ताकि वे उनका बाजार बन जाएं, उपभोक्ता बन जाएं और सदा बने रहें।

ब्रिटिश इतिहासकार डा. अरनाल्ड टोयनबी ने सम्पूर्ण मानव जाति की यात्रा कथा का सर्वेक्षण करने के बाद यह लिखा—'यह बिल्कुल स्पष्ट होता जा रहा है कि उस अध्याय का अन्त भारतीय उपसंहार से ही होगा जिसका प्रारंभ पाश्चात्य है। यदि मानव जाति का आत्म विनाश में अन्त न होना हो तो यहाँ हमारे पास वह दृष्टिकोण और भावना है जिससे मानव जाति के लिए एक परिवार के रूप में विकास की सम्भावना है और इस आणविक युग में सर्वनाश का यह एकमात्र विकल्प है।

वर्तमान में हिन्दू धर्म के प्रति बढ़ता विश्व का आकर्षण

हम सब जानते हैं ग्रामोफोन की रिकॉर्ड प्लेट का आविष्कार थॉमस अल्वा एडीशन ने किया, तो उसमें उस समय किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के बोल सर्वप्रथम रिकॉर्ड करना चाहा, इस दृष्टि से मैक्समूलर से सम्पर्क किया। मैक्समूलर एडीशन का बहुत मान करते थे। इस दृष्टि से एडीशन को जिस समय यूरोप के अधिकांश विद्वान इंग्लैण्ड के सम्मेलन में एकत्रित होने वाले थे, उसमें बुलाया। एडीशन निर्धारित तिथि पर उक्त सम्मेलन में पहुंचे। जहां उनका भव्य स्वागत हुआ। विद्वानों के बीच में एडीशन ने अपने यंत्र में मैक्समूलर को बोलने को कहा। तब मैक्समूलर ने एक वचन कहा। जब कुछ समय बाद उस वचन की पुनः हू-ब-हू आवाज को श्रोतागण सुनकर करतल ध्वनि से स्वागत किया तो इस आवाज के विषय में मैक्समूलर ने स्पष्ट किया कि संस्कृत भाषा में ऋग्वेद का प्रथम मंत्र है। वेद मानव जाति का प्रथम प्रकाश है, आलोक है, पुस्तक है। यह उस समय की बात है जब यूरोप के लोगों ने बन्दर की पूँछ काटकर मनुष्य बनना नहीं सीखा था, कच्चा मांस खाते थे, अपने तन को पत्तों से ढकते थे। उस प्राचीन काल में भारतीयों ने उच्च सभ्यता का विकास कर लिया था और उन्होंने वेद के रूप में दुनिया को सर्वकल्याणकारी दर्शन उपलब्ध कराया। मैक्समूलर ने एडीशन से इस रिकॉर्ड को पुनः बजाने का अनुरोध किया। इस बार जब 'अग्निम् इळे पुरोहितम्' की ध्वनि हुई तो वहां उपस्थित समुदाय भारतीय मनीषियों के प्रति श्रद्धा भाव से मौन होकर खड़े हो गये। इस बार करतल ध्वनि के स्थान पर श्रद्धा युक्त शान्ति थी।

न्यूजर्सी में स्थापित अमेरीका की सेटन हाल यूनिवर्सिटी जिसमें 10,800 छात्र हैं सभी छात्रों के लिए गीता पढ़ना अनिवार्य कर दिया है। विश्व के अनेक विश्वविद्यालयों में गीता के मुख्य अंश पाठ्यक्रम में डाले हुए हैं।

आज रूस के राष्ट्रपति मेदवेदेव ओमकार (ॐ) ध्वनि के साथ-साथ राष्ट्रपति पद की शपथ ले रहे हैं।

त्रिनिदाद और टोबैगो की प्रधानमंत्री कमला प्रसाद बिसेसर 26 जून, 2010 को नोस्ली (पोर्ट ऑफ स्पेन) में एक गरिमामय समारोह में, गीता हाथ में लेकर प्रधानमंत्री पद की शपथ लेती है।

जिस संस्कृत भाषा को मृत भाषा घोषित किया था अंग्रेजों ने, किन्तु उसे अब विश्व के वैज्ञानिकों, भाषाशास्त्रियों तथा दार्शनिकों ने विश्व की श्रेष्ठ भाषा घोषित किया है तथा विश्व के वैज्ञानिकों की भावी भाषा बतलाया है।

विश्व के 35 देशों के 450 विश्वविद्यालयों में संस्कृत भाषा का अध्ययन-अध्यापन होता है। अमेरीका के विश्वप्रसिद्ध अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र (नासा) के वैज्ञानिक डा. रिक ब्रिक ने विधिवत शोध कर निष्कर्ष निकाला है कि संस्कृत संगणक (कम्प्यूटर) के लिए सहज और सर्वशुद्ध भाषा है। केवल संस्कृत ही एकमात्र भाषा है जिसकी ध्वनि हमारे मानवीय स्वर यंत्र के अनुसार है। लेखन और उच्चारण में कोई अन्तर नहीं है। मूल भाषा के नियमों के अन्तर्गत ही लाखों नए शब्द बनाने की सामर्थ्य केवल संस्कृत भाषा में ही है। किसी भी नए उपकरण अथवा वैज्ञानिक विधि का छोटा सारगर्भित नाम देने की सामर्थ्य केवल संस्कृत में है। पांच हजार वर्ष पूर्व गीता में प्रयुक्त संस्कृत भाषा तथा वर्तमान में प्रयुक्त संस्कृत भाषा के स्वरूप में किसी प्रकार का अंतर नहीं है। जबकि विश्व की किसी भी भाषा का स्वरूप 100-200 वर्षों के बाद इतना बदल जाता है कि भावी पीढ़ियों को समझने हेतु शब्दकोश तथा भाषा वैज्ञानिकों की सहायता लेनी पड़ती है। विश्व की किसी भी भाषा में लिखे वैज्ञानिक साहित्य को एक हजार वर्ष बाद जब अध्येता पढ़ेगा उसे समझने में कठिनाई होगी, यह कठिनाई संस्कृत भाषा में लिखे साहित्य के साथ होने वाली नहीं है। अनेक समृद्ध क्षेत्रीय भाषाओं के उपरान्त भी बड़े-बड़े भारतीय विद्वानों द्वारा स्थायी प्रकृति का साहित्य संस्कृत भाषा में ही लिखने के कारण इस भाषा का शाश्वत स्वरूप है।

2006 अमेरीका White House में दीपावली मनाई गई जिसमें President बुश को आमंत्रित किया गया और घी के दीये जलाए गए। पूरा White House भगवामय हो गया। लंदन में हाउस ऑफ कामंस में इसे मानव मात्र की सुख-समृद्धि का उत्सव मानकर मनाया जा रहा है। अमरीकी संसद में इस बार (2013 ई.) भी दीपावली मनाई गई।

आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैण्ड आदि की संसद में विगत आठ वर्षों से शानदार ढंग से हिन्दू विधि से हिन्दू पंडित से मंत्रोच्चार करवाकर सरकारी स्तर से दीपावली उत्सव मनाते हैं।

12 जुलाई, 2008, संयुक्त राष्ट्र अमेरीका की सीनेट की बैठक का (कांग्रेस के कार्यक्रम का) हवन से शुभारम्भ हुआ। गीता के श्लोक व वेदमंत्रों का पाठ कश्मीरी पंडित राजन जैद ने सम्पन्न कराया।

10 दिसम्बर को अमेरीका की सबसे बड़ी डेमोक्रेटिक पार्टी ने अपने अधिवेशन का शुभारम्भ उसी प्रकार से किया जिस प्रकार White House में गीता के श्लोकों का पाठ, वेदों की ऋचाओं का पाठ व शान्तिमंत्र के गायन से किया।

यूनेस्को ने वैदिक मंत्रोच्चार की पद्धति को अन्तरराष्ट्रीय धरोहर घोषित किया है।

अमेरीका के पूर्व राष्ट्रपति बिल क्लिंटन, वर्तमान ओबामा हनुमानजी के भक्त हैं। गले में हनुमान का लॉकेट है।

10 सितम्बर, 2008 (हिन्दुस्तान टाइम्स) जिनेवा में Big Bang theory के अध्ययन को लेकर किए जा रहे प्रयोग को लेकर धरती के काफी नीचे सुरंग बनायी। उसमें एक विस्फोट करना था। उसमें पूरे विश्व के वैज्ञानिक लगे हैं, जिसमें भारत के 200 वैज्ञानिक हैं। इस संस्था का नाम सी.ई.आर.एन. है। इसका जो वैज्ञानिकों का अधिवेशन हुआ था उसकी अध्यक्षता नटराज की दो मीटर की बड़ी मूर्ति ने की।

बिल क्लिंटन जब राष्ट्रपति थे तो उनके साथ में उपराष्ट्रपति अलगोर थे। इस समय दुनिया में ग्लोबल वार्मिंग के बारे में सर्वाधिक इनिशिएटिव लेकर प्रचार करने वाला कोई व्यक्ति है तो वह अलगोर हैं। अलगोर उस समय उपराष्ट्रपति थे और वहां पर पृथ्वी सम्मेलन हुआ था। उस पृथ्वी सम्मेलन के उद्घाटन में अलगोर ने एक वाक्य कहा था कि पिछले तीन सौ सालों से हम लोग गलत मार्ग पर चल रहे हैं। अब समय आ गया है कि हम पुनर्चिन्तन करें और मार्गदर्शन के लिए पूर्व की ओर मुड़ें। इस समय और इस दिशा में जाना है तो होलिस्टिक थिंकिंग का जो कॉन्सेप्ट, जो मदर अर्थ का कॉन्सेप्ट भारत ने बहुत पहले दिया है, उसे अपनाएं। उस कान्फ्रेंस में अथर्ववेद का जो भूमि सूक्त है वह दुनिया के इकोलोजी के लोगों के लिए मास्टर प्रिन्ट हो सकता है, उसका अंग्रेजी अनुवाद सबको दिया गया। सबने कहा कि इसमें हमने जो कुछ सोचा वह सब कुछ है। उसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है। जो परिदृश्य खड़ा हुआ है इसमें आदमी को लगता है कि हमें कहीं इधर आना पड़ेगा।

वैश्विक ताप की समस्या अमेरीका और यूरोपीय देशों की जीवनशैली के कारण ही उत्पन्न हुई है। इसके समाधान के लिए अनेक सम्मेलन हुए, लेकिन कहीं से भी इस समस्या का समाधान नहीं निकल पाया। समाधान के लिए आखिरकार सबने भारतीय चिन्तन दर्शन की ओर देखा। दुनिया के अनेक देशों ने भारतीय चिन्तन दर्शन को विभिन्न समस्याओं के समाधान के रूप में स्वीकार किया है।

राजीव गांधी जब प्रधानमंत्री बने और भारत से परिचय कराने के लिए भारत उत्सव का आयोजन मास्को में किया जिसका उद्घाटन राष्ट्रपति गोर्बाचोव ने

किया। उन्होंने अपने उद्घाटन भाषण में कहा आज दुनिया सर्वनाश की ओर जा रही है, उसे विनाश से बचाने के लिए अत्यन्त मूल्यवान सिद्धान्त, तत्त्व, जीवन-मूल्य भारत ही दे सकता है। इस अवसर पर उन्होंने गीता के दो श्लोक भी कहे—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। 2/62, गीता

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 2/63, गीता

जिसका अर्थ है कि जब मनुष्य का मन मोह में पड़ जाता है तो वह दानव बन जाता है। गुणों की सम्पत्ति नष्ट करने का प्रयास करता है। सबकी हत्या करने का प्रयास करता है। सब कुछ नष्ट हो जाता है। अतः मन को नियंत्रित करो। यदि मन नियंत्रित रहा तो सब कुछ ठीक रहेगा। यह कार्यक्रम दूरदर्शन में दिखाया गया था।

पश्चिम में परिवार जीवन, समाज जीवन समाप्तप्राय हो गया है। इसके बड़े दुष्परिणाम आ रहे हैं। अनैतिक सम्बन्ध और लावारिस बच्चों की फौज विस्फोटक स्थिति में पहुंच रही है। मार्गरेट थैचर इंग्लैण्ड की प्रधानमंत्री, जब वे प्रधानमंत्री पद से मुक्त हुईं तब एक भारतीय परिवार में एक सप्ताह तक रही। उसने कहा कि आने वाले समय में इंग्लैण्ड के समाज को अगर बचना है तो जितनी जल्दी हो सके भारतीय पारिवारिक मूल्यों को ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिए। क्लिंटन से लेकर ओबामा तक बिलियन्स डॉलर्स का बजट पारिवारिक जीवन-मूल्यों को पुनः विकसित करने के लिए प्रचार में लगा दिया है। पहले तोड़ा, अब भुगतने लगे, तो फिर से इधर आ रहे हैं।

इंग्लैण्ड में लंदन के मेयर (महापौर) स्वामीनारायण सम्प्रदाय द्वारा बनाए गए मंदिर को देखने गए। मंदिर में भारतीय और पौराणिक पात्रों पर बनी झांकियों को देखा। उसमें प्रह्लाद और ध्रुवजी की भी झांकी थी। उनके दर्शन करते-करते श्रवण कुमार की झांकी के सामने रुक गए। उसे बड़ा विचित्र लगा। एक युवक है, उसके बलिष्ठ कंधे पर एक विचित्र-सी चीज है, कांवड़ के जैसी। और एक बूढ़ा, एक बूढ़ी उसमें बैठे हैं। उसमें एक जवान और बूढ़ा-बुढ़िया से क्या तालमेल है? क्योंकि वहां तो सम्बन्ध रहता नहीं है। तो उसने पूछा कि क्या है यह? उसे बताया कि एक भारतीय पात्र है। एक युवक था, यह उसके मां-बाप हैं, उनकी इच्छा थी तीर्थयात्रा करने की। उनकी इच्छा पूरी करने के लिए उसने शादी वगैरह नहीं की। पहले यह करूंगा फिर उसके बाद अपना सुख, उनको लेकर सारे भारत में घूमकर यात्रा कराई। वह मेयर कहता है कि क्या यह सम्भव है? कंधे पर लेकर जवान लड़का और जवानी में ऐशो आराम करने के बजाय बूढ़े मां-बाप को ढोकर के ले जा रहा है क्या यह सम्भव है? लौट कर आने के बाद लन्दन की स्कूलों में एक

सर्कूलर निकाला कि अपने बच्चों को मंदिर देखने के लिए भेजो कि चरित्र क्या होता है, जीवनमूल्य क्या होता है। इसकी तो हमें जरूरत है? इस प्रकार आज पाश्चात्य जगत् भारतीय पारिवारिक मूल्यों की ओर, जीवनमूल्यों की ओर आकृष्ट हो रहा है।

आज वे भारतीय विवाह पद्धति की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

आज अमेरीका विचारों से हिन्दू होता जा रहा है। ऐसे सर्वे प्रकाश में आ रहे हैं। एक लेख में ऋग्वेद की उस ऋचा का उल्लेख किया गया है जिसमें कहा गया है कि सत्य एक है और विद्वान् इसे कई प्रकार से कहते हैं। इसी तरह हिन्दू मानते हैं कि ईश्वर की ओर जाने के कई रास्ते हो सकते हैं। ईसाइयत और कुरान भी इसमें शामिल है। ऐसा नहीं कि कोई भी रास्ता दूसरे से श्रेष्ठ है। अधिकतर पारम्परिक और रूढिवादी ईसाइयों को इस तरह से सोचने के बारे में नहीं सिखाया जाता है। लेकिन अमेरीका अब पुरानी सोच को छोड़ रहे हैं। 30 फीसदी अमरीकी खुद को धार्मिक के बजाय आध्यात्मिक बताते हैं।

करीब तीन साल पहले तत्कालीन राष्ट्रपति प्रतिभा पाटील के मुख्य अतिथित्व में चाइना में भगवान बुद्ध के नये भव्य मन्दिर का उद्घाटन हुआ। उसमें भगवान बुद्ध की स्वर्ण मूर्ति प्रतिष्ठित है। और इसमें सारा अर्थ-व्यय जन सहयोग से हुआ है।

रूस में स्थित साइबेरिया के किसी एक लोवर कोर्ट ने गीता को आतंकवादी ग्रंथ घोषित कर प्रतिबंध लगाने की तैयारी कर ली थी। पर फैसला देने से पूर्व वहां की लोकसभा के सभी सदस्यों ने सर्वसम्मति से गीता को सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ कहा और प्रतिबंध की कड़ी भर्त्सना की। ऐसे व्यक्ति को पागल तक कहा। विश्व के अनेक देशों में गीता के समर्थन में आवाज उठी। भारतीय संसद ने पहली बार सर्व सम्मति से गीता के समर्थन में आवाज उठाई। अतः कोर्ट को गीता के समर्थन में फैसला देना पड़ा। असल में ईसाइयत गीता से भयभीत है, उसे अपने प्रसार में बाधक समझकर के ऐसे ओछे हथकण्डे अपनाती रहती है।

ऐसे ही करीब डेढ़-दो माह पूर्व अमेरीका के किसी कोर्ट में किसी नागरिक ने योग केन्द्र में होने वाले ओम की ध्वनि के विरुद्ध याचिका दायर की। उसका मन्तव्य था ओम के साथ हिन्दुत्व की सारी बातें आने लगती हैं, इससे सारे अमेरीका में हिन्दुत्व छा जायेगा। कोर्ट ने उसकी याचिका को रद्द कर दिया और 'ओम' ध्वनि में ऐसी किसी आपत्ति को स्वीकार नहीं किया।

अभी हाल में ही इंडोनेशिया, जो विश्व का सबसे अधिक मुस्लिम जनसंख्या वाला देश है, उसने अमेरीका की राजधानी वाशिंगटन को एक सरस्वती की प्रतिमा

भेंट की। यह सुन्दर मूर्ति सोलह फुट ऊँची है और इसमें कमल के पुष्प पर विद्या की देवी सरस्वती खड़ी हैं। विद्या की देवी होने के कारण ही यह प्रतिमा अमेरीका को भेंट की गई है। अमेरीका में इसका सम्मान करते हुए मूर्ति भारतीय दूतावास से कुछ दूरी पर महात्मा गांधी की मूर्ति के सामने स्थापित की गई है। यह महात्मा गांधी की प्रतिमा कुछ वर्ष पूर्व वहां स्थापित की गई थी।

व्हाइट हाउस से कुछ दूरी पर स्थापित यह प्रतिमा औपचारिक उद्‍घाटन के पूर्व से ही शहरवासियों और टुरिस्टों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई है।

आज वे कैमिकल के स्थान पर हरित को तुलसी, आंवला, हलदी, ग्वारपाठा, नीम, शाकाहारी भोजन, अध्यात्म, जीवन-मूल्य, पारिवारिक-मूल्य, हिन्दू त्योहार आदि की तरफ निरन्तर आकृष्ट होती जा रही है।

इस प्रकार हिन्दू धर्म को पुनः विश्वस्तर पर मान्यता मिलती जा रही है और हिन्दू धर्म से स्वतः आकर्षित होकर विश्ववासी इसे अपनाते जा रहे हैं।

शोपेनहावर एवं गांधीजी की भविष्यवाणी सत्य होती प्रतीत होती है। उन्होंने कहा था—'मैं विश्वास करता हूं कि जो पन्द्रहवीं शती में ग्रीक साहित्य के अनुशीलन ने पुनर्जागरण किया था, उससे कम गहरा प्रभेदकारी प्रभाव संस्कृत साहित्य न रहा होगा।' गांधीजी कहते हैं—'हिन्दुत्व सत्य की सतत साधना है और यदि आज यह मृतप्राय निष्क्रिय विकास के प्रतिकूल हो गया तो इसका कारण है कि हम थक गए हैं और जैसे ही हमारी यह थकान दूर होगी, हिन्दुत्व सम्पूर्ण विश्व में एक ऐसी प्रखर दीप्ति के साथ छा जायेगा जो सम्भवतः इससे पहले सभी को अज्ञात होगी।' सारा विश्व निरन्तर इस ओर बढ़ रहा है।

श्री मां कहती हैं—भारत का भविष्य बहुत स्पष्ट है। भारत जगद्‍गुरु है। जगत् का भावी ढांचा भारत पर ही निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत जगत् में अध्यात्म ज्ञान को अवतरित कर रहा है। भारत सरकार को इसकी महत्ता को समझकर अपनी कार्ययोजना बनानी चाहिए।

× × ×

सनातन भारत निर्जीव नहीं है और न उसने अपने अन्तिम रचनात्मक शब्द ही कहे, वह जीवन्त है और उसे अपने लिए तथा मानव जाति के लिए अभी कुछ करना शेष है।

—ऋषि अरविन्द

विश्वशांति की कहानी

भूमिका तथा महत्त्व

विश्व में शांति की कहानी अति प्राचीन है। वेद संसार के प्राचीनतम साहित्य की महानतम निधि हैं, उनमें त्रिकालज्ञ ऋषियों द्वारा गायी हुई शांति की महिमा अति अनूठी है। सृष्टि के आदिकाल में ही शांति-पाठ द्वारा शांति का स्तवन किया गया।

ॐ द्यौः शान्ति-रन्तरिक्ष (गं्) शान्तिः पृथिवी शान्ति-रापः
शान्ति-रोषधयः शान्ति। वनस्पतयः शान्तिर्-विश्वे-
देवाः शान्तिर्-ब्रह्मशान्तिः सर्व (गं्) शान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

सर्वत्र शांति का ही पाठ होता है—इस पृथ्वीतल पर जब से मानव ने जीवन पाया तभी से उसने शांति की महत्ता को स्वीकार किया, उसकी अभ्यर्थना की, आराधना की तथा उसे विश्व की सर्वोच्च प्राप्तव्य वस्तु के रूप में माना। गीता में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा है—

शांति निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति। 6/15/2

अर्थात्—तू मेरे में स्थिति रूप परमानंद पराकाष्ठा वाली शांति को प्राप्त होगा।

इससे यह विदित होता है कि समस्त ब्रह्माण्ड की एकमात्र संचालक शक्ति (परमब्रह्म परमेश्वर) भी शांति स्वरूप ही हैं तथा इस प्रकार की परम शांति को प्राप्त करना मानव जीवन का सर्वोत्कृष्ट ध्येय हो सकता है। वेद-मंत्रों के अंत में जो तीन बार शांति का उच्चारण 'ॐ शान्ति, शान्ति, शान्ति' होता है उसका अर्थ यह है कि शान्ति स्वरूप भगवान हमें त्रिविध शांति (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक शान्ति) प्रदान करें।

शान्ति का महत्त्व—यह तो स्पष्ट ही है कि शांति अनादिकाल से हमारे लिए एक अभिलषित प्राप्तव्य एवं अभी वस्तु रही है। किन्तु तब शांति को इतनी महत्ता देने का कारण क्या था, यह जान लेना आवश्यक है। मानवता के विकास काल में शांति नितान्त आवश्यक थी। विकसित होते हुए पुष्प को शांति चाहिए, निर्मित होते हुए एक भवन के लिए भूचाल की नहीं शांति की अत्यधिक आवश्यकता है।

शांति के बिना बच्चे का माता की कोख में विकास नहीं हो सकता, फूल खिल नहीं सकता तथा भवन निर्माण नहीं हो सकता। मानव समाज की प्रगति के लिए भी शांति परम आवश्यक है। देश में शांति का अभाव होने पर कोई काम-धंधा नहीं चल सकता, जनता का मन संत्रस्त रहता है तथा इस मानसिक अशांति के कारण कोई भी कार्य सफलता से नहीं हो सकता। अतः मनुष्य के अस्तित्व के लिए, उसके जीवन के लिए, उसके निर्वाह के लिए, उसकी प्रगति के लिए शांति परमावश्यक है।

शान्ति-प्रचार के लिए सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रयत्न

1. विश्व के इतिहास में जिस महामानव ने सर्वप्रथम शांति का संदेश सुनाया वह आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व इस भारत भूमि पर जन्म पाने वाले महात्मा बुद्ध थे। आपने मानव को मानव बनने का पाठ पढ़ाया तथा अहिंसा एवं शांति का उदात्त आदर्श प्रस्तुत किया। एक बार तो सारा संसार ही महात्मा बुद्ध का मतानुयायी बन गया।
2. श्री महावीर जिन ने अहिंसा धर्म को मानकर शांति की नींव को सुदृढ़ बना दिया।
3. चीन में कन्फ्यूशियस, बुद्ध के समकालीन थे जो मानवतावाद तथा शांति के समर्थक थे ।
4. ईरान में महात्मा जूरास्त्र (Zoaraster) मानवता की महान विभूति तथा शांति के सच्चे देवता थे।
5. 2400 वर्ष पूर्व ग्रीस (यूनान) में सुकरात ने मानवता को सत्य, न्याय तथा शांति का संदेश दिया।
6. 1951 वर्ष पूर्व पैलेस्टाइन में ईसा (Jesus Christ) ने मानवता को प्रेम तथा शांति का संदेश देते हुए कहा—'Love thy neighbour as thyself'.
7. रूस में टालस्टाय शांति के अग्रदूत थे।
8. भारत में महात्मा गाँधी शांति धर्म के प्रचारक तथा मानवतावाद के प्राण थे।
9. विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे शांत-गंभीर तपस्वी ने विश्व को शांति का संदेश सुनाने के लिए 'शांति निकेतन' नामक शांति के पावन निकेत की स्थापना की।

शांति के तीन प्रकार

1. मानसिक अथवा आध्यात्मिक शांति—वेदों तथा धर्म पुस्तकों में केवल इस शांति का महत्त्व बताया गया है।

2. राज्य में शांति—इसके लिए प्रत्येक देश में पुलिस तथा न्यायालय (दण्ड विधान) की व्यवस्था होती है।

3. विश्वशांति—इसके लिए तीन मुख्य प्रयत्न किए गए।

   (i) पंचायती न्यायालय (1899 ई. से 1907 ई.) हेग में केन्द्रीय कार्यालय स्थापित किया।

   (ii) राष्ट्रसंघ (1919 ई., League of Nations)

   (iii) संयुक्त राष्ट्रसंघ (U.N.O.) स्थापना सन् 1945 जनवरी में सानफ्रांसिस्को में केन्द्रीय कार्यालय स्थापित हुआ।

आज शांति की समस्या क्यों?

1. शांति का शत्रु युद्ध है। आज का युद्ध प्राचीनकाल के युद्धों से अधिक भयंकर हो गया है।

2. प्राचीनकाल में युद्ध के नियम थे—निःशस्त्र या नारी पर आक्रमण नहीं किया जाता था।

   संध्या से प्रभात तक युद्ध नहीं होता था। महाभारत में 18वें दिन के भीषण युद्ध के पश्चात् पूर्ण शांति स्थापित हो गई। युद्ध के समय में भी शेष स्त्री-बच्चे-वृद्ध आदि शांति से रहते थे।

   विक्रमादित्य के काल में हूणों-शकों से भीषण युद्ध होते हुए भी किसान खेत में हल चलाते। अतः समाज में शांति रहती थी।

3. प्राचीनकाल में यातायात के साधन उपलब्ध न होने के कारण युद्ध विशेष प्रदेश तक ही सीमित रहता था। शेष देशों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। आज यातायात के तीव्रगामी साधनों के कारण दो देशों का युद्ध विश्वयुद्ध बन जाता है।

4. ज्यों-ज्यों राज्यों का विस्तार हुआ अर्थात् साम्राज्य बने युद्ध की भीषणता भी बढ़ती गयी।

5. विज्ञान की उन्नति के कारण युद्ध के भयंकर साधन निर्मित हो गए हैं। जैसे विमान, बम, विषैली-गैसें इत्यादि।

6. शांति की समस्या कभी सैनिकों के लिए नहीं होती। वे तो स्वेच्छा से लड़ने-मरने के लिए युद्ध में जाते हैं। शांति की समस्या तो सर्व-साधारण जन समाज के लिए है जो युद्ध से बहुत दूर अपने गांव-नगरों में सुख-शांति से जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। यदि भीषण से भीषण अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग केवल सैनिकों पर किया जाता तो कोई समस्या न थी किन्तु आज निःशस्त्र और

निर्दोष नागरिक, जनता पर निःसंकोच रूप से प्रहार किया जाता है। गांवों को आग की भेंट किया जाता है, बमवर्षा से कल-कारखाने तथा नगर ध्वस्त और असंख्य बालक-बालिकाओं, स्त्री-पुरुषों के निर्दोष प्राण अकारण ही नष्ट किए जाते हैं।

7. अणु बम का आविष्कार मानवता के नाश की सूचना देता है। यह बम नागासाकी व हिरोशिमा (जापान) पर सन् 1945 में फेंका गया। एक ही अणुबम आज तक सारे संसार के कलेजे को कंपा रहा है अतः आज के सामान्य जन-समाज की शांति संकट में है। आज शांति की समस्या इसलिए है कि सारा मानव समाज उसके लिए चीत्कार कर रहा है।

शांति के लिए राजनैतिक प्रयत्न

(क) छोटे-छोटे प्रयत्न—यूनान तथा रोम में संघ राज्य स्थापित हुए थे। वे शांतिपूर्वक कार्य चलाते थे। किन्तु आज तो युद्ध की विषमता को देखकर शांति की महा आवश्यकता प्रतीत होती है।

(ख) प्रमुख प्रयत्न

1. पंचायती न्यायालय—अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों के निबटारे के लिए पंचायती न्यायालय स्थापित किया गया। यह निर्धारित हुआ कि दो देशों के झगड़ों का फैसला पंचायती न्यायालयों से कराया जाए तथा युद्ध न किया जाए।

   सन् 1899 में हेग (हालैंड) में बड़े राष्ट्रों का सम्मेलन हुआ।

   सन् 1907 में हेग में दूसरा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ।

   सन् 1909 लंदन में प्रमुख यूरोपीय देशों तथा जापान और अमरीका का सम्मेलन हुआ। 10 साल में 133 संधियाँ की गईं।

2. शांति का महान तिरस्कार—(प्रथम विश्वयुद्ध, सन् 1914)।

प्रथम विश्वयुद्ध में सर्विया का राजकुमार आस्ट्रिया में मारा गया। जर्मनी की मित्रराष्ट्रों से डाह तथा आस्ट्रिया से मित्रता थी। दो दल बन गए।

मित्र राष्ट्र	केन्द्रीय राष्ट्र
इंग्लैण्ड, अमरीका, फ्रांस, इटली, चीन	जर्मनी, आस्ट्रिया, टर्की
भारत, जापान, सर्विया-बेल्जियम	हंगरी (रूस)

अंत में जर्मनी पददलित हुआ। विल्सन की शांति योजना ठुकरा कर वार्साई की संधि की गई। 400 कठोर शर्तें मनवाई गई। 18 जून 1919 को जर्मनी ने हस्ताक्षर किये—

(क) जर्मनी का 1/8 भाग छीन लिया गया।

(ख) अलसिस तथा तार के कोयले के क्षेत्र 15 वर्ष के लिए फ्रांस को दे दिए गए।

(ग) जर्मनी के सब खनिज पदार्थ तथा जर्मनी के अफ्रीका में उपनिवेश (Colonies) छिन गए।

(घ) 14 अरब रुपया 4 वर्ष में देना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त युद्ध का पूरा हर्जाना भी देना होगा।

(ङ) सेना का निःशस्त्रीकरण कर दिया गया। अधिक से अधिक 1 लाख स्थल सेना तथा 15 हजार नौ सेना की अनुमति दी गई।

3. राष्ट्रसंघ (League of Nations) की स्थापना—राष्ट्रपति विल्सन के प्रयत्नों से राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई।

(क) उद्देश्य—युद्ध को रोकना तथा सब राष्ट्रों की स्वाधीनता तथा समानता का ध्यान रखना।

निःशस्त्रीकरण करना।

(ख) ढांचा (Structure)—

एक असेम्बली—जिसमें सब देशों के प्रतिनिधि थे। एक कौंसिल जिसमें मुख्य-मुख्य राष्ट्रों के प्रतिनिधि थे।

प्रधान कार्यालय—स्विट्जरलैण्ड की राजधानी जेनेवा में बना। उच्चाधिकारी Secretary General थे। एक अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना की गई।

'नियम'—विश्वशांति की स्थापना के लिए यह सब से प्रथम तथा प्रमुख प्रयत्न कहा जाता है।

(i) विश्व में युद्ध का खतरा संपूर्ण राष्ट्रसंघ की चिंता का विषय होगा। राष्ट्रसंघ के सदस्य झगड़े का निबटारा स्वयं नहीं करेंगे। अपितु अंतर्राष्ट्रीय पंचायत के सामने उपस्थित करेंगे।

(ii) जब पंचायत निर्णय न कर सकेगी तो उस मामले को कौंसिल के सामने उपस्थित किया जाएगा। कौंसिल झगड़े को तय करने का प्रयत्न करेगी। यदि झगड़ा तय न हो सका तो कौंसिल अपनी सिफारिशों सहित रिपोर्ट प्रकाशित करेगी। जो राष्ट्र इस रिपोर्ट को मान लेगा वह राष्ट्रसंघ का मित्र माना जायेगा, किन्तु यदि कोई इसकी अवहेलना कर युद्ध छेड़ दे तो राष्ट्रसंघ के सभी सदस्य उसके विरुद्ध खड़े हो जायेंगे।

राष्ट्रसंघ की विफलता के कारण (Causes of the Failure of League of Nations)—

(i) वास्तव में राष्ट्रसंघ का संगठन सब देशों की स्वाधीनता और समानता के आधार पर नहीं हुआ था। (जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी आदि से बदला लेने की भावना थी।)

(ii) अंतर्राष्ट्रीयता की भावना का पूर्ण रूप से प्रचार नहीं था।

(iii) राष्ट्रसंघ में बड़े राज्यों का ही बोलबाला था । वे अपने स्वार्थ में लगे हुए थे।

(iv) साम्राज्यवाद की हीन भावना सब के मन में समायी हुई थी।

(v) अंदर ही अंदर सब एक-दूसरे से जलते थे।

(vi) निःशस्त्रीकरण सम्मेलनों में बड़े-बड़े राष्ट्रों के प्रतिनिधि लंबे-चौड़े प्रस्ताव रखते थे। किन्तु छिपे-छिपे अपने शस्त्रास्त्रों को बढ़ाते रहते थे।

(vii) राष्ट्रसंघ में इतनी शक्ति नहीं थी कि किसी शक्तिशाली राष्ट्र के विरुद्ध कोई कार्यवाही करे। (जापान ने मंचूरिया के मकदन पर कब्जा किया, इटली ने एबीसीनिया पर चढ़ाई की किन्तु राष्ट्रसंघ देखता रहा।)

(viii) जर्मनी में हिटलर खड़ा हो गया। उसकी नाजी पार्टी की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। सन् 1919 में जर्मनी को निःशस्त्र बनाया गया। पर 20 वर्ष के अंदर-अंदर संसार में सबसे अधिक शस्त्रीकरण कर लिया।

नवीनतम आविष्कार—आटोमैटिक बमवर्षक विमान, तारपीडो इत्यादि तैयार हो गए थे।

द्वितीय विश्वयुद्ध

(i) सन् 1935 में जर्मनी ने फ्रांस से अपने कोयले के क्षेत्र वापस मांगे। फ्रांस ने यह मांग अस्वीकार कर दी।

(ii) जर्मनी ने सन् 1935 में अपने देश से सभी यहूदियों को मार भगाया तथा एक शक्तिशाली राष्ट्र बन गया।

(iii) सन् 1938 में जर्मनी ने बिना किसी सैनिक संघर्ष के मतनिर्वाचन द्वारा आस्ट्रिया को जीत लिया।

(iv) सन् 1939 में युद्ध प्रारम्भ हुआ। जर्मनी ने पौलेण्ड पर आक्रमण कर दिया।

(v) सन् 1940 में जर्मनी ने नार्वे, डेनमार्क, हालैण्ड, बेल्जियम, फ्रांस को जीत लिया।

(vi) जर्मनी के साथ जापान, हंगरी, रूमानिया, स्लोवाकिया मिल गए।

(vii) जर्मनी तथा रूस में पहले नान-एग्रेशन पेक्ट (Non Aggression Pact) हो चुका था। बाद में भंग हो गया।

(viii) मित्रराष्ट्रों में—इंग्लैण्ड, फ्रांस आदि थे। बाद में रूस तथा अमरीका भी आ मिले।

(ix) सन् 1940 में चेम्बरलेन को हटाकर चर्चिल को ब्रिटेन का प्रधानमंत्री बनाया गया। चर्चिल की युद्धनीति सफल थी। क्रिप्स को रूस में बातचीत करने के लिए भेजा गया। अतः ब्रिटेन तथा रूस मिल गए।

(x) सन् 1941 में युद्ध का प्रभाव अफ्रीका पर भी पड़ा। मिस्र तथा लीबिया में भी युद्ध का क्षेत्र बन गया। सन् 1941 में जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया, जर्मनी ने लैनिनग्राड तथा स्टालिनग्राड भी जीत लिया।

अंत में मास्को पर हारा। सन्1942 में जापान युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ा। अमरीका ने जापान तथा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया।

(xi) सन् 1942 में जापान ने सिंगापुर तथा बर्मा के कई भाग जीत लिए। आजाद हिंद फौज का निर्माण हुआ। अगस्त 1942 में भारत में Quit India Movement हुआ। भारतीय मंत्रिमंडल की इच्छा के विरुद्ध भारत को युद्ध में भाग लेने वाला घोषित कर दिया। साम्यवादियों ने द्रोह किया तथा कांग्रेसी नेताओं की धर-पकड़ हुई।

(xii) सन् 1943 में इटली ने युद्ध की घोषणा कर दी। मुसोलिनि नेता थे। इटली पर आक्रमण हुआ। इटली हार गया।

(xiii) सन् 1944 में फ्रांस तथा बेल्जियम पुनः स्वतंत्र। यूनान भी स्वतंत्र। जर्मनी की सीमाओं पर युद्ध होने लगा। अमरीकन फौज का फिलिपाइन द्वीपसमूह (शांत महासागर) में जापानी सेनाओं से युद्ध हुआ। सन्1945 में हिरोशिमा और नागासाकी पर अणुबम फेंका गया। जापान का अंत तथा जर्मनी की पराजय हुई।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना, United Nation Organisation (U.N.O.)

1. अणुबम के प्रयोग ने शांति की समस्या को और भी जटिल बना दिया। अतः संसार के सब नीतिज्ञों ने पुनः शांति-शांति की पुकार की। बातचीत सन् 1945 में शुरू हुई और स्थापना सन् 1946 में हुई।
2. जहाँ पंचायती न्यायालय में निश्चय था कि युद्ध रोकने के लिए युद्ध नहीं किया जाएगा। वहाँ संयुक्त राष्ट्रसंघ में निश्चय किया कि युद्ध रोकने के लिए सैनिक शक्ति का भी उपयोग किया जायेगा। U.N.O. का सानफ्रांसिस्को में कार्यालय स्थापित हुआ।

असफलता के कारण

(i) इजराइल, कश्मीर और बर्लिन की समस्याएँ बनी हुई ही हैं, कुछ ठीक नहीं हुई।

(ii) यहाँ पर भी दो दल हैं।

(iii) राजनीति का अखाड़ा है, संसार दो दलों में बंट गया है।

(iv) स्वार्थ अभी बना हुआ है। गत युद्ध में अमरीका ने ही अणु बम का प्रयोग किया और उसी ने सच्चा बनने के लिए विश्वशांति के लिए आवाज उठाई। आज भी सानफ्रांसिस्को में दिखाने को सभाएं हो रही हैं। परंतु प्रयोगशालाओं में अणु बम, परमाणु बम तथा उद्रजन बम बन रहे हैं। रूस ने भी जन-संहारक बम बनाने आरंभ कर दिये हैं।

(v) संयुक्त राष्ट्रसंघ का निर्माण तीसरे विश्वयुद्ध की सूचना दे रहा है।

विश्वशांति के उपाय

विश्वशांति का भविष्य अंधकारमय है। पिछले तीनों प्रयत्नों में त्रुटियाँ थीं। विश्वशांति के लिए अंतर्राष्ट्रीय भावना का प्रचार आवश्यक है।

1. प्रारंभिक शिक्षा में संसार के सभी बड़े-बड़े महापुरुषों के जीवन-चरित्र, बड़े-बड़े साहित्यकारों की कृतियाँ समानरूप से सभी देशों में पढ़ाई जाएं। मुसलमानों को केवल कुरान ही न पढ़ाकर, गीता-रामायण आदि भी पढ़ाई जाए।
2. विश्व बंधुत्व—'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना का प्रचार होना चाहिए।
3. साम्राज्यवाद का अंत होना चाहिए। सभी पराधीन देशों को एकदम स्वाधीन किया जाए। किसी साम्राज्यवादी देश को विश्वसंघ का सदस्य न बनाया जाए।
4. संयुक्त राष्ट्रसंघ में छोटे देशों को भी शामिल किया जाए।

5. भारत जैसे विशाल एवं शान्तिप्रिय देश को स्थायी सदस्य की मान्यता दी जाए।
6. शांति के प्रयत्न केवल आडम्बर के लिए न हों। विश्व के प्रत्येक नागरिक के मन में शांति के लिए आदर तथा प्रेम का भाव उत्पन्न किया जाए।
7. यह भी सुझाव है कि विश्वराज्य स्थापित किया जाए। किन्तु यह असंभव प्रतीत होता है। विश्वराज्य स्थापित करने के पीछे बड़े-बड़े राज्यों की विश्व साम्राज्य स्थापित करने की कलुषित भावनाएं छिपी हुई हैं। रूस ने साम्यवाद के नारे पर संसार के भिन्न राष्ट्रों को संगठित करना प्रारंभ कर दिया है। उसका विश्वराज्य प्रायः एक-चौथाई संसार में फैल चुका है। यदि इसी प्रकार का एक विश्वराज्य बनाने के लिए अमरीका आधे संसार को अपनी ओर मिला ले और दो भिन्न आदर्शों पर चलने वाले विश्वराज्यों में अगर कभी युद्ध छिड़ जाए तो समस्त मानव समुदाय युद्ध में उतर जायेगा तथा इसीसे मानवता का महान नाश हो जाएगा।
8. अतएव केवल किसी राजनीतिक प्रयत्न के द्वारा विश्व में शांति स्थापित नहीं होगी क्योंकि राजनीति में सदा छल-कपट तथा आडम्बर भरा रहता है। इसके पीछे शांति के लिए एक सांस्कृतिक तथा सामाजिक प्रयत्न की आवश्यकता है। महात्मा बुद्ध तथा ईसा ने एक बार समस्त संसार को अनुयायी बना लिया। महात्मा ईसा के प्रभाव से ईसाइयों की संख्या बौद्ध धर्म को छोड़, अन्य सब धर्मों से आज भी अधिक है। किन्तु केवल मुख से शांति का नाम लेने से तथा मन में साम्राज्यवाद की कुत्सित भावनाएं छिपाकर रखने से कभी शांति स्थापित नहीं होगी। अतः हम मन, वाणी तथा कर्म तीनों से शांति की चेष्टा करें। जब मन में शांति का संकल्प हो, मुख से शांति का पवित्र पाठ हो तभी हम विश्व में कर्म के द्वारा सच्ची शांति की प्रस्थापना कर सकते हैं।

।।ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

डॉ. राधाकृष्णन् ने स्तालिन से कहा—'हमारे देश में एक राजा था। जो बड़ा अत्याचारी और क्रूर था। उसने रक्तभरी राह से प्रगति की थी किन्तु एक युद्ध में उसके भीतर ज्ञान जग गया और तभी से उसने धर्म, शान्ति और अहिंसा की राह पकड़ ली। आप भी अब उसी रास्ते पर क्यों नहीं आ जाते?

विश्व में शांति कैसे सम्भव है?-I

शांति के अभाव में न हम ऐहिक उन्नति कर सकते हैं और न पारमार्थिक। शांति के अभाव में न व्यक्तिगत, पारिवारिक और न राष्ट्रीय उन्नति सम्भव है। इन सबकी उन्नति के लिए प्रथम शर्त है शांति। बिना शांति के न हम समुचित अध्ययन कर सकते हैं न व्यापार-वाणिज्य आदि। शांति का शाब्दिक अर्थ है शम। मन की शम अवस्था को शांति कहते हैं। बिना मन की शम अवस्था के हम किसी भी प्रकार के कार्य को समुचित ढंग से सम्पन्न नहीं कर पाते। इसलिए भारतीय ऋषियों ने शांति पर बड़ा जोर दिया। क्योंकि अशांत मन से कोई भी कार्य ठीक ढंग से नहीं हो सकता। अशांत मन से भौतिक उन्नति नहीं हो सकती। तब आध्यात्मिक उन्नति का प्रश्न ही नहीं उठता। बिना मन के शांत (शम) हुए मन एकाग्र नहीं हो सकता। अतः मन की एकाग्रता के लिए मन का शांत होना आवश्यक है। बिना मन के एकाग्र हुए हम किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकते। चंचल मन हमेशा अस्थिर होता है। वह एक जगह स्थिर ढंग से बैठ नहीं सकता। अतः किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती।

विश्व शांति वास्तव में विश्व की समस्या न होकर मानव मन की समस्या है—जैसा मानव का मन है वैसा ही कुछ वह विश्व में देखता है। कहावत भी है जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि। अगर मानव का मन भीतर से अशांत है, भीतर में हाहाकार है तो उसी का प्रतिबिम्ब वह बाहर भी देखता है। मानव की विचित्रता है कि अपने मन की अशांति को विश्व में आरोपित करता है। वस्तुतः मन तो उसका अशांत है और आरोपित करता है विश्व में।

जिसकी झोली में जो है वही बांटेगा दूसरे को। जिसकी झोली में अमृत है तो वह जहां-जहां भी जाएगा सबको अमृत ही बांटेगा। उसके दैनिक व्यवहार, बोलचाल आदि सभी में अमृत ही अमृत बरसेगा। जहां भी रहे वह उसके लिए स्वर्ग के तुल्य है। जहां भी रहेगा उसे स्वर्ग ही बनाएगा। पर जिसके अन्दर विष ही भरा है उसको बाहर सभी जगह विष ही विष नजर आएगा। और विष के ही संस्कार सारी जगह फैलाएगा। वह जहां भी रहेगा नरक ही बनाएगा। वैसे ही

कुसंस्कारों को फैलायेगा। वह व्यक्ति जिस परिवार में रहेगा उसमें अशांति रहेगी। जिस समाज में रहेगा उसमें अशांति रहेगी। जिस भी राष्ट्र में रहेगा वहां—वहां अशांति ही अशांति फैलाएगा।

अशांति के बीज प्रथम मन में ही उदय होते हैं—मन में ही सबसे पहले परायेपन की भावना उदय होती है। उसी से फिर द्वेष की भावना बलवती होती है। द्वेष ही प्रथम में क्रोध के रूप में उभरता है। कालान्तर में वही बाहर में युद्ध के रूप में सारे विश्व के सामने प्रकट हो जाता है। युद्ध एकाएक नहीं होता है। वरन् उसका अंकुर बहुत पहले से ही मन में पड़ चुका होता है। वही धीरे-धीरे विकसित होते-होते परस्पर के अप्रिय वार्तालाप में प्रकट होता है। क्रोधाग्नि के रूप में प्रकट होता है। फिर बाह्य युद्ध के रूप में। प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध पहले मनों में लड़ा गया। उसकी भूमिका मनों में तैयार हुई। द्वेष का बीज मन में उदित हुआ फिर कालान्तर में बाहर में क्रोधाग्नियों के रूप में फिर युद्ध के रूप में लड़ा गया।

बाहरी आक्रमणों से, गोला बारूद से बचने के लिए चीन की दीवार, पेरिस की दीवार खड़ी कर देते हैं। बाहर से राष्ट्र को, समाज को, परिवार को सुरक्षित करने के लिए दीवारों से घेरते हैं, कांटेदार तारों की बाड़ लगाते हैं, पहरेदारी की व्यवस्था करते हैं। पर वास्तविक समस्या तो मन की समस्या है। मन में द्वेष, क्रोध, शत्रुता के बीज अंकुरित न हो इसके लिए कौन सी पहरेदारी, बाड़ या दीवार को खड़ी करते हैं?

आज विश्व शांति का क्रम ही उलटा चल पड़ा है। मन में विद्वेष पाले हुए क्रोध की अग्नि जल रही है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को निगल जाना चाहता है और सारे अशांति के साधन जुटाता जा रहा है (भयंकर हथियार, विषैली गैसें आदि)। राधाकृष्णन् के शब्दों में, हाथ में एटम बम लेकर विश्व शांति का नारा लगा रहा है। वास्तव में जो उसके मन में होगा उसके अनुकूल ही साधन जुटाएगा। अगर उसका मन शांत होगा तो उन साधनों को जुटाएगा जो विश्व शांति के पोषक हों। फिर आणविक शक्ति से जैसे विध्वंस किया जा सकता है वैसे ही उससे निर्माणकार्य भी हो सकता है।

अत: विश्व शांति के लिए या मन की शांति के लिए मन को शांत करने की साधना करनी पड़ेगी। लक्ष्य उसका शांति है और साध्य भी शांति। शांति केवल एक नारा नहीं है वरन् जीवन का वास्तविक लक्ष्य है। शांति ही उसकी कुलदेवी है। राष्ट्रीय देवी है। सारे त्रिभुवन की देवी है, शांति की देवी है। उसका परम लक्ष्य है, उसको प्राप्त करने का साधन भी शांति है। यानी प्राप्तव्य लक्ष्य भी शांति है और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के जो साधन हैं वह भी शांति है।

शांति देवी ही उसके लिए सर्वस्व है, आध्यात्मिक लक्ष्य है, जहां पहुँचकर और कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता है। उसके लिए साधन है—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा और समाधि। इस प्रकार जिसने शांति की साधना द्वारा शांति को पाया है वह जहां भी जाएगा शांति का वर्तुल, वायुमण्डल का निर्माण करेगा। शांति के बीज बोएगा। शांति के संस्कार लोगों को देगा। यानी जिसके पास जो है वही न बांटेगा।

अब विश्व का इतिहास उलट कर देखें कि किस देश ने शांति की साधना की और सारे विश्व में शांति बांटी और किसने सारे देशों को रौंद डाला, दासता की हथकड़ी पहनाई। विश्व का इतिहास साक्षी है कि भारत ने कभी भी किसी की नींद हराम नहीं की और जहां भी वे गए वे शांति के उपासक बनकर, शांति-संस्कृति का सुमधुर प्रसाद बांटने के लिए ही गए। उन्होंने चरित्र की निष्कलंकता और शुद्ध पवित्र ज्ञान के द्वारा विश्व को सुसभ्य एवं सुसंस्कृत बनाया। इंग्लैण्ड के एक प्रवचन में विवेकानन्द भारत की बहुत प्रशंसा कर रहे थे। बार-बार भारत की प्रशंसा कर रहे थे। भारत की प्रशंसा एक शिष्य को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा कि भारत एक गुलाम देश है। उसकी आप प्रशंसा कैसे कर रहे हैं। तब विवेकानन्द ने कहा, भारत कभी गुलाम नहीं था और न ही है। गुलाम तो आप हैं। जो जिसके पास है, वही दूसरे को देगा अर्थात् जो स्वयं गुलाम है वही दूसरों को गुलाम बनाएगा। भारत कभी गुलाम नहीं था इसलिए उसने कभी भी दूसरे राष्ट्रों को गुलाम नहीं बनाया।

कुछ लोग यह शंका कर सकते हैं कि भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे जो आपस में लड़ते रहते थे। अवश्य उन्होंने अन्य राष्ट्रों पर आक्रमण नहीं किया पर आपस में तो बहुत लड़ते रहते थे।

हां, भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था, जो आपस में लड़ते रहते थे। इसकी सफाई में हमें कुछ नहीं कहना है। किन्तु, जिन्होंने भारत में आदर्श राज्य की स्थापना की उन्होंने दुष्ट राजाओं को नष्ट करने पर भी उस राज्य को उन्होंने अपने राज्य में नहीं मिलाया। जैसे बाली वध पर सुग्रीव को गद्दी पर बैठाया। रावण वध पर विभीषण को, कंस के वध पर उग्रसेन को। अतः जिन्होंने आदर्श राज्य की स्थापना की उन्होंने दुष्ट राजाओं का वध किया एवं उन्हें पुनः सुशासन दिया।

ये आपस में लड़ते थे तो केवल सेनाएं ही लड़ती थी। जन समाज या अन्य पर आक्रमण नहीं होता था। विजय पर उस राज्य के इष्टदेव का पूजन करते थे, और वहां की परम्पराओं के अनुसार ही शासन करते थे।

मन की शांति के दो अन्तरंग साधन

प्रथमः अष्टांग योग के द्वारा आध्यात्मिक साधना।

द्वितीयः पवित्र गृहस्थ जीवन, शास्त्रीय गृहस्थ जीवन, जहां मानव मन निर्मित होता है, संस्कारित होता है।

बाह्य साधन

असुरों एवं दुष्टों का दलन, दमन, राष्ट्र के शत्रुओं का दमन।

क्योंकि सृष्टि में दैवी एवं आसुरी सर्ग दोनों सदा से हैं।

आसुरी लोगों पर दण्ड के द्वारा नियंत्रण, 'विनाशाय च दुष्कृताम्'।

दैवी प्रकृति के लोग धर्म के द्वारा नियंत्रित, शील, विवेक एवं प्रेम के द्वारा।

दुष्ट, आसुरी प्रकृति के दण्ड के द्वारा नियंत्रित होते हैं।

इन अन्तरंग एवं बहिरंग, दोनों साधनों के द्वारा ही विश्व शांति की स्थापना हो सकती है।

हमने किसी पर आक्रमण नहीं किया। और किसी ने किया तो उसे हमने सहा नहीं। उसका मुंहतोड़ उत्तर दिया।

मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी आकर यह दिखा दे कि भारत के जातीय जीवन के अमुक युग में ऐसे अध्यात्मिक दिग्गज नहीं हुए जो पृथ्वी को आन्दोलित न करे सके हों... संसार पर उसका प्रभाव तो सर्वदा उस मृदु ओस की तरह रहा है जो न तो सुनाई पड़ता है और न दिखता ही है, पर जो धरती की सुंदर से सुंदर कलियों को खिला देता है—ऐसा प्रभाव जो स्वभावतः ही मृदु है, स्वदेश की सीमा लाँघ कर विदेशों में पहुँचने के लिए अवश्य कुछ अनुकूल परिस्थितियों की अपेक्षा रखता है, यद्यपि स्वदेश की सीमा में उसका असर सदा ही जारी रहा।

—**स्वामी विवेकानन्द**

विश्व में शांति कैसे सम्भव है?-II

जो प्रत्यक्ष विश्वमंच पर युद्ध एवं महायुद्ध देखते हैं वह भी पहले मानव के मन में संकल्परूप से उदय होते हैं। संसार के प्रकट इतिहास में द्वितीय महायुद्ध सितम्बर 1939 में प्रारम्भ हुआ किन्तु उससे पूर्व जर्मनी और इंग्लैण्ड के एवं उसके मित्र राष्ट्रसमूह के बीच मानसिक युद्ध 1919 से ही चल रहा था। आजकल भी रूसी ब्लाक और अमेरीकन ब्लॉक के बीच, भारत और पाकिस्तान के बीच शीतयुद्ध जारी है जो कभी-कभी अवसर आने पर युद्ध के रंगमंच पर गरम युद्ध के रूप में भी प्रकट होता रहता है। संकल्पों का संघर्ष शीतयुद्ध (Cold War) और हथियारों का युद्ध Hot War है। ये Cold War प्रत्यक्ष गर्म युद्ध की अपेक्षा अधिक चिन्ताजनक है क्योंकि यह मन को सदा अशांत एवं सशंकित बनाए रखता है और इसी में से बार-बार गर्मयुद्ध पैदा होने की सम्भावना बनी रहती है। जब मन ही शांत नहीं तो हाथ-हथियार कब तक शांत रह सकते हैं।

डॉ. राधाकृष्णन् कहते हैं—Humanity suffers more from split mind than from split Atom. परमाणु के भेदन से मानवता इतनी दु:खी नहीं जितनी की मन के कटे-फटे होने के कारण। बट्रेण्ड रसेल ने भी इसी भाव को अपने शब्दों में कहा है—More war are caused through badtempered peoples discussing peace affairs than through goodtempered people discussing war affairs. यदि शांतस्वभाव वाले लोग युद्ध के मामलों की चर्चा करें तब इतने युद्ध नहीं होते जितने की उग्रस्वभाव वाले लोगों के शान्ति सम्मेलनों के विचार विमर्श से पैदा हो जाते हैं। भाव यह है कि यदि शांत स्वभाव वाले युद्ध सम्मेलन में विचार विमर्श करते हों तो परिणाम शान्तिपूर्ण ही होगा। इसके विपरीत उग्र स्वभाव वाले शान्ति सम्मेलन के विचार विमर्श के लिए बैठें तो परिणामत: उस शान्ति सम्मेलन से युद्ध पैदा हो जाएगा।

संयुक्त राष्ट्रसंघ ने भी अपने संविधान के ध्येयपत्र में कहा है—All war begins in the minds of men. And it is there that we must build our

bastion of peace. सभी युद्ध मानव मन में ही प्रारम्भ होते हैं। इसलिए हमें मानव के मानस में ही शान्ति के मोर्चों की किलेबंदी करनी चाहिए। दुर्भाग्य से पश्चिम के पास मानव के मन में शान्ति की किलेबंदी के लिए कोई कार्यक्रम या साधना नहीं है। भारत में शान्ति हमारा मात्र राजनीतिक आदर्श न होकर हमारा धार्मिक एवं आध्यात्मिक आदर्श है।

परब्रह्म परमेश्वर 'शांतंशिवमद्वैतम्' है। विष्णु भगवान् 'शांताकारं भुजंगशयनम्' हैं। हजारों फणवाले विषधारी सर्पों की शय्या के ऊपर भी वे परम शांत है। हमारी सारी आध्यात्मिक साधना शान्ति साधना ही है। भगवान् गीता में कहते हैं—'अशान्तस्य कुतः सुखम्' अर्थात् अशांत व्यक्ति को सुख कैसे प्राप्त हो सकता है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य च चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।। 2/66, गीता

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी।। 2/70, गीता

'जैसे सब ओर से परिपूर्ण अचल प्रतिष्ठा वाले समुद्र के प्रति नाना नदियों के जल उसको चलायमान न करते हुए ही समा जाते हैं; वैसे ही जिस स्थिरबुद्धि के प्रति सम्पूर्ण भोग किसी प्रकार का विकार उत्पन्न किए बिना ही समा जाते हैं वह पुरुष परम शान्ति को प्राप्त होता है, न कि भोग को चाहने वाला।'

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति।। 2/71, गीता

क्योंकि 'जो सम्पूर्ण कामनाओं को त्यागकर ममतारहित और अहंकार-रहित, स्पृहारहित हुआ वर्तता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है।'

इसी शान्ति को भगवान् ने ब्राह्मीस्थिति भी कहा है। इसलिए जो शान्ति में स्थित है वह ब्रह्म में स्थित है। समस्त वेदमंत्रों के प्रारम्भ में ओम् तथा अन्त में ओम् शान्तिःशान्तिःशान्तिः गाने का बड़ा महान् मनोवैज्ञानिक महत्त्व भी है। हम परम शान्तिस्वरूप परमेश्वर का नाम लेकर वेदमंत्र (परमेश्वर की वाणी) को गाते हैं तथा अन्त में पुनः उसी शान्त ब्रह्म से प्रार्थना करते हैं ओम् शान्तिःशान्तिः शान्तिः।

हे शान्तस्वरूप परमेश्वर! हमें तन की शान्ति, मन की शान्ति और आत्मा की शान्ति प्रदान करो। हमें आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करो। व्यक्तिगत शान्ति, सामाजिक शान्ति और विश्व शान्ति प्रदान करो। वनस्पति जगत् में शान्ति, जीव (पशु-पक्षी) जगत् में शान्ति और मानव जगत् में

शान्ति प्रदान करो। वेद में बार-बार शान्तिपाठ का महत्त्व है—

ॐ द्यौः शान्ति-रन्तरिक्ष (गं्) शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्-विश्वे-
देवाः शान्तिर् ब्रह्म शान्तिः सर्व (गं्) शान्तिः शान्तिरेव
शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।

'हे परमेश्वर! द्युलोक में शान्ति हो। द्युलोक और पृथ्वी के बीच में अन्तरिक्ष लोक में शान्ति हो। पृथ्वी में, जल में शान्ति हो। औषधियों, वनस्पतियों में शान्ति हो। विश्व देवताओं में भी शान्ति हो। हमारे सामवेद के गीतों में भी शान्ति हो। शान्ति में भी शान्ति हो। सर्वत्र शान्ति ही शान्ति हो। शान्तस्वरूप ब्रह्म हमें त्रिविध शान्ति प्रदान करें।'

दुर्भाग्य से आज के कुटिल राजनीतिज्ञ स्वयं मन के अशान्त होने के कारण द्युलोक एवं अन्तरिक्ष लोक में भी बमवर्षक रॉकेट भेजकर उसे अशान्त क्षेत्र बना रहे हैं। पृथ्वी को युद्ध की ज्वालाओं से अशान्त बना ही रहे हैं। शत्रु देश में बहने वाली नदियों में विष मिलाकर जल को भी अशान्त बना रहे हैं। जहरीली औषधियों, गैसों एवं रोग के भीषण कीटाणुओं की वर्षा करके औषधियों को अशान्त कर रहे हैं एवं रोगों की महामारियों से मानवता को मारने पर तुले हैं। प्राचीनकाल में हमारी सारी औषधियां जड़ी-बूटी, वनस्पतियों और खनिज पदार्थों से बनती थी।

आजकल की ऐलोपैथी की औषधियां भी विषरूप हैं क्योंकि वे एक रोग को जबरदस्ती दबाकर दूसरे अन्य रोगों को पैदा कर देती हैं। इस प्रकार रोग-औषधि-नया रोग-नयी औषधि का विषम चक्र चलता ही रहता है और अन्ततोगत्वा शरीर में विष की मात्रा बढ़ जाने के कारण रोग एवं रोगी दोनों मर जाते हैं। इंजेक्शन का Reaction और Reaction के इंजेक्शन का यह विषम चक्र न जाने मनुष्य को कहां पटक देगा। ऐलोपैथी औषधियों के विषय में कहा गया है—Alopathy medicines can cure all the diseases except the one which they them self cause. अर्थात् ऐलोपैथी औषधियां उन सब रोगों का उपचार कर सकती है सिवाय उनके जिनको वह स्वयं पैदा करती हैं।

जर्मन डॉक्टर सुसलर का कथन है—संसार के सब खाते-पीते लोग जितना भोजन करते हैं उसके आधे से उनका पेट पलता है और आधे से संसार भर के डॉक्टरों का पेट पलता है। भाव यह है कि मनुष्य के तनिक अधिक खाने से जो उसे अजीर्ण, अतिसार या उदर विकार होगा उसके उपचार के लिए यदि वह डॉक्टर के पास जाता है तो ऐलोपैथी डॉक्टर उसे औषधियों के ऐसे विषम चक्र में फंसा देता है कि रोगी उस रोग के तनिक उपचार के बाद किसी अन्य रोग का

शिकार हो जाएगा। फिर दूसरे रोग के उपचार के लिए तीसरे रोग का शिकार हो जाएगा। और इस प्रकार जीवनभर डॉक्टर की शरण में जाकर उन्हें भारी मोटी फीस एवं औषधियों का मूल्य चुकाता रहेगा। डॉक्टरों के बंगले, कारें, ऐश्वर्य प्रसाधन बढ़ता जाएगा और रोगी मरता जाएगा।

आजकल drug addiction (विषैली औषधियों) की बुरी लत का नया सामाजिक रोग चल पड़ा है। पश्चिम के भोग विलासपूर्ण जीवन के कारण आधी रात तक शराब पीकर स्त्रियों की बगल में हाथ देकर काम नृत्य लीला करने के पश्चात् भड़की हुई कामना वाले मन को सरलता से सहज निद्रा नहीं लाभ होती। ऐसे लाखों-करोड़ों लोग डॉक्टर की शरण में जाते हैं। वे मन को कृत्रिम रूप से सुलाने के लिए विषैली नशे की गोलियां देते हैं। नशीली औषधियां मन को आदत में बांध लेती हैं। पहले दिन जितनी मात्रा के विषैले नशे द्वारा मन को ठोकर मारकर सुलाया जा सकता है, दूसरे दिन मन उस विषैली ठोकर को पुनः खाना चाहता है। पहले जितनी ठोकर से उसे नशा चढ़ता था दूसरे दिन बढ़कर बड़ी ठोकर खाना चाहता है। भगवान् ने गीता में कहा है—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।। 2/62, गीता

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। 2/63, गीता

विषयों का ध्यान करने से विषयों के प्रति लगाव हो जाता है। जैसे विषयांध व्यक्ति विवेक को खो बैठता है, नशा भी मनुष्य को अंधा बना देता है जिसमें विवेक पर तुरन्त अज्ञान का पर्दा पड़ जाता है। नशा प्रारम्भ करने वाला प्रारम्भ में कण भर अफीम, बीड़ी का एक कश, शराब की एक चुस्की, निद्रा लाने वाली एक गोली, एल.एस.डी. की एक गोली, कण भर चरस से प्रारम्भ करता है। प्रथम दिन इतना ही नशे का झटका उसको असह्य एवं विचित्र लगता है। किन्तु वही नशेबाज थोड़ा बढ़ाते-बढ़ाते हुए एक दिन नशे में अपने स्वास्थ्य, परिवार, धन-सम्पत्ति सभी कुछ को बर्बाद कर बैठता है। नशेबाज का मन प्रतिदिन नशे की और बड़ी ठोकर को मांगता है और दैनिक ठोकरें खाता हुआ स्वास्थ्य एवं धन को गंवाता हुआ एक दिन नशे की ऐसी ठोकरें खाता है कि उसीसे उसका प्राणान्त हो जाता है। पहले मनुष्य नशे को पीता है और बाद में नशा ही मनुष्य को पीने लगता है और कुछ काल बाद उसको पूरा डकार जाता है।

नशीली औषधियों द्वारा समाज के युवक-युवतियों को क्रमिक आत्महत्या का पापपूर्ण प्रशिक्षण दिया जा रहा है। ऐसी औषधि बनाने वाली दवा कम्पनियां,

उनको प्रचारित करने वाले डॉक्टर मानवता के हत्यारे हैं और उनका सेवन करने वाले भोगी विलासी युवक-युवती आत्महत्यारे हैं। ऐसे हत्यारों और आत्महत्यारों द्वारा विश्व शान्ति कैसे सम्भव हो सकती है।

आजकल वनस्पतियों पर भी कृत्रिम रासायनिक दवाओं का विषैला प्रभाव पड़ रहा है। कीटनाशक औषधियां सभी विषैली होती हैं, पेड़-पौधे और वनस्पतियों के माध्यम से वह विष मानव के शरीर तक पहुंचता है। वैज्ञानिकों ने खोजकर बताया है कि कृत्रिम रासायनिक दवाओं से उत्पन्न अन्नों एवं वनस्पतियों में लगभग 10 प्रतिशत तक डी.एल.टी. एवं अन्य कीटाणुनाशक औषधियों का दुष्प्रभाव आ जाता है। ऐसी साग-सब्जी खाने वाली माताओं के स्तन के दूध में भी डी.एल.टी. की मात्रा आ जाती है। इसलिए आज की वनस्पतियों में भी मानव के लिए आवश्यक पोषक तत्त्व कम होकर विषैले तत्त्व बढ़ते जाते हैं।

हमारे युद्ध के गीतों में भी अशान्ति, रक्त क्रान्ति एवं जिहाद के नारे लगाए जाते हैं। हमारे शान्ति सम्मेलन भी प्रच्छन्न युद्ध सम्मेलन ही होते हैं। शान्ति के नारे केवल शत्रुओं को धोखे में डालकर शान्त रखने और उसकी आड़ में अपनी युद्ध की भरपूर तैयारी करने के कूटनीतिक उपाय हैं।

लेनिन शान्ति पुरस्कार का महत्त्व तब हो जब लेनिन एवं उसके देश ने शान्ति का मार्ग अपनाया हो।

Liberation army वास्तव में People extermination army जन सेना के स्थान पर जनसंहार सेना है। जनमुक्ति सेनानियों ने रूस की क्रान्ति में करीब एक करोड़ लोगों का संहार किया।

चीन को कम्यूनिस्ट बनाने में भी इतने लोगों का संहार किया गया है। चेकोस्लोवाकिया, अफगानिस्तान और पोलैण्ड में इस जनमुक्ति सेना ने वहां के लाखों-करोड़ों जनों का रक्तपात किया। हिंसा, भय और आतंक द्वारा रूसियों का गुलाम बना दिया।

इस प्रकार हमारे भारतीय शान्तिपाठ के स्थान पर धरती, अंतरिक्ष, जल, थल, मन एवं मस्तिष्क में सर्वत्र अशान्ति एवं हिंसा का विष भरने वाले पश्चिम के लोग जब संयुक्त राष्ट्रसंघ में शान्ति के नारे लगाते हैं तब उनका सारा व्यवहार एक उपहास मात्र प्रतीत होता है।

जो अपने मन को शान्त नहीं रख सकते। घर में अपनी पत्नी-बच्चों के साथ शान्तिपूर्वक रह नहीं सकते। जहां आधे से अधिक परिवार तलाक एवं विवाह विच्छेद के कारण उजड़े हुए हैं, जहां पुरुष रूप के शिकारी और नारियां धन की शिकारी बनी हुई हैं। जहां उजड़े हुए परिवारों के संस्कारहीन निराश्रित

बच्चे नशेबाज, समाजद्रोही बन रहे हैं। जहां काम कानन के खुले बाजार में, नाइट क्लबों के व्यभिचार भवनों में प्रतिदिन हजारों-लाखों परिवार काम और अर्थ की अग्नि में स्वाहा हो जाते हैं वहां दुनिया को ठगने के लिए शान्ति के नारे एक क्रूर उपहास से बढ़कर और क्या हो सकते हैं?

पाश्चात्य सभ्यता क्या है? यह एक ज्वालामुखी पर टिकी हुई लिपिस्टिक की हलकी-सी मुस्कान है। जिस दिन मानव के काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष के बारूद से भरा हुआ यह ज्वालामुखी फटेगा उस दिन पाश्चात्य सभ्यता के चिथड़े उड़ जाएंगे।

भारत में शान्ति मात्र एक राजनीतिक नारा नहीं है। यह हमारा धर्मसर्वस्व, प्राणसर्वस्व एवं हमारा साक्षात् भगवान् है। इसलिए भारत का अध्यात्म ही मानव मन का परिष्कार एवं संस्कारकर विश्व शान्ति का सम्पादन कर सकता है।

ज्यों-ज्यों ईसाइयत का प्रचार बढ़ा, चर्च की स्थापना हुई त्यों-त्यों ईसाइयत पीछे हटती गयी, चर्च आगे आता गया। चर्च के संगठन में ईसा की शिक्षाओं के स्थान पर चर्च के अध्यक्ष पोप का हुक्म चलने लगा। चर्च धर्म के प्रचार का केन्द्र होने के स्थान पर भौतिक शक्ति का केन्द्र हो गया। पोप का भी धार्मिकता के नाम पर एक दुनियावी राज्य हो गया।

—प्रो. सत्यव्रत सिद्धांतालंकार

× × ×

पूर्व तथा पश्चिम की संस्कृतियों में भेद

पश्चिम ने ईसा मसीह के धर्म-संदेशों को मुंह-मुंह से स्वीकार किया है। ईसाइयत के मानव प्रेम का सुन्दर उदाहरण मिलता है। जो सबसे गरीब हो उसे वस्त्र देने चाहिए, जो भूखा हो उसे अन्न देना चाहिए—यह बात ईसाई धर्म में जितनी विशद रूप से कही गई है उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। (उपर्युक्त मानव-प्रेम के स्थान पर) यूरोप में हमें स्वाधीनता का कलुषित और स्वदेश पूजा का विषाक्त रूप देखने को मिलता है।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

भारत की विदेश नीति

भारत के ऋषियों ने कहा—मम देशो भुवन त्रयम्। अर्थात् तीनों ही भुवन मेरा ही देश हैं। सारे विश्व को परिवार मानने वाले ऋषियों ने घोषणा की—वसुधैव कुटुम्बकम्। विश्व के राष्ट्र अपने ही भाई-बंधु हैं तो इसमें कौन अपना और कौन पराया?

जैसे किसी बड़े परिवार के बंधु-बांधव सब एक ही मकान में न रहकर सुविधानुसार भिन्न-भिन्न भवनों में रहते हैं इसी प्रकार संसार के भिन्न-भिन्न राष्ट्र परस्पर बंधु होते हुए भी देश-काल पात्र, परिस्थिति और सुविधा के विचार से भिन्न-भिन्न भौगोलिक खण्डों में व भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में रहते हैं। जैसे भिन्न-भिन्न नगरों में बसने वाले बंधु हजारों मील की दूरी के उपरान्त भी बंधु ही रहते हैं, शरीरों की दूरी के उपरान्त भी मन से समीप रहते हैं, उसी प्रकार भिन्न-भिन्न राष्ट्रों के लोग समुद्र पार विदेशों में बसने के उपरान्त भी वस्तुतः बंधु ही हैं।

भारत की विदेश नीति का यह आदर्श सूत्र है। इसलिये युक्ति बुद्धि से अपने राष्ट्र की हितसाधना करते हुए सारे संसार में विश्वबंधुत्व की भावना का विकास करना हमारा उद्देश्य है।

वैदेशिक नीति के लिये अंग्रेजी शब्द है—Diplomacy नीति व्यवहार, चातुरी। इसका प्रायः अर्थ माना जाता है चालाकी। इसमें ऊपर से विदेशों के प्रति मित्रभाव दिखाकर भीतर से स्वार्थ साधन किया जाता है। इसी को कूटनीति भी कहते हैं। कूट शब्द का अर्थ ही झूठ या छल है। कूटनीति शतरंज के खेल के समान है जिसमें हमारा दूसरे से व्यवहार में अन्ततोगत्वा मात करना या पराजित करना ही उद्देश्य होता है। पाश्चात्य विदेश नीति की कल्पना यही है। विदेशों में विदेश मंत्री की सफलता का मापदण्ड ही यही है कि कितने देशों को सहायता या सेवा की आड़ में अपने देश की स्वार्थ पूर्ति के लिये उस देश विशेष को और उस देश विशेष से दूसरे देशों को सताना, परस्पर में लड़ाना और अपनी इच्छानुसार नचाना है। इसमें जो सफल होता है वही सफल विदेश मंत्री कहा जाता है। किसी भी सहायता या समर्थन में उनकी चाल निहित रहती है जिससे कभी बाज नहीं आते। एक देश को दूसरे देश से लड़ाते रहना जिससे वे सदैव निर्बल बने रहें, जिससे उस देश पर उनका

प्रभुत्व बना रहे और उनकी इच्छानुसार नाचते रहें। अमेरिका और रूस की विदेश नीति का यही लक्ष्य है। जितनी भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं हैं वे उनके स्वार्थ साधन के अखाड़े बने हुए हैं। उदाहरण के लिये भारत को निर्बल बनाये रखने और संघर्षों में उलझाये रखने के लिए अमेरिका का पाकिस्तान को मित्र बनाना आदि।

भारत ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा के अनुसार वैदेशिक नीति के द्वारा विश्व कल्याण की साधना की। भारत ने अपने इतिहास के विभिन्न चरणों में कभी भी न तो किसी देश की स्वतन्त्रता पर डाका डाला, न तो अर्थ पर, न धर्म पर, न सांस्कृतिक जीवन को तहस-नहस किया और ना ही अर्थिक सहायता या सैनिक सहायता के माध्यम से किसी भी देश का किसी भी प्रकार का शोषण किया है। विश्व के भूतल पर कोई भी देश, जो अपने राष्ट्र के हित को साधते हुए, उसको खंडित नहीं करते हुए सदैव शांति का प्रहरी बना रहा तो इस अर्थ में भारत विश्व को मार्गदर्शन देता रहा है। अपने राष्ट्र का अहित न हो और विश्व का कल्याण हो, ऐसी साधना हमारी प्रथम से रही है। हाँ, हम अपने राष्ट्र का अहित करके विश्व का मंगल नहीं चाहते। हम अपने राष्ट्र का हित-साधन करते हुए विश्व हितसाधना में सतत कर्मरत हैं। इसलिये भारत जब अपने विषय में सोचता है तो विश्व की समस्याओं को भी अपने समक्ष रखता है।

आदर्श विदेश नीति सभी दूसरे देशों को अपने समान मानकर चलती है। वह दूसरों पर आधिपत्य या प्रभाव या दादागीरी जमाकर नहीं चलती। हम जब दूसरों का सम्मान करते हैं तब वे भी हमारा सम्मान करते हैं। यदि हम अजातशत्रु हैं तो हमें संसार भर में मित्र ही मित्र दिखाई देंगे।

विदेश नीति में हम न अपना सम्मान खोवें न दूसरों के सम्मान का हनन करें। अमेरिका तथा रूस दोनों अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत अपनी आर्थिक सहायता या सैनिक सहायता या सन्धियों द्वारा दूसरे देशों को अपना पिछलग्गू बनाकर रखना चाहते हैं।

पं. नेहरू ने अपनी विदेश नीति में भारत को अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में लाकर भारत को 35 अरब के विदेशी ऋण के नीचे दबा दिया। इतने बड़े ऋण को चुकाना भारत के लिये कठिन ही नहीं असम्भव हो गया है। इसके बदले देश की इज्जत या स्वाधीनता बिक सकती है।

श्रीमती इ. गाँधी ने विदेश नीति में रूस के प्रभाव क्षेत्र में आकर देश पर रूसी लोगों का वर्चस्व बढ़ा दिया। भिलाई, बोकारो, H.S.C. रांची, पतरातू आदि में सर्वत्र रूसी प्रभाव है। भारत का धन विदेशों की जेब में जाता है।

टेक्निशियन Expert के नाम पर मोटे वेतन भी देने पड़ते हैं, उनकी मशीनें खरीदनी पड़ती हैं तथा वे भारत में प्राप्त राशि से कम्युनिज्म का खुला प्रचार-प्रसार भी करते हैं।

सफल विदेश नीति अपने राष्ट्र की अखण्डता नष्ट नहीं होने देती। दुर्भाग्य से हमारी चीन के प्रति नीति असफल रही। उसने तिब्बत को खा लिया। हमने पंचशील पर हस्ताक्षर किये वही हमारे लिये पंचशूल बन गया। भारत की 16000 वर्गमील भूमि अभी तक चीनी दरिंदों के पांव के नीचे पड़ी है। पाकिस्तान ने कश्मीर की 30,000 वर्गमील भूमि दबा रखी है। बसवाड़ा और कच्छ के रण में हमने पुनः देश की भूमि गंवाई है।

सफल विदेश नीति की मांग है कि हम न दूसरों को ठगें और न दूसरों से हम ठगे जावें। हमें चतुर-चालाक तो रहना चाहिये किन्तु छली नहीं होना चाहिये। इस दृष्टि से भी विगत 30 वर्षों के कांग्रेसी शासन में हम बार-बार ठगे गये। तिब्बत के मामले में हम ठगे गये। कश्मीर के मामले में हम ठगे गये। ताशकन्द के समझौते में हम बुरी तरह ठगे गये।

पड़ोसी छोटे देशों से सम्बन्ध ऐसे होने चाहिये थे कि वे भारत जैसे महान् देश को अपना स्वाभाविक नेता मानते। पर स्थिति बनी है ठीक इसके विपरीत। नेपाल, भूटान, लंका, बर्मा सभी उलटे भारत पर पाद प्रहार करने लगे।

जनता सरकार ने विदेश नीति को पुनः सुधारा है। विदेश मंत्री थोड़े काल में ही अनेक देशों की यात्राओं पर जा चुके हैं। वे प्रायः कहते हैं—हम भूमि से अलग-अलग एवं बंटे हुए बेशक हैं किन्तु हमारे हृदय बंटे हुए नहीं हैं। अन्य देशों के हृदयों को स्पर्श कर उनके हृदय से बात करना एक सफल विदेश नीति का लक्षण है।

भारत संस्कृति का दिव्य मन्दिर है। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत जगद्गुरु है। अतः अन्य देशों पर राजनीतिक वर्चस्व बनाने की अपेक्षा अपनी संस्कृति की सुधा सब देशों को पिलाना एक महान् आदर्श है।

राजनीतिक वर्चस्व द्वारा दूसरे देशों को गुलाम बनाते हैं पर संस्कृति के प्रकाश द्वारा हम उन्हें मुक्ति का आनन्द बांटते हैं।

राजनीतिक हस्तमिलाप (Hand shake) केवल स्वार्थ पर आधारित होता है तथा आज का राजनीतिक हस्तमिलाप कल के राजनीतिक घूसे में बदल सकता है। पर सांस्कृतिक हस्तमिलाप युगों तक दो राष्ट्रों को मित्र बनाकर रखता है। अतः विदेश नीति में अन्य देशों से सांस्कृतिक आदान-प्रदान परम लाभकारी होता है। विदेश मंत्री एवं राजदूतों को संस्कृति का ज्योतिघर बनकर प्रकाश फैलाना चाहिये। भिन्न-भिन्न देशों में परस्पर बहुत सी भ्रान्तियाँ एक-दूसरे के निकट जाने पर दूर होती हैं।

When you look into the eyes of a foreigner you discover that he is a brother.

इस प्रकार सफल विदेश नीति द्वारा विश्वशांति स्थापित हो सकती है।

विश्व इतिहास के आलोक में भारत का भवितव्य

यह इतिहास का अत्यंत क्रूर व्यंग्य ही है कि जो भारत कभी सारे संसार का सांस्कृतिक गुरु था वही आज अपने कल तक के शिष्यों के भीषण आक्रमणों का शिकार बन रहा है।

जिस अरब देश ने भारत से धर्म, विज्ञान, गणित, ज्योतिष सीखा, जिस अरब में इस्लाम के जन्म से पूर्व मक्का में 360 मंदिरों की परिक्रमा के बीच काले रंग के पत्थर के महादेव (संगे अस्वद) की पूजा चलती थी और अभी भी उसी को बारंबार नमः (नमाज) करने पर हज्ज यात्रा होती है, उसी अरब ने सन् 712 से भारत पर आक्रमण प्रारंभ कर सन् 1947 तक निरंतर संघर्ष जारी रख कर, अंत में भारत को काटकर संसार के सबसे बड़े इस्लामी देश 'पाकिस्तान' का निर्माण कर लिया।

जिस ईसा की जन्मभूमि (फलस्तीन) में सम्राट् अशोक के काल से ही हिन्दू संन्यासी, बौद्ध भिक्षु तथा जैन साधु भारतीय धर्म का प्रकाश फैलाते आ रहे थे तथा जो ईसा स्वयं भारतीय विचार से अत्यधिक प्रभावित हुआ था, उसी ईसा के तथाकथित अनुयायी आज उलटे भारत की हत्या कर इसमें ईसाईस्तान का षड्यंत्र रच रहे हैं।

जिस रोम के सूर्य मंदिर (आदित्यालय) से पूरे 'इतालिया' देश का नामकरण हुआ, जिस जर्मन देश को स्वयं मैक्समूलर 'शर्मण्य' देश कहकर गौरव अनुभव करता था, उन्हीं रोम एवं जर्मन देशों के मिशनों द्वारा आज भारत के पूर्वांचल में धर्म के नाम पर भारत-द्रोह का प्रचार हो रहा है। जिस रूस देश को 'आर्यन बायजो' स्थान 'आर्यानां बीजम्' (आर्यों का बीज स्थान) माना जाता है, जिस रूस की भाषा में सहस्रों संस्कृत शब्द गूंज रहे हैं, जहाँ का रूसी शब्द स्वयं 'ऋषि' का रूपान्तर माना जाता है, वही रूस आज भारत को कम्युनिज्म का गुलाम बनाने के लिए बेचैन है। जो चीन दो हजार वर्षों तक भारत का शिष्य रहा, जिस चीन देश में भारत के लिए सुखावती (वैकुण्ठ) शब्द प्रयोग होता था, जहाँ के यात्री भारत की धूलि से अपने मस्तक का अभिषेक कर गौरव मानते थे, उसी चीन ने कम्युनिस्ट बनकर अपने धर्मगुरु भारत के उर में संगीन चलाकर भारत की 16000 वर्गमील धरती को दबोच लिया है तथा देश भर में नक्सलपंथी दंगे करवाकर देश का सर्वनाश करने पर तुला हुआ है।

उक्त विचार संस्कृति विहार, रांची के निदेशक प्रो. हरवंशलाल ओबराय ने पतरातू (थर्मल पॉवर नगरी) में एक विशाल जनसभा में व्यक्त किए। संसार के मानचित्र के साथ, विश्व इतिहास की शोधपूर्ण मीमांसा करते हुए प्रो. ओबराय ने बताया कि आज भारत के आत्मगौरव शून्य हो जाने के कारण विश्व की तीन अंतरराष्ट्रीय शक्तियाँ—(विश्वव्यापी इस्लामी शक्ति, विश्वव्यापी ईसाईयत की शक्ति तथा विश्वव्यापी कम्युनिज्म की शक्ति)—आज धर्मप्राण भारत को ही अपने शिकार का लक्ष्य बनाकर, बड़े भीषण रूप में कार्यशील हैं। अतः भारत एवं भारतीयता की रक्षा हेतु विश्वव्यापी हिन्दुत्व की शक्ति के महाजागरण की नितान्त आवश्यकता है।

प्रो. ओबराय ने पतरातू के दोनों विद्यालयों, ऑफिसर क्लब तथा संघ शिक्षा शिविर में भी भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर व्याख्यान दिये।

हमारे स्वतंत्र और समृद्ध राष्ट्रीय जीवन का एकमात्र आधार, अपराजेय राष्ट्रीय शक्ति है, ऐसी जो आक्रामक देशों के हृदय को आतंकित कर दे, और दूसरे राष्ट्रों को हमारी मित्रता प्राप्त करने के लिये इच्छुक बना दे। शक्ति राष्ट्रीय जीवन के लिये अमृत है। —**गुरुजी**

पाश्चात्य सभ्यता अपने होंठों में कृत्रिम लिपिस्टिक लगाए, कृत्रिम मुस्कान को लिए ज्वालामुखी पर्वत पर स्थित है। आगामी पचास वर्षों के अन्दर उसने यदि अध्यात्मिक आधार को नहीं स्वीकारा तो कभी भी चिथड़े-चिथड़े में बिखर सकती है। भारत में ऊपर-ऊपर (सतह पर) तो रुदन है पर अन्दर में निश्चिंतता एवं आमोद-प्रमोद समाया हुआ है। पर पश्चिम में खेल-तमाशे जो भी हैं वह सतह पर है पर अन्दर तो केवल रुदन ही रुदन समाया हुआ है। —**स्वामी विवेकानन्द**

हम भारतमाता को सही अर्थों में सुजला-सुफला बनाकर रहेंगे। यह दश प्रहरण धारिणी दुर्गा बनकर असुरों का संहार करेगी, लक्ष्मी बनकर जन-जन को समृद्धि देगी, सरस्वती बनकर अज्ञानांधकार को दूर कर ज्ञान करा प्रकाश फैलायेगी।

हिन्द महासागर और हिमालय से परिवेष्टित भरतखण्ड में जब तक एकरसता, कर्मठता, सम्पन्नता, ज्ञानवत्ता, सुख और शान्ति की सप्त जाह्नवी का पुण्य प्रवाह नहीं ला पाते, हमारा भगीरथ पूरा नहीं होगा। इस प्रयास में ब्रह्मा, विष्णु, महेश हमारे सहायक हैं। विश्व का विश्वास है। तपस्या का निश्चय लेकर चलें। वन्देमातरम।

—**पंडित दीनदयाल उपाध्याय**

हमारे पतन का कारण अध्यात्म नहीं

जो समाज अपने को युग के अनुरूप नहीं ढालता, नहीं बदलता वह समाज अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। अतः समाज को जीवित रखने के लिए युग के अनुरूप उसमें परिवर्तन आवश्यक है।

अर्नाल्ड टायनबी कहते हैं—इतिहास में दो प्रकार के समाज रहे हैं। एक Settle Society और दूसरा Unsettle Society. Unsettle Society जिनका अपना घर-बार कुछ नहीं होता। रेगिस्तान की मरुभूमि में स्थिर मकान बन नहीं सकते, जीवनभर इधर से उधर डोलते रहते हैं। ऐसा समाज जिनका अपना घर तो होता नहीं और दूसरों के घरों को उजाड़ने में ही अपनी शान समझते हैं।

दूसरा समाज वह, जो अपना स्थिर, सुन्दर घर बनाता है। उसे सजाता-संवारता है, साफ रखता है, दूसरे के घरों को विनष्ट नहीं बल्कि सजाने-संवारने में सहयोग करता है।

बन्दर और पक्षी की कहानी सभी जानते हैं कि पक्षी द्वारा बन्दर को सीख देने पर बन्दर ने किस तरह पक्षी के घर को उजाड़ दिया।

इसी प्रकार अरबवासियों का अपना तो कोई घर था नहीं और जिनका घर था उनको उजाड़ने में लगे रहे।

एक प्रश्न सामने आता है हिन्दू पर चारों ओर से आघात होने पर भी वह जागता क्यों नहीं? इसका कारण बताया जाता है 1200 वर्षों की गुलामी।

तब प्रश्न उठता है आखिर देश पराधीन ही क्यों हुआ। उसके दो कारण हैं— पश्चिम वालों की स्वर्णलोभ की वृत्ति एवं हिन्दुओं का असंगठित होना। पश्चिम वाले भूखे भेड़ियों के समान इस देश को लूटने के लिए आक्रान्ता बनकर आये।

कुछ लोगों ने भूल से हमारे अध्यात्म, आध्यात्मिक सद्गुणों को ही हमारी दुर्बलता का कारण मान लिया। यह उनका गलत ढंग है सोचने का। स्वामी रामतीर्थ कहते हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, संतोष, दम, तप, अद्रोह आदि हमारे आध्यात्मिक सद्गुण हैं। अपने घर को सजा-संवार कर रखना एक अच्छा गुण है। उसमें सुन्दर पुष्पवाटिका लगाना, उसमें तरह-तरह के फूल-पत्ते, लतायें पुष्पवाटिका का गुण है। शत्रु हमारी पुष्पवाटिका को उजाड़ देगा, आक्रमण करेगा, हम पुष्पवाटिका ही न लगायें यह तो कोई बात नहीं। हमारी मां, बहिन, पुत्री के सुन्दर चेहरे को गुण्डे के भय से उसके चेहरे पर तेजाब डालकर उसकी सुन्दरता नष्ट नहीं कर दें, सुन्दरता उसका गुण है। उसी प्रकार अध्यात्म हमारी दुर्बलता का

कारण नहीं। अध्यात्म, आध्यात्मिक गुण हमारी सुन्दरता है। उसे नष्ट करने की आवश्यकता नहीं। जैसे सुन्दर वाटिका की रक्षा के लिये कंटीली झाड़ियाँ लगाने की आवश्यकता है जिससे कि पशु या नरपशु उसको उजाड़ न दे। हमने भूल यही की। हमने आध्यात्मिक पुष्प तो बहुत लगाये, किन्तु उसकी रक्षा के लिये कंटीली झाड़ियाँ नहीं लगाई। अतः कंटीली झाड़ियाँ लगाने की आवश्यकता है। हम यथार्थ व्यावहारिकता को भूल गये कि कहाँ हिंसा का प्रयोग करना चाहिए, कहाँ नहीं; कहाँ क्षमा, दया आदि सद्‌गुणों का प्रयोग करना चाहिये, कहाँ नहीं; कहाँ अतिथि धर्म का पालन करना चाहिए, कहाँ नहीं आदि-आदि।

इसी कारण हमारे मंदिर लूटे गये, हमारी पुस्तकों से हमाम जलते रहे, स्नान के लिये पानी गरम होता रहा, आदि-आदि। यथार्थ व्यावहारिकता का अभाव और सद्‌गुणविकृति के कारण हमारी आज तक यह दुर्दशा बनी हुई है। देश-काल-पात्र-परिस्थिति का बिना विचार किये ही हम सद्‌गुणों का प्रयोग करते आये हैं, तब ये सद्‌गुण न रहकर सद्‌गुणविकृति हो जाते हैं। हमारी उदारता और सद्‌गुणों का दुरुपयोग ईसाई, मुसलमान, कम्युनिस्ट और राजनीतिक स्वार्थ के लोभ से राजनेता कर रहे हैं।

विल डूरेन्ट की उक्ति—हे भारत! इससे पहले कि अपनी घोर नास्तिक भोगवादी सभ्यता से निराश, शांति के लिये तरसता हुआ अतिव्याकुल पश्चिम तुम्हारी शरण में आ जावे, कहीं भूल से अपनी लम्बी राजनीतिक पराधीनता के लिये अपने श्रेष्ठ अध्यात्म को ही दोषी मानकर अपने घर को मत फूंक डालना।

स्मरण रखो, यदि तुम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़ कर आध्यात्मिकता का आधार त्याग दोगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा जातीय अस्तित्व मिट जाएगा क्योंकि राष्ट्र का मेरुदण्ड टूट जाएगा, राष्ट्रीय भवन की नींव ही खिसक जाएगी। इस सबका परिणाम होगा सर्वतोमुखी सत्यानाश।

—स्वामी विवेकानन्द

हम अतीत के गौरव से अनुप्राणित हैं, परन्तु उसको भारत के राष्ट्रजीवन का सर्वोच्च बिन्दु नहीं मानते, हम वर्तमान के प्रति यथार्थवादी हैं, किन्तु उससे बंधे नहीं हैं, आंखों में भविष्य के स्वर्णिम सपने हैं, किन्तु हम निद्रालु नहीं हैं वरन् उन सपनों को कारगर करने वाले जागरूक कर्मयोगी हैं। अनादि, अतीत, अस्थिर वर्तमान तथा चिरन्तन भविष्य की सनातन संस्कृति के हम पुजारी हैं।

—पंडित दीनदयाल उपाध्याय

सेवा का पुनीत संकल्प

मानव के व्यक्तित्व के तीन वृत्त (दायरे) होते हैं। एक पेट का दायरा, दूसरा परिवार का दायरा और तीसरा समाज का दायरा। लगभग 80 प्रतिशत लोग पेट के दायरे तक ही चिन्ता करते हैं। लगभग 19-20 प्रतिशत परिवार के चार-छः सदस्यों के पालन-पोषण की ही चिन्ता करते हैं। हजारों में कोई एक सज्जन समाज के दायरे की चिन्ता करता है। दुर्भाग्य से हमारे समाज का दायरा विगत एक हजार वर्षों से टूटा हुआ है।

हम ईमानदारी से अपने कलेजे पर हाथ रखकर अपने आप से पूछें कि पिछले चौबीस घंटों में हमने कितना समय पेट के लिए, कितना समय परिवार के लिए और कितना समय समाज के लिए दिया है? इसके उत्तर में हमें स्वयं ही अनुभव हो जाएगा कि हम अपने समस्याग्रस्त, संकटापन्न समाज की कितनी भयंकर उपेक्षा कर रहे हैं। यदि चार-छः दिन पेट की उपेक्षा की जाय तो पेट विद्रोह कर उठेगा, शरीर का बल क्षीण हो जायेगा तथा हम अर्धमृत से हो जायेंगे। यदि दो-चार मास परिवार की सेवा-सुरक्षा पर ध्यान न दिया जाय तो परिवार उजड़ जायेगा। हम तनिक सोचें कि जिस समाज की हमने एक हजार वर्ष तक चिन्ता नहीं की उसकी कैसी दुर्गति हुई होगी। पिछले हजार वर्ष का इतिहास साक्षी है कि सिन्ध के राजा दाहिर की पुत्रियों को बन्दी बनाकर बगदाद ले जाया गया तथा वहाँ उन्हें घोड़े की पूँछ के पीछे बाँध कर बाजारों में घसीट-घसीट कर मारा गया, सहस्रों-पुरुषों को गुलाम बनाकर तथा नारियों को दासी एवं रखैल बनाकर विदेशों में बेचा गया, नन्हे-नन्हे बच्चों को दीवारों में जिन्दा चुन दिया गया, ब्रह्मज्ञानी-सन्तों का चौराहों पर शीर्ष-छेदन हुआ, तपे हुए तवों पर और तेल के कड़ाहों में जलाया गया। वेद-मन्दिरों को ध्वस्त किया गया, कश्मीर के ब्राह्मणों का सामूहिक धर्मान्तरण हुआ, स्वदेश का एक-चौथाई भाग हिंसा एवं रक्तपात द्वारा काट कर परदेस बना दिया गया। इतिहास साक्षी है कि समाज के दुर्बल रहने पर न पेट सुरक्षित रहता है न परिवार। निर्बल समाज की रोटी एवं बेटी दोनों को दुष्ट लोग लूट कर ले जाते हैं।

हरिजन एवं वनवासी बन्धुओं को त्रिविध मार का शिकार बनना पड़ा है। एक तो निर्धन और अशिक्षित रहने के कारण वे पहले से ही पिछड़े हुए थे। दूसरे, विदेशियों का प्रहार सबसे अधिक उन्हीं पर हुआ। तीसरे वे हमारा स्नेह एवं सहयोग भी नहीं प्राप्त कर सके। वास्तव में यह तीसरा कारण ही सबसे प्रमुख कारण है। हमारी उपेक्षा से ही वे अशिक्षित एवं निर्धन बने रहे तथा हमारी सामाजिक उपेक्षा के महापाप के कारण ही वे विदेशी शक्तियों के अत्याचार का शिकार बनते रहे।

आज अपने युगों की उपेक्षा के महापाप को हमें धोना है। लम्बे तिरस्कार की ब्याज सहित क्षतिपूर्ति आज अपनी भरपूर सेवा द्वारा करनी है। समाज बचेगा तो हमारा पेट भी बचेगा और परिवार भी। यदि समाज सबल होगा तो न कोई हमारे पेट पर लात मार सकेगा, न परिवार की मान-मर्यादा लूट सकेगा तथा न हमारी श्रद्धा का खून होगा।

आइये, हम समाजसेवा का पवित्र संकल्प धारण करें।

ཨོཾ་བྷཱུར་བྷུ་ཝ་སྭ །

ས་ཏཏུ་སཝི་ཏུ་རེ་ཝ་རེ་ཎཎ།

ག་རེ་ལྷུ་མེ་ཝ་ཀེ་ཏེ་ཎ་ཀེ་ཧུ།

ཡུ་ཎ་སྤྲ་ཛྙ་ཎ་ཡ་ཏུ །

तिब्बत में गायत्री मंत्र

GAYATRI MANTRA IN TIBET

तिब्बत, चीन, मंगोल देश, मंजुश्री (मंचूरिया) शिविर देश (साइबेरिया) निपुण देश (जापान), कोरिया आदि देशों में जहाँ महायान बौद्ध धर्म का प्रसार हुआ वहाँ गायत्री मन्त्र, अवतार सिद्धांत आदि अनेक भारतीय जीवनमूल्य भी प्रचारित हुए।

—:०:—

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।

पूर्णकुम्भधारी द्वारपाल, श्रीलंका

Temple Guard With Purna Kumbha

CEYLON

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)
राँची द्वारा प्रकाशित

थाई देश के मुद्रापत्रों पर भगवान राम

LORD RAMA ON CURRENCY NOTES OF THAILAND

१ थाई देश (स्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में स्याम–नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो अब प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामकम्हेंग, श्री इन्द्रवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महाधर्म राम, पुरुषराम, महाधर्मिक राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामलक्ष्मण, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीनपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र यहाँ के मुद्राओं, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ आज भी लीला (नोंग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में अनेक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

—।०।—

संस्कृति विहार ACADEMY OF INDIAN CULTURE द्वारा प्रकाशित।

धनुर्धारी राम, राष्ट्रीय संग्रहालय थाई देश

Lord Rama Wielding a Bow
National Museum Thailand

१ थाई देश (स्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में स्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बनाई जो अब विख्यात राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेङ्, श्री धर्मवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महाचक्र राम, बुद्धराम, महामकुट राम, सुखदेव राम, रामखोन्न, रामसुवन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, अक्षोभ पुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र वहाँ के मुद्रापत्रों, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

—:o:—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, रांची। (दूरभाष : ३२६९०) द्वारा प्रकाशित।

सुग्रीव, छाया चित्र लीला थाई देश

SUGRIVA, SHADOW PLAY [NANG] THAILAND

१ थाई देश (स्याम) राम राज्य आदर्शों विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में स्याम—नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई और वह प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेङ, श्री धर्मवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महाचक्र राम, कुकुधराम, महाभद्र राम, सुखदेव राम, गंगाभानु, रामशुमन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीन पुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र वहाँ के सिक्कों, डाक-टिकटों एवं नए टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नाँग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में भक्त भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

—१०—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची। (मुद्रण : २६/१०) द्वारा प्रकाशित।

किष्किन्धा में बाली एवं तारा
छाया चित्र, लीला थाई देश

BALI & TARA IN KISHKINDHA SHADOW PLAY (NANG), THAILAND

१ थाई देश (स्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १६५० में स्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो भव्य प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित है, यथा रामकम्हेङ्, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महानगर राम, शुभ्रराम, महामत्तक राम, सुखदेव राम, रामामात्य, रामसुवन, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम है—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीन पुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र वहाँ के मुद्राओं, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नांग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में अनेक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

—२७१—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची। (दूरभाष। २६(४०) द्वारा प्रकाशित।

लव कुश हनुमान युद्ध:अश्वमेध यज्ञ के अश्व का प्रतिरोध
छाया चित्र, लीला, थाई देश

LAVA KUSHA HANUMAN DUEL.OBSTRUCTION TO THE ASHWAMEDHA HORSE.SHADOW PLAY (NANG), THAILAND

१ थाई देश (स्याम) राम भक्त आचार्य विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १७८० में स्याम–नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो नई अधिकृत राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेंग, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महाचक्र राम, सुन्दरराम, महामनेक राम, [illegible] राम, रामामान्य, [illegible], रामभूप।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, [illegible] पुरी, सुरेन्द्रपुरी, [illegible]।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र यहाँ के ध्वजपत्रों, डाक-टिकटों एवं धन टिकटों पर प्राप्त तक होते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नांग) में नगरी विरसी कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में अनेक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे धारण कर लीला नृत्य करते हैं।

—।०।—

संस्कृति विहार, ACADEMY OF INDIAN CULTURE [illegible] (दूरभाष: [illegible]) द्वारा प्रकाशित।

भगवती सीता, छाया चित्र, लीला, थाई देश

BHAGWATI SITA SHADOW PLAY [NANG] THAILAND

१ थाई देश (स्याम) राम राज्य आदर्शों विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी सुखोदयी नगर में थी। १३५० में स्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो [illegible] राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेंग, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महातेज राम, [illegible] राम, महाकर्णक राम, [illegible] राम, रामामात्य, रामसुन्दर, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरों के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीन पुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की मूर्ति के चित्र वहाँ के सिक्कों, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नांग) में चलती फिरती कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में कलाकार भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

—०००—

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE [illegible], राँची [illegible] द्वारा प्रकाशित।

भगवान राम, छायाचित्र-लीला, थाईदेश

LORD RAMA,

SHADOW-PLAY (NANG), THAILAND

१ थाई देश (स्याम) राम राज्य आदर्श विभूषित देश है।

२ प्राचीन राजधानी द्वारावती नगर में थी। १३५० में स्याम-नरेश रामाधिपति ने अयोध्या नामक नगरी बसाई जो अब प्रसिद्ध राजधानी बन गई।

३ थाई देश के राजाओं के नाम 'राम' उपाधि से विभूषित हैं, यथा रामखम्हेङ, श्री सूर्यवंश राम, रामराज, रामाधिपति, देवनगर राम, महाधर्म राम, बुद्धराम, महाभरत के राम, बुद्धदेव राम, रामलक्ष्मण, रामचन्द्र, रामपुत्र।

४ थाई देश के नगरी के नाम हैं—सुखोदय, स्वर्गलोक, इन्द्रपुरी, लवपुरी, प्राचीन पुरी, सुरेन्द्रपुरी, धर्मराज।

५ भगवान राम की भूमि के चित्र यहाँ के डाकपत्रों, डाक-टिकटों एवं बस टिकटों पर आज तक छपते हैं।

६ छाया चित्र लीला (नाँग) में चलती चित्री कठपुतलियों द्वारा रामलीला प्रस्तुत की जाती है तथा मुखौटा लीला (खोन) में नर्तक भिन्न-भिन्न पात्रों के मुखौटे लगाकर लीला नृत्य करते हैं।

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE अपर बाजार, राँची … द्वारा प्रकाशित।

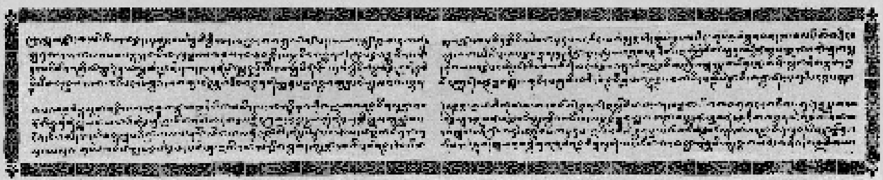

इन्दोनीज़िया में महाभारत
MAHABHARATA IN INDONESIA

१ यह इन्दोनीज़िया की बालीलिपि में संस्कृत-मिश्र कवि भाषा में, लोन्तार (तालपत्र) पर लिखित महाभारत के श्रीमद्भगवद्गीता-गर्भित भीष्मपर्व की प्राचीन पाण्डुलिपि है।

२ यह तालपत्र ग्रन्थ इन्दोनीज़िया के महागुरु पूर्णचरक ने स्वर्गीय आचार्य रघुवीर जी (संस्थापक-निदेशक, सरस्वती विहार, नई दिल्ली) को उपहार स्वरूप भेंट किया था।

३ प्रथम पंक्ति का देवनागरी रूपान्तर इस प्रकार है -

ॐ।। यज्ञाशेषो शिवः शान्तः मुच्यते सर्व्वा किल्विषैः।
कश्नते त स्वयाम्पापः ये च (त्वात्म कारणात् ।।

यज्ञशेष निर्मुक्त निर सं महापुरुष इररनिर ।
मर्वन्य नूतन् मने सर्न्नमल सिर । कुन इकं ब्वत-नहः केवल मिर्गी शरीर

४ इनका अर्थ इस प्रकार है-

(क) यज्ञ-शेष भोजन करने वाला शिव एवं शांत होता है, वह सब पापों से मुक्त होजाता है। जो केवल अपने लिये कमाते खाते हैं वे पाप ही खाते हैं।

(ख) यज्ञशेष भोजन करनेवाला महापुरुष होता है। जो केवल शरीर पोषण के लिए स्वार्थवश खाता है वह सब मल ही खाता है।

५ श्रीमद्भगवद्गीता में मूल श्लोक इस प्रकार हैं।

(क) यज्ञशिष्टाशिनः संतो, मुच्यन्ते सर्वं किल्विषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा, ये पचन्त्यात्म कारणात् ।।

यज्ञ के शेष बचे हुए अन्न को खाने वाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापों से छूटते हैं, और जो पापी लोग अपने शरीर पोषण के लिए ही पकाते हैं वे तो पाप ही खाते हैं। गीता अ० ३। श्लोक १३

(ख) यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।।

यज्ञ [समाजोपयोगी सेवा कर्म] के पश्चात् बचे हुए अन्न रूपी अमृत को भोगने वाले लोग सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। जो यज्ञ करके नहीं खाता उसका तो यह लोक भी नहीं बनता तो फिर परलोक कहाँ से बनेगा? गीता अ० ४। श्लोक ३१

संस्कृति विहार ACADEMY OF INDIAN CULTURE, अपर बाजार, रांची (दूरभाष [illegible]) द्वारा प्रकाशित (विश्व सरस्वती विहार, नई दिल्ली के सौजन्य से)

Tarian - Tarian

dalam

Sendratari

RAMAYANA

द्वीपान्तर भारत (इंदोनीज़िया) में रामलीला नवरात्रि नृत्य नाट्य

RamLila a Colourful Dance-Drama National Festival of Indonesia

१. रामलीला इन्दोनीज़िया का राष्ट्रीय महोत्सव है।
२. सन् १९७१ में वहां अन्तराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन सम्पन्न हुआ।
३. राजधानी जोग्याकर्त्ता का मूल नाम अयोध्याकर्त्ता है।
४. प्रंबनम रामकथा पर अद्वितीय मूर्ति-शिल्प तीर्थ है।

||०||

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।

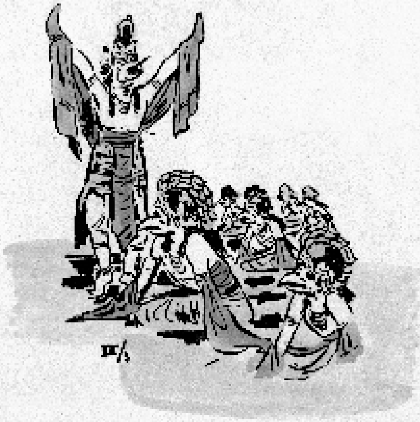

जटायु सम्पाति गृद्ध परिवार,
रामलीला, द्वीपान्तर भारत (इंदोनीज़िया)

Jatayu Sampati, 'Vulture' Family
Ram Lila, Java, Indonesia

—:o:—

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।

बालिद्वीप ॐ ...
ॐ श्रेयो भवतु । ॐ पूर्णं भवतु । ॐ सुखं भवतु ।

बा द्वीप (इंदोनीज़िया) में हिन्दू पूजा पद्धति

Hi du Puja System in Bali (Indonesia)

PUBLISHED BY:

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE,
MA VIR CHOWK, UPPER BAZAR, RANCHI (INDIA).

भगवती सीता की अग्नि परीक्षा, लवदेश

BHAGWATI SITA'S ORDEAL LAOS

१। लवदेश की राम कथा का नाम है 'फा लक फा लाम' अर्थात श्रीलक्ष्मण, श्रीराम।' इसका अत्यधिक प्रसार है।

२। लवदेश की दूसरी राम-कथा का नाम है 'फ्रोम्म-चक्र' अर्थात 'ब्रह्मजात' (जो रावण का नाम है) यह बौद्ध भिक्षुओं की कृति है। इसमें राम को गौतम बुद्ध रावण को देवदत्त और सीता को यशोधरा का रूपान्तर माना गया है।

३। राजधानी लुआंग प्रबंग के मन्दिरों के भित्ति चित्रों में रामकथा के सुन्दर चित्र शोभायमान हैं।

४। लवदेश में भी मॉंगंगा (मेकांग) नदी है, जिसके अनेक स्थलों का वर्णन लवदेश की रामायण में हैं। —0—

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, रॉंची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।

भगवान राम की धनुर्भंगलीला लवदेश (लाओस)

RAMA 'S BOW BENDING LAOS

१। लवदेश की राम कथा का नाम है 'फा लक फा लाम' अर्थात श्रीलक्ष्मण, श्रीराम।' इसका अत्यधिक प्रसार है।

२। लवदेश की दूसरी राम-कथा का नाम है 'फोम्म-चक' अर्थात 'ब्रह्मजात' (जो रावण का नाम है) यह बौद्ध भिक्षुओं की कृति है। इसमें राम को गौतम बुद्ध, रावण को देवदत्त और सीता को यशोधरा का रूपान्तर माना गया है।

३। राजधानी लुआंग प्रबंग के मन्दिरों के भित्ति चित्रों में रामकथा के सुन्दर चित्र शोभायमान हैं।

४। लवदेश में भी मा-गंगा (मेकांग) नदी है, जिसके अनेक स्थलों का वर्णन लवदेश की रामायण में हैं। ~O~

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
जमर बाजार, रांची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।

उड़नशील गरुड़, लवदेश

FLYING GARUDA, LAOS

१। लवदेश की राम कथा का नाम है 'फा लक फा लाम' अर्थात श्रीलक्ष्मण, श्रीराम।' इसका अत्यधिक प्रसार है।

२। लवदेश की दूसरी राम-कथा का नाम है 'फोम्म-चक' अर्थात 'ब्रह्मजात' (जो रावण का नाम है) यह बौद्ध भिक्षुओं की कृति है। इसमें राम को गौतम बुद्ध, रावण को देवदत्त और सीता को यशोधरा का रूपान्तर माना गया है।

३। राजधानी लुआंग प्रबंग के मन्दिरों के भित्ति चित्रों में रामकथा के सुन्दर चित्र शोभायमान हैं।

४। लवदेश में भी माँ-गंगा (मेकांग) नदी है, जिसके अनेक स्थलों का वर्णन लवदेश की रामायण में हैं।

५। राम कथा में गरुड़ नागपाश को काटने वाले हैं।
एशिया भर में गरुड़ की प्रतिष्ठा है।

—O—

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।

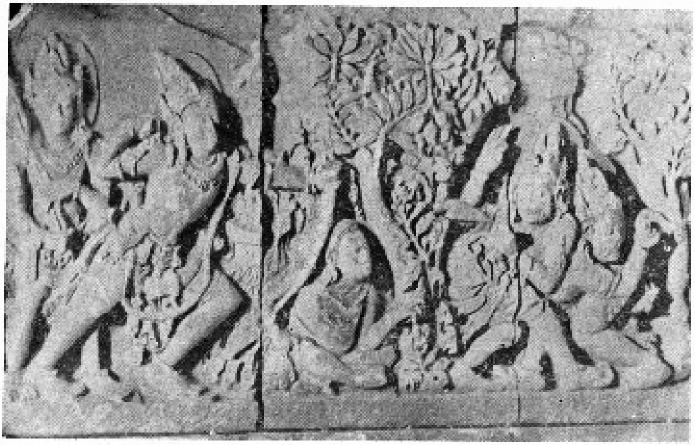

वाली वध, प्रम्बनम, यवद्वीप

Rama Killing Vali, Prambanam,

JAVA, INDONESIA : 9th Century

"Prambanam is a unique shrine of excellent plastic art on the Ramayana theme. This 'Murti Shilpa Tirtha' of the Ramayana has thousands of tableaux on Rama's adventures carved in a manner unequalled by anything found in India."

- Prof. H. L. Oberai,
Director, Academy of Indian Culture, Ranchi.

" प्रम्बनम रामकथा पर उत्कृष्ट मूर्तिकला का अद्वितीय पुण्यस्थल है। रामायण के इस मूर्तिशिल्प तीर्थ में रामचरित पर हजारों मूर्ति-पटल इस सुन्दर शैली में उत्कीर्ण किए गए हैं कि उसकी भारत में भी किसी वस्तु से तुलना नहीं हो सकती।"

- प्रो० हरवंश लाल ओबराय

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)

राँची द्वारा प्रकाशित

कम्बुज में खड्गधारी हनुमान

HANUMAN WITH SWORD
CAMBODIA

१. कम्बुज राजर्षि कम्बु द्वारा संस्कारित देश है।
२. वहां की रामकथा 'रामकीर्ति' अत्यन्त रोचक एवं प्रेरक है।
३. अंकुर वट मन्दिरों का विशालतम नगर है जहां की भित्तियों पर रामायण महाभारत के चित्र सुशोभित हैं।

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture,
ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।

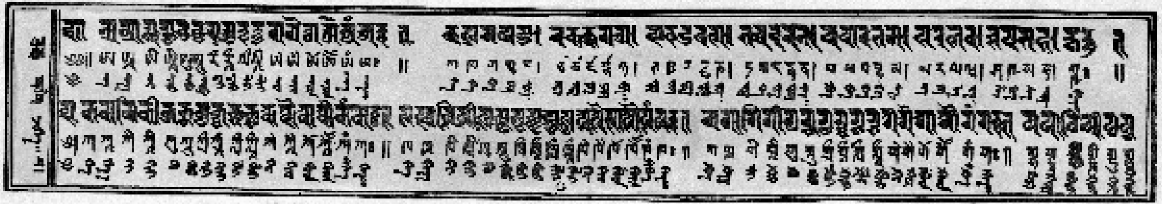

मंगोल देश में संस्कृत मंत्र शिक्षा के लिए अक्षरमाला
ALPHABET FOR TEACHING SANSKRIT MANTRAS IN MONGOLIA

१ प्राचीन काल से ही मंगोल देश भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित रहा है।

२ यहाँ भारतीय आचार्य उद्दगमेन ने स्वयंभू लिपि का प्रचार किया। आचार्य मतिध्वज ने मंगोल लिपि का आविष्कार किया।

३ नालंदा के आचार्य शान्तरक्षित ने यहाँ बौद्ध धर्म का विपुल प्रकाश फैलाया।

४ यहाँ बहुत सी सरस्वती, गरुड़, धन्वन्तरि, गणेश, हयग्रीव, कुबेर, महाकाल, कालभैरव आदि की मूर्तियों का बाहुल्य है।

५ उन्नीसवीं शती में भी यहाँ महाभारत के 'हिडिम्ब वध' पर नाटक खेले जाते थे।

६ १३ वीं शती में दक्षिण भारत के १७ वर्षीय साक्य पंडित ने आधी दुनिया को विजय करने वाले पराक्रमी राजा कुबलाई खाँ (कैब्ल्य खाँ) को महायान बौद्ध धर्म की दीक्षा दी।

७ यहाँ अभी तक गायत्री मंत्र का भी विशेष प्रचलन है।

८ यहाँ योग एवं तन्त्र का विशेष प्रसार रहा। तदर्थ संस्कृत ज्ञान अनिवार्य था।

९ प्रस्तुत चित्र में ऊपर की पंक्ति में संस्कृत अक्षर माला, नीचे तिब्बती तथा उसके नीचे मंगोल लिपि दी गई है।

संस्कृति विहार : ACADEMY OF INDIAN CULTURE [illegible]

जापानी पांडुलिपि, (१०३५ ई०) में महर्षि वसिष्ठ

MAHARSHI VASISHTHA IN JAPANESE MANUSCRIPT (1035 A. D.)

निपुण देश (जापान) में भारत के सभी देवताओं की प्रतिष्ठा है। वहाँ वसिष्ठ को वसुसेन उच्चारण किया जाता है।

॥७॥

संस्कृति विहार : Academy of Indian Culture, ऊपर बाजार, राँची (दूरभाष : २३६४०) द्वारा प्रकाशित।

भारतीय संत, बोधिसेन भारद्वाज

जापानी जन-लिपि 'कथाकणा' के आविष्कारक
जापान के सम्राट शोमा द्वारा 736 ई० में राजधानी नारा में
इनका अभिनन्दन।
८वीं शती का चित्र, राष्ट्रीय संग्रहालय नारा, जापान।

BODHISENA BHARDWAJ

Inventer of Japanese Script for Masses—Kathakana
Honoured by Emperor Shoma in Capital Nara
in 736 A.D.
8th Century Painting National Treasure Hall
Nara, Japan.

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)
राँची द्वारा प्रकाशित

चतुर्मुख ब्रह्मा, जापान

FOUR HEADED BRAHMA

Japan, 11th Century

—o—

"All the gods you see in Japan are the gift of India. We have no claim to local production."

Prof. NIKI KIMURA
(Formerly of Calcutta University)

"जापान में जितने देवता आप देखते हैं वे सभी भारत की देन हैं उनके जापान में विकसित होने के विषय में हमारा कोई दावा नहीं है।"

-प्रो० निकी किमुरा

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture) राँची
द्वारा सप्रेम भेंट

वीणावादिनी सरस्वती जापान

SARASWATI [BENZAITEN] PLAYING ON VEENA
Japan, 11th Century

--o--

" All the gods you see in Japan are the gift of India. We have no claim to local production. "

Prof. NIKI KIMURA.
(Formerly of Calcutta University)

" जापान में जितने देवता आप देखते हैं वे सभी भारत की देन हैं। उनके जापान में विकसित होने के विषय में हमारा कोई दावा नहीं है ॥"

-प्रो० निकी किमूरा

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture) राँची
द्वारा सप्रेम भेंट

भगवान शिव, जापान

LORD SHIVA, JAPAN

—o—

" All the gods you see in Japan are the gift of India. We have no claim to local production. "

Prof. NIKI KIMURA.
(Formerly of Calcutta University)

" जापान में जितने देवता आप देखते हैं वे सभी भारत की देन हैं उनके जापान में विकसित होने के विषय में हमारा कोई दावा नहीं है ।"

- प्रो० निकी किमूरा

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture) राँची द्वारा सप्रेम भेंट

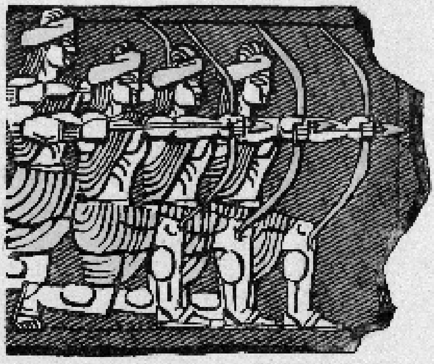

थर्मोपिली "यूनान" में भारतीय धनुर्धरों की विजय

Victory of Indian Archers in Thermopylae, Greece

१ ईसा से ४९० वर्ष पूर्व ईरान के सम्राट् धारयवसु ने यूनान पर आक्रमण किया। मेराथन के युद्ध में ईरानी सेना परास्त हो गई। ४८५ ई० पूर्व में सम्राट् धारयवसु का देहान्त हो गया।

२ सन् ४८० ई० पूर्व में धारयवसु के पुत्र ईरानी सम्राट् क्षयार्श (जेरक्सेज Xerxes) ने एक विशाल सेना लेकर यूनान पर चढ़ाई की। उसकी सेना में इस बार भारतीय तीरन्दाजों का एक शक्तिशाली दल था, जिनके तीरों का फल इस्पात का बना हुआ था।

३ सम्राट् क्षयार्श की सेना के इन वीर भारतीय धनुर्धरों ने मिस्र, अरब, सीरिया, फ़िलस्तीन, मेसोपोटामिया, तुर्की, आर्मेनिया, अफ़गानिस्तान आदि में इस्पात वाले तीक्ष्ण तीरों के फलस्वरूप विजय प्राप्त की थी।

४ यूनान में गर्म पानी के स्रोतों के लिए प्रसिद्ध थर्मोपिली की कठिन घाटी में विश्व-इतिहास का एक चिरस्मरणीय युद्ध हुआ, जिसमें भारतीय धनुर्धरों के फौलादी तीरों के सम्मुख यूनानी वीर पराजित हो गये।

५ तबतक पश्चिम के किसी देश को इस्पात का ज्ञान ही न था। संस्कृत के अयस् शब्द से ही आयरन (IRON) शब्द बना है।

६ तीसरी शती ई० पूर्व में, पंजाब की झेहलम नदी के तट पर जब सिकन्दर की वहां के राजा पुरु (पोरस) से सन्धि हुई तो पोरस ने उसे १० सेर इस्पात भेंट किया। उस धातु को देख कर सिकन्दर चकित हो गया था।

संस्कृति विहार *Academy of Indian Culture* ऊपर बाजार, रांची (दूरभाष २३६,४०), द्वारा प्रकाशित।

रोम की चाँदी की थाली में भारतमाता का चित्र

(प्रथम शती)

Bharat Mata Engraved in a Silver Plate Rome (First Century A. D.)

१ [illegible] के रोम के स्वर्णकार कलाकार ने चाँदी की तश्तरी के केंद्र में भारतमाता के चित्र को उत्कीर्ण कर चारों ओर उन सब वस्तुओं को चित्रित किया है जो भारत से रोम तथा यूरोप के अन्य देशों में निर्यात होती थीं।

२ भारतमाता के शीश पर [illegible] है जो [illegible] निर्मित तथा सुगंधि-पूरित होता था। इसे पहिनने से शिरोवेदना दूर हो जाती थी।

३ [illegible] में ईख की दो पोरें भी [illegible] दिखायी है। भारत माता के बाम हस्त में ईख का [illegible] रूप में [illegible] गया है। विश्व में ईख और शक्कर भारत की ही देन है।

४ भारतमाता का दक्षिण हस्त विश्व कल्याण की कामना से आशीर्वाद मुद्रा में उठा हुआ है।

५ भारतमाता के अंग पर भारत की उस महीन मलमल की साड़ी है जो रोम में सोने के साथ समतोल कर के बिकती थी।

६ भारतमाता का आसन शाकवन [सागवान] की लकड़ी का बना है तथा उसके पावे हस्तिदन्त [इभारदीय – IVORY] के बने हैं। ये दोनो वस्तुएं भारत से निर्यात होती थीं।

७ चित्र में चितकबरा मुर्गा, तोता, शिकारी कुत्ता, लंगूर तथा मदारी सहित दो शिकारी चीते दिखाए गये हैं। ये सभी तथा अन्य अनेक वस्तुएँ २००० वर्ष पूर्व भारत से रोम को निर्यात होती थीं।

८ यह चाँदी की दुर्लभ स्थाली [तश्तरी] आजकल तुर्की के लेम्पेस्कास नगर के संग्रहालय में है।

प्रकाशक:—प्रो० हरबंस लाल ओबराय, निर्देशक, संस्कृति विहार(Academy of Indian Culture)अपर बाजार, रांची।

रोम में शिव

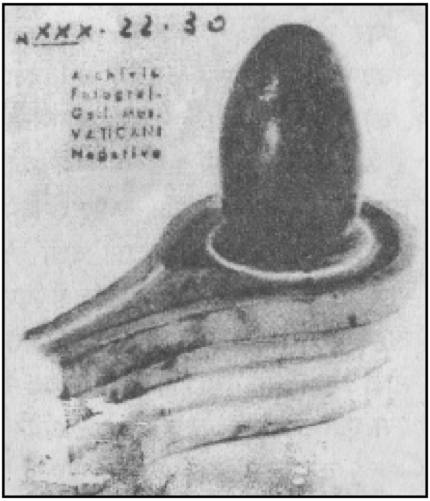

रोम में पोप की नगरी वैटिकन में भी एक विशाल शिवलिंग है। पोप स्वयं प्रतिदिन इसके सामने मौन एकान्त ध्यान साधना करते हैं। मैंने स्वयं वैटिकन में इसका फोटो चित्र लिया है। इस पर लैटिन भाषा में अंकित है। Veticana रोम की पोप नगरी का मूल नाम वाटिका (धर्म वाटिका) था। सन् 1963 में पोप ने स्वयं स्वीकार किया कि वह और उसके भूतपूर्व सभी पोप उस प्रतीक के सामने ध्यान-साधना करते आ रहे हैं।

शिव और गणेश, पीरु
(द० अमेरिका)

SHIVA & GANESHA, PERU
[SOUTH AMERICA]

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)
राँची द्वारा प्रकाशित

हनुमान : ग्वेटेमाला

[गौतम अहल्या, मध्य अमेरिका]

HANUMAN
Guatemala
[CENTRAL AMERICA]

—o—

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture)
राँची द्वारा प्रकाशित

सूर्य प्रतिमा, जर्मनी

SUN IDOL : GERMANY

1596 A.D.

" The Cult of Mitra (the Sun) was taken to Rome in 67 BC. Mithra's Cult rapidly spread in Europe "

- PLUTARCH

" सूर्य पूजा रोम में 67 ई० पूर्व में पहुँची। यह मित्र पूजा शीघ्र सारे यूरोप में फैल गई।

- प्लूटार्क

" If the growth of Christianity had been stopped early in its history, the world would have been Mithraic. "

- ERNEST RENAN

" यदि अपने इतिहास के उषाकाल में ही ईसाइयत का प्रसार रुक जाता तो सारा संसार सूर्य पूजक होता॥"

- अरनेस्ट रेनन

संस्कृति विहार : (Academy of Indian Culture]
राँची द्वारा प्रकाशित